तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय

मुरादाबाद (उत्तरप्रदेश)

दूरस्थ शिक्षा

एम.ए. (उत्तरार्ध) जैनोलॉजी

(द्वितीय पत्र)

-विषय-

जिनागम दर्पण

इकाई (संवर्ग)

इकाई – 1	-जैन रामायण का सार	(कुल पाठ-4)
इकाई – 2	-जिनदर्शन प्रतिज्ञा का चमत्कार	(कुल पाठ-3)
इकाई – 3	-तीर्थंकर की धर्मसभा-समवसरण	(कुल पाठ-3)
इकाई – 4	-आद्य सिद्धान्त ग्रंथ-सामान्य परिचय	(कुल पाठ-4)

-मंगल प्रेरणा-

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी (डी. लिट्.)

-लेखन एवं संकलन-

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी (पीएच.डी.)

-निर्देशन-

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर

-संपादक-

प्रो. टीकम चन्द जैन

(अध्यक्ष-जैन अध्ययन केन्द्र, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद)

जीवन प्रकाश जैन (M.Sc. Maths), जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर

संस्करण - **प्रथम संस्करण (नवम्बर-2014)**

मूल्य- **300/-रुपये**

ISBN-978-93-84003-42-5

-प्रकाशक-

तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

एवं

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

(सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन)

E-mail : jambudweeptirth@gmail.com, rk195057@yahoo.com

कुलाधिपति की कलम से.....

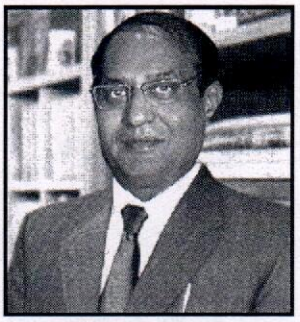

तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय में जैनोलॉजी विभाग का शुभारंभ होना, इस विश्वविद्यालय के नाम की परिपूर्णता का सूचक है। मुझे अंतरंग से प्रसन्नता है कि हम जैन होने के नाते विश्वविद्यालय स्तर से जैनधर्म की शिक्षा के प्रचार-प्रसार का एक व्यापक कार्य कर रहे हैं। इस विभाग के माध्यम से छात्र-छात्राएँ जैनदर्शन में बी.ए. एवं एम.ए. की मान्य डिग्री प्राप्त कर सकेंगे और इसके साथ ही एम.फिल. तथा पीएच.डी. भी करके वे अपने उज्ज्वल भविष्य को निखारने का प्रयास करेंगे, यह विश्वविद्यालय के लिए गौरवपूर्ण बात है।

विशेषरूप से इस जैन दर्शन विभाग की स्थापना में जैन समाज की वरिष्ठतम साध्वी परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा एवं आशीर्वाद महत्वपूर्ण निमित्त रहा। मुझे गौरव है कि हमारे विश्वविद्यालय का प्रथम विशेष दीक्षांत समारोह पूज्य माताजी के सान्निध्य में ही हुआ, जिसमें विश्वविद्यालय ने पूज्य माताजी के बहुआयामी व्यक्तित्व एवं विशेषरूप से 400 से भी अधिक ग्रंथों के साहित्यिक योगदान को देखते हुए उन्हें विश्वविद्यालय की प्रथम डिग्री के रूप में "डी.लिट्." की मानद उपाधि 8 अप्रैल 2012, वैशाख कृ. दूज को माताजी के 57वें आर्यिका दीक्षा दिवस के शुभ अवसर पर प्रदान की गई। इसके साथ ही पूज्य माताजी द्वारा लिखित षट्खण्डागम ग्रंथ की सिद्धान्तचिंतामणि संस्कृत टीका का हिन्दी अनुवाद करके इतने प्राचीन ग्रंथ को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जन-जन के लिए सुलभ बनाने का महान कार्य करने वाली प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी को उनके द्वारा लिखित शताधिक ग्रंथों की विशेष सराहनापूर्वक उन्हें भी विश्वविद्यालय द्वारा प्रथम दीक्षांत समारोह में "पीएच.डी." की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया।

यह प्रथम विशेष दीक्षांत समारोह सदैव ही विश्वविद्यालय के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने के योग्य रहेगा। इसी समय हमें पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी से इस विश्वविद्यालय में जैन दर्शन विभाग का शुभारंभ करने की प्रेरणा प्राप्त हुई थी अतः अब यह प्रेरणा फलित हो रही है, जिससे निश्चित ही अनेकानेक छात्र-छात्राओं को न सिर्फ जैनधर्म का ज्ञान होगा अपितु विश्वविद्यालय की मान्य डिग्री से उनके भविष्य का भी सुन्दर निर्माण हो सकेगा, ऐसा पूर्ण विश्वास है।

विश्वविद्यालय द्वारा जैनदर्शन में बी.ए. एवं एम.ए. के कोर्स दूरस्थ शिक्षा के साथ प्रारंभ किये गये हैं अतः इनका स्टडी मैटेरियल पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी ने हमारे निवेदन पर अथक परिश्रमपूर्वक तैयार करके दिया है। यह सरल भाषा में तथा जैन दर्शन के समग्र ज्ञान को प्रदर्शित करते हुए बनाया गया है। इसे सभी छात्र-छात्राएँ सरलता के साथ पढ़कर परीक्षाओं में उच्च सफलता हासिल करने का प्रयास करें, यही मेरी शुभकामनाएँ हैं।

सुरेश जैन
(कुलाधिपति)

जैन दर्शन विभाग स्थापना की सम्प्रेरिका गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी का

मंगल आशीर्वाद

मुझे इस बात की अंतरंग से अपार खुशी है कि सारे विश्व भर में 'तीर्थंकर महावीर' के नाम से एक मात्र प्रसिद्धि को प्राप्त विश्वविद्यालय मुरादाबाद में हमारे भक्त कुलाधिपति माननीय श्री सुरेशचंद जी के बहुमूल्य प्रयासों से निर्मित हुआ है। इस 'तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय' ने आज भारत के श्रेष्ठ विश्वविद्यालयों में अपना स्थान प्राप्त किया है। यहाँ की उच्च शिक्षा तकनीकी तथा शिक्षा के उपरांत छात्र-छात्राओं को उज्ज्वल भविष्य का सुनहरा अवसर प्राप्त होना, यह एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

यूँ तो विश्वविद्यालय में सैकड़ों प्रकार की विधाओं के माध्यम से छात्र-छात्राओं को अपना भविष्य बनाने का अवसर प्राप्त होता है। तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय में भी लगभग 150 से अधिक विषयों पर छात्र-छात्राएँ विभिन्न प्रकार की डिग्रीयाँ प्राप्त करते हैं और अपने जीवन को समुन्नत बनाने का प्रयास करते हैं।

विशेषरूप से मैंने इस विश्वविद्यालय में "जैन दर्शन विभाग" की स्थापना करने की प्रेरणा प्रदान की, जिसमें जैनधर्म की शिक्षाओं में छात्र-छात्राएँ, स्नातक व स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त कर सकें। मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि अब तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय-मुरादाबाद में जैन दर्शन विभाग की स्थापना हो चुकी है और यहाँ पर अब बी.ए.-जैनोलॉजी व एम.ए.-जैनोलॉजी कोर्स के साथ ही जैनधर्म के संदर्भ में विभिन्न प्रकार के सर्टिफिकेट व डिप्लोमा कोर्स का भी शुभारंभ कर दिया गया है।

मेरे सान्निध्य में बी.ए. एवं एम.ए. जैनोलॉजी कोर्स की पुस्तकें मेरी शिष्या प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती एवं प्रो. टीकमचंद जी ने अत्यन्त सूझ-बूझ के साथ तैयार की हैं। जम्बूद्वीप के पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति जी का निर्देशन भी इसमें महत्वपूर्ण रहा है। उनके साथ ही संघस्थ बाल ब्र. जीवन प्रकाश ने भी इस कोर्स को तैयार कराने में अपनी सहभागिता के साथ-साथ सर्टीफिकेट डिप्लोमा एवं डिग्री कोर्स को संचालित करने में परिश्रम किया है। इन सभी के लिए मेरा शुभाशीर्वाद है।

विश्वविद्यालय एवं दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के संयुक्त तत्त्वावधान में आज सम्पूर्ण भारतवर्ष के विभिन्न जैन श्रावक-श्राविकाओं व छात्र-छात्राओं द्वारा इस योजना का लाभ उठाकर घर बैठे ही जैनधर्म में विश्वविद्यालय द्वारा मान्यता प्राप्त सर्टिफिकेट व डिप्लोमा प्राप्त किये जा रहे हैं, यह एक विशेष सफलता एवं हर्ष का परिचायक है।

अतः इस महत्वपूर्ण अवसर पर कुलाधिपति जी के साथ ही विश्वविद्यालय के कुलपति महोदय, रजिस्ट्रार महोदय, जैन दर्शन विभागाध्यक्ष आदि समस्त विश्वविद्यालय परिवार को मेरा कोटिशः आशीर्वाद है कि इसी प्रकार जैनधर्म की शिक्षा एवं तीर्थंकर महावीर स्वामी के सिद्धान्तों का विश्वविद्यालय द्वारा शिक्षा के रूप में प्रचार-प्रसार सतत होता रहे और विश्वविद्यालय से जैनधर्म में स्नातक एवं स्नातकोत्तर डिग्री हासिल करने वाले छात्र-छात्राएँ भी अपने जीवन को तीर्थंकर महावीर स्वामी के सिद्धान्तों से सुसज्जित करके धर्म प्रभावना, समाज सुधार एवं व्यक्तित्व विकास के क्षेत्र में अपना जीवन समर्पित करें।

पुनः विश्वविद्यालय में जैन दर्शन विभाग की स्थापना हेतु मेरी बहुत-बहुत शुभकामनाएँ एवं मंगल आशीर्वाद है।

गणिनी ज्ञानमती

(गणिनी ज्ञानमती)

प्रस्तावना

-आर्यिका चन्दनामती

तीर्थंकर महावीर की पश्चात्वर्ती परम्परा में अनेकानेक ज्ञानी आचार्य, मुनि, आर्यिका, विद्वान् आदि हुए हैं उन्होंने जैन विद्या तथा भारतीय संस्कृति के संवर्धन और आचार संहिता के संरक्षण में अपना योगदान प्रदान किया है।

जैनधर्म प्राकृतिक, शाश्वत एवं अनादिनिधन धर्म है। इसे न किसी ने स्थापित किया है और न कोई कभी नष्ट कर सकता है। इसकी सार्वभौमिकता इस कथन से जानी जा सकती है-"कर्मारातीन् जयति इति जिनः, जिनो देवता यस्येति जैनः" अर्थात् कर्मरूपी शत्रुओं को जीतने वाले जिन अथवा जिनेन्द्र भगवान कहलाये और उन जिनेन्द्र भगवान की उपासना करने वाले जैन कहलाते हैं।

इस अर्थ के अनुसार सभी प्राणी जैनधर्म के सर्वोदयी सिद्धान्तों को पालन करने के अधिकारी हो सकते हैं। यह धर्म किसी अन्य धर्म की शाखा न होकर पूर्णतया स्वतंत्र है। समय-समय पर इस धर्म का प्रचार-प्रसार तीर्थंकर भगवन्तों के माध्यम से होता रहा है। भगवान ऋषभदेव से लेकर महावीर तक चौबीस तीर्थंकर वर्तमान युग के धर्मतीर्थ प्रवर्तक माने गये हैं। इनमें से इस समय भगवान महावीर स्वामी का शासन काल चल रहा है।

भारतवर्ष में तीर्थंकर भगवान के नाम का प्रथम विश्वविद्यालय मुरादाबाद-उत्तरप्रदेश में है जिसका नाम है-तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय (TMU)। सन् 2005 में "महावीर डेन्टल कॉलेज" से प्रारंभ हुई यह शैक्षणिक संस्था आज विश्वविद्यालय के रूप में वटवृक्ष के समान विकसित होकर हजारों ज्ञानपिपासु स्नातकों को शीतल छाया प्रदान कर रहा है। इस विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री सुरेशचंद जी जैन ने अपनी दूरदर्शिता एवं कर्मठता का परिचय देते हुए इसे देश के सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालयों की श्रेणी तक पहुँचा कर जैन समाज में एक कीर्तिमान स्थापित किया है।

सन् 2012 में जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी (अवध विश्वविद्यालय-फैजाबाद द्वारा सन् 1995 में डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत) कुलाधिपति जी के विशेष निवेदन पर विश्वविद्यालय परिसर में 'भगवान महावीर जिनालय' की स्थापना में मंगल सान्निध्य प्रदान करने हेतु हस्तिनापुर से विहार करके मुरादाबाद पधारीं और वहाँ उनके 57वें आर्यिका दीक्षा दिवस (वैशाख कृ. दूज, 8 अप्रैल 2012) के अवसर पर विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित किये गये "प्रथम विशेष दीक्षान्त समारोह" में पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी को डी.लिट्. की मानद उपाधि प्रदान की गई। उस समय पूज्य माताजी ने तीर्थंकर महावीर के नाम वाले इस विश्वविद्यालय में जैनॉलोजी विभाग खोलने की प्रेरणा प्रदान की, जिसे माननीय कुलाधिपति सहित समस्त प्रबंध समिति ने सहर्ष स्वीकार करके बी.ए. जैनोलॉजी एवं एम.एम. जैनोलॉजी कोर्स के रूप में स्थापित करके प्रारंभ करने की घोषणा की।

आगे इस निर्णय के संदर्भ में प्रगति करते हुए बी. ए. जैनोलॉजी का कोर्स इस प्रकार निर्धारित किया गया है कि जिससे जैन व जैनेतर समस्त छात्र-छात्राओं को जैनधर्म का प्राथमिक स्तर से लेकर समग्र ज्ञान प्राप्त हो सके अतः त्रिवर्षीय बी. ए. के कोर्स के पश्चात् स्नातकोत्तर अर्थात् एम.ए. में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों के लिए दो वर्ष के दूरस्थ शिक्षा कोर्स में कुल 8 पुस्तकें तैयार की गई हैं। जिनमें प्रथम वर्ष (पूर्वार्ध) में 4 पुस्तकें और

द्वितीय वर्ष (उत्तरार्ध) में 4 पुस्तकें हैं। यहाँ पर द्वितीय वर्ष की इस द्वितीय पुस्तक में 4 इकाइयों के अन्तर्गत निम्न विषय प्रस्तुत किये गये हैं–

1. जैन रामायण का सार
2. जिनदर्शन प्रतिज्ञा का चमत्कार
3. तीर्थंकर की धर्मसभा-समवसरण
4. आद्य सिद्धान्त ग्रंथ-सामान्य परिचय

परीक्षा बोर्ड के परामर्शानुसार इन सभी विषयों के कोर्स मैटेरियल सरलग्राह्य एवं विषय वस्तु के अनुरूप विस्तारित करके प्रस्तुत किये गये हैं।

उपर्युक्त पाँचों इकाइयाँ अलग-अलग पाठों में विभक्त हैं जिनके माध्यम से जिनागम दर्पण के प्रायः समस्त पक्षों को प्रस्तुत करने का पूर्ण प्रयास किया गया है।

जैन संस्कृति भारतीय संस्कृति की मूल और सशक्त धारा है। जिसने सदा-सदा से भारत के आध्यात्मिक एवं शैक्षणिक गौरव को वृद्धिंगत किया है। जैनधर्म की साहित्यिक एवं पुरातात्विक विरासत विश्व के कोने-कोने में बिखरी हुई है, उन्हीं पर अनुसंधान करके वर्तमान वैज्ञानिकों ने कम्प्यूटर, मोबाइल, इंटरनेट आदि के रूप में पुद्गल का चमत्कार भौतिक जगत को प्रदान किया है।

विश्वविद्यालय के द्वारा संचालित "दूरस्थ शिक्षा" (Distance Education) में एम.ए. के द्वितीय वर्ष की इस द्वितीय पुस्तक के लेखन एवं संकलन में बहुत ही परिश्रमपूर्वक विषयों का चयन करके अनेक प्राचीन-अर्वाचीन सन्त और विद्वानों के विचार प्रस्तुत किये गये हैं, ताकि उनके संकलन का ज्ञानवर्धन में व्यापक उपयोग हो सके तथा स्नातकोत्तर परीक्षा देने वाले विद्यार्थी सरलतापूर्वक जैनदर्शन के विषयों को पढ़कर डिग्री प्राप्त कर सकें।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की दूरदर्शिता युक्त प्रेरणा एवं कुलाधिपति जी के आग्रह पर मैंने इस स्नातकीय दूरस्थ शिक्षा की पाठ्यपुस्तक तैयार करने की जिम्मेदारी ली और यथासंभव उसे निभाने का प्रयत्न किया है।

हमारे इस प्रयत्न में हर क्षण जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी का कुशल निर्देशन प्राप्त हुआ है। इसके साथ ही संघस्थ समस्त आर्यिकावर्ग एवं ब्रह्मचारिणी बहनों का भी प्रूफ संशोधन आदि कार्यों में पूरा सहयोग मिला है।

पुस्तक में गर्भित विषयों के संकलन-संपादन में अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त जैन जगत के विशिष्ट विद्वान् प्रो. टीकमचंद जैन (अध्यक्ष-जैन अध्ययन केन्द्र, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय) ने अथक परिश्रम के साथ हमें सहयोग प्रदान किया है, उनके साथ जीवन प्रकाश जैन, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर ने उपयोगी विषयों के निर्धारण एवं सम्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाकर कर्तव्य निर्वाह किया है।

गुरु आशीर्वाद एवं उनका हर क्षण प्राप्त निर्देशन ही इसकी सफलता का मूल कारण है।

विश्वविद्यालय में स्थापित जैन अध्ययन केन्द्र सर्वतोमुखी विकास करे, इसके द्वारा बी. ए., एम. ए. (जैनोलॉजी) की डिग्री प्राप्त करने वाले छात्र-छात्राएँ भी जैनधर्म के सार्वभौम सिद्धान्तों से जन-जन को लाभान्वित करें, यही मंगल भावना है।

-8 अक्टूबर 2014, शरदपूर्णिमा

विषयानुक्रमणिका

पाठ	पृष्ठ संख्या
इकाई 1—जैन रामायण का सार	**1-71**
पाठ-1 सीता स्वयंवर एवं राम वनवास	1-17
पाठ-2 सीताहरण एवं राम-रावण युद्ध	18-37
पाठ-3 राम-सीता एवं स्वजन मिलन	38-57
पाठ-4 सीता की अग्नि परीक्षा एवं दीक्षा	58-71
इकाई 2—जिनदर्शन प्रतिज्ञा का चमत्कार	**72-127**
पाठ-1 कैसे किया प्रतिज्ञा पालन सती मनोवती ने	72-88
पाठ-2 नियम के निंदक बने भिखारी	89-101
पाठ-3 मनोवती एवं बुद्धसेन का परिवार के साथ मिलन	102-127
इकाई 3—तीर्थंकर की धर्मसभा-समवसरण	**128-150**
पाठ-1 समवसरण रचना का प्रारंभिक स्वरूप	128-132
पाठ-2 समवसरण की आठ भूमियाँ	133-141
पाठ-3 समवसरण की अन्य विशेषताएँ	142-150
इकाई 4—आद्य सिद्धान्त ग्रंथ-सामान्य परिचय	**151-188**
पाठ-1 कषायप्राभृत-युग की प्रथम कृति	151-159
पाठ-2 षट्खण्डागम-जैनागम का प्राण	160-168
पाठ-3 महाबन्ध-षट्खण्डागम का छठा खण्ड	169-175
पाठ-4 द्वादशांग श्रुत की रचना गणधर ही कर सकते हैं	176-188

इकाई–1 जैन रामायण का सार

इस इकाई में मुख्यरूप से निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया गया है—

(1) सीता स्वयंवर एवं राम वनवास

(2) सीता हरण एवं राम–रावण युद्ध

(3) राम–सीता एवं स्वजन मिलन

(4) सीता की अग्नि परीक्षा एवं दीक्षा

पाठ-1 – सीता स्वयंवर एवं राम वनवास

1.1 राजा जनक द्वारा सीता स्वयंवर की घोषणा-

कुछ क्षण विश्रांति करके राजा जनक नि:शंक हो गोपुर में प्रवेश करते हैं। वहाँ जाकर देखते हैं कि चारों तरफ जहाँ-तहाँ फैले हुए और फूले हुए रंग-बिरंगे पुष्प अपनी मधुर सुगंधि से मन को आकृष्ट कर रहे हैं। सुन्दर-सुन्दर बावड़ियों में स्वच्छ शीतल जल लहरा रहा है और उसमें उतरने की सीढ़ियाँ मणि एवं स्वर्ण से निर्मित हैं। उद्यान में अशोक, आम्र, जामुन आदि के वृक्ष अपने पल्लवों को हिला-हिलाकर और पक्षियों के कलरव शब्दों से मानों उन्हें बुला ही रहे हैं। कुछ आगे और बढ़कर जनक महाराज देखते हैं तो उन्हें एक बहुत ही सुन्दर जिनमंदिर दिखाई देता है। वह मंदिर स्वर्ण के हजारों बड़े-बड़े खम्भों को धारण किये हुए है, मेरु के शिखर के समान जिसकी प्रभा है, जिसकी भूमि हीरे से निर्मित है और जिसमें मोतियों की जाली से सुशोभित रत्नमयी झरोखे बने हुए हैं। इस अदृष्टपूर्व मंदिर को देखकर राजा जनक मन में सोचने लगते हैं—

अहो! इस मायामयी घोड़े ने तो मेरा बहुत ही बड़ा उपकार किया है जो कि मुझे हरण करके यहाँ ऐसे पवित्र स्थान में छोड़ गया है। भला, वह घोड़ा कौन था ? कोई मेरा पूर्वजन्म का मित्र तो नहीं था कि जिसने मुझे ऐसे अनुपम स्थान का दर्शन कराने का उपक्रम रचा हो ? जो भी हो, यह तो मेरा परम सौभाग्य है कि जिससे मुझे इस जिनमंदिर का दर्शन हुआ है। ऐसा सोचते-सोचते महाराजा जनक अन्दर प्रवेश करके विधिवत् तीन प्रदक्षिणा देकर जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा को पंचांग नमस्कार करते हैं। पुन: अनेक संस्कृत स्तोत्रों से प्रभु की स्तुति करके नि:शंक हो वहीं पर बैठ जाते हैं।

उधर चपलवेग विद्याधर मायामयी घोड़े के रूप को छोड़कर अपने भृत्य के रूप में आकर रथनूपुर के राजा चन्द्रगति को समाचार देता है कि राजन् ! आपकी आज्ञा के अनुसार मिथिलापुर के राजा जनक मेरे द्वारा लाये जाकर उद्यान के जिनमंदिर में बैठे हुए हैं। राजा चन्द्रगति अपने बहुत से सामन्त आदि को साथ में लेकर वहाँ पहुँच जाते हैं। पहले श्री जिनेंद्रदेव की वन्दना करके पुन: राजा जनक से कुशल-क्षेम पूछकर परस्पर में एक दूसरे का परिचय पूछते हैं। अनन्तर परस्पर में विश्वास को प्राप्त होते हुए मधुर वार्तालाप शुरू कर देते हैं। सबसे प्रथम विद्याधरों के राजा चन्द्रगति बोलते हैं—

"अहो! मैं आज बहुत ही पुण्यशाली हूँ जो कि आपका दर्शन हुआ है। हे राजन् ! मैंने बहुत से लोगों के मुख से सुना है कि आपके शुभ लक्षणों वाली सीता नाम की एक सुन्दर कन्या है, सो वह कन्या आप मेरे पुत्र भामंडल के लिए दे दीजिए। आपके साथ संबंध स्थापित कर मैं अपने आपको परम भाग्यशाली समझूँगा।"

इसके उत्तर में राजा जनक कहते हैं—

"हे विद्याधरराज! यह सब हो सकता था परन्तु मैंने तो वह कन्या राजा दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्र के लिए देनी निश्चित कर ली है अत: अब तो मैं विवश.....।"

"ओह!.....आपने रामचन्द्र को देने का निर्णय क्यों लिया है ? उसमें ऐसी क्या विशेषता है ?"

"मित्र! अभी कुछ ही दिन पूर्व मेरी मिथिला नगरी में अर्धबर्बर देश के म्लेच्छों ने धावा बोल दिया था, वे धूर्त लोग टिड्डी दल के समान हमारे देश को नष्ट-भ्रष्ट करने में लग गये थे। उस समय पूर्व की मित्रता के नाते मैंने अयोध्या के अधिपति श्री दशरथ महाराज के पास सहायता के लिए खबर भेजी थी। वहाँ से उसी क्षण उनके दो पुत्र राम और लक्ष्मण अपनी बहुत सी सेना लेकर मिथिला नगरी आये थे और अपने विशेष पौरुष के बल से उन म्लेच्छों को जीतकर हमें निरापद किया था। उसी उपकार के बदले में मैंने श्रीराम को अपनी पुत्री सीता देना निश्चित कर लिया है।"

चन्द्रगति विद्याधर नरेश और उनके सामन्त अट्टहासपूर्वक हँसते हुए कहते हैं—

"अहो! म्लेच्छों को जीतने मात्र से ही तुमने उन भूमिगोचरी राजपुत्रों का क्या पराक्रम देखा है ? ये भूमिगोचरी लोग विद्या के माहात्म्य से रहित होते हैं अतः निरन्तर हीन- दीन दिखते हैं। इनकी शूरवीरता और सम्पत्ति का क्या माहात्म्य है ? अरे जनक! बताओ तो सही, भला तुमने उनमें और पशुओं में क्या अन्तर देखा है ?"

इत्यादि प्रकार से भूमिगोचरियों की निन्दा सुनकर राजा जनक अपने दोनों कानों को हाथों से ढक लेते हैं और बोलने लगते हैं—

"हाय, हाय! बड़े कष्ट की बात है कि मैं भूमिगोचरी राजाओं की निंदा कैसे सुन रहा हूँ। क्या त्रिजगत् में प्रसिद्ध लोक को पवित्र करने वाला ऐसा श्री आदिनाथ भगवान् का वंश आप लोगों के कर्णगोचर नहीं हुआ है ? हे विद्याधरों! बताओ तो सही, क्या पंचकल्याणक के स्वामी तीर्थंकर भगवान् आप विद्याधरों की भूमि में जन्म ले सकते हैं ? क्या चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण आदि महापुरुष तुम्हारे वंश में जन्म लेते हैं ? अहो! जिस अयोध्या आदि पवित्र भूमि में, जिन इक्ष्वाकु आदि वंशों में तीर्थंकरों का जन्म हुआ है तुम लोग उस भूमि की और उनके वंशजों की कैसे निन्दा कर रहे हो ?

इक्ष्वाकुवंश के राजा अनरण्य की सुमंगला महारानी की कुक्षि से दशरथ का जन्म हुआ है। इस दशरथ महाराजा के चार महादेवियाँ हैं। अपराजिता महादेवी ने 'पद्मनाभ' नाम के श्रीराम को जन्म दिया है, सुमित्रा से 'लक्ष्मण' नाम के प्रतापशाली पुत्र का जन्म हुआ है, कैकेयी ने 'भरत' पुत्र को उत्पन्न किया है और सुप्रभादेवी ने 'शत्रुघ्न' नाम के पुत्र को जन्म दिया है। ये चारों ही पुत्र महान् कांतिमान हैं, उस रघुकुल के तिलक हैं। मैं इन महापुरुषों की निन्दा नहीं सुन सकूँगा।"

इस प्रकार से वार्तालाप के मध्य कुछ समस्या हल न होते देखकर राजा चन्द्रगति धीरे से उठ गये और अनेक विश्वस्त विद्याधरों से विचार-विमर्श करके वापस आकर बैठ गये। पुनः राजा चन्द्रगति बोले—

"राजन् ! अधिक कहने से क्या ? हमारी एक शर्त सुनो। हमारे यहाँ आयुधगृह में देवों के द्वारा सुरक्षित ऐसे दो धनुष रखे हुए हैं। एक का नाम है वज्रावर्त और दूसरे का सागरावर्त। यदि राम और लक्ष्मण इन धनुषों को डोरी सहित करने में समर्थ हों तब तो मैं उन्हें अधिक शक्तिशाली समझूँगा और वह आपकी सीता को प्राप्त कर सकेगा अन्यथा हम लोग जबरदस्ती आपकी कन्या का अपहरण करके यहाँ ले आयेंगे।"

"ठीक, ठीक! आपकी शर्त हमें मंजूर है।"

इतना सुनते ही बहुत से सामन्त और विद्याधर उन दोनों धनुषों को साथ लेकर बहुत से विद्याधरों को साथ लेकर राजा जनक को विमान में बिठाकर मिथिलानगरी में आ गये। शहर के बाहर उनको ठहराकर उनके आतिथ्य सत्कार की व्यवस्था करके राजा जनक महल में पहुँचे। राजमहल में 'राजा को मायामयी घोड़ा उड़ाकर पता नहीं कहाँ ले गया है ?' इस कारण से अशांत वातावरण बना हुआ था। महाराजा को देखते ही सबके जी में जी आया। साधारण कुशल समाचार के बाद राजा ने थोड़ा सा भोजन किया और विश्रामकक्ष में चले गये। राजा को चिन्तानिमग्न देख रानी विदेहा ने

आन्तरिक स्थिति जाननी चाही तब राजा ने ज्यों की त्यों सारा वृत्तान्त सुना दिया। रानी विदेहा जोर-जोर से रुदन करने लगी और कहने लगी—

"हाय-हाय! मैंने पूर्वजन्म में कौन-सा पाप किया था कि जो मेरे पुत्र को जन्म होते ही कोई दुष्ट बैरी हर ले गया। तब से इस सीता को देख-देखकर ही हम लोग उस बालक के दु:ख को भूले हुए थे कि हाय! अब विधाता को वह भी सहन नहीं हो रहा है जब मेरी कन्या को ये विद्याधर लोग हर ले जायेंगे तब मैं कैसे जीवित रहूँगी ?....."

इसी बीच राजा जनक अपनी भार्या को सांत्वना देकर उठते हैं और मंत्रियों से सलाह कर स्वयंवर मण्डप बनवाकर स्वयंवर की घोषणा करा देते हैं। राजा दशरथ के पास अपना खास व्यक्ति भेजकर सपरिवार उन्हें बुला लेते हैं चूँकि विद्याधरों के द्वारा इन्हें इस कार्य के लिए मात्र बीस दिन ही दिये गये थे।

1.1.1 श्रीरामचन्द्र एवं सीता का विवाह-

स्वयंवरमंडप में एक तरफ उच्चस्थान पर दोनों धनुष रखे हुए हैं और एक तरफ उच्चस्थान पर सात सौ कन्याओं के मध्य सीता सुन्दरी बैठी हुई है। उसके चारों तरफ शूरवीर योद्धा हाथ में तलवार आदि लेकर सुरक्षा में सन्नद्ध हैं। हजारों राजपुत्र सीता को प्राप्त करने की इच्छा से वहाँ आये हुए हैं। एक-एक करके क्रम से उस धनुष को चढ़ाने के लिए वहाँ पहुँचते हैं किन्तु वह धनुष अग्नि के स्फुलिंगे छोड़ रहा है और उसके चारों तरफ भयंकर सर्प फुँकार रहे हैं। राजपुत्र निकट जाकर उसके तेज से परास्त होकर लौट पड़ते हैं। कोई-कोई तो वहीं पर मूर्च्छित हो पृथ्वी पर लोटने लगते हैं। कोई अपने प्राणों की रक्षा हेतु भागने लगते हैं। श्रीरामचन्द्र गंभीर मुद्रा से बैठे हुए सभी की नाना चेष्टाओं को देख रहे हैं। अंत में श्री जनक महाराज की दृष्टि जब रामचन्द्र की ओर उठती है कि वे महापुरुष अपने स्थान से उठकर मन्थर गति से धनुष के पास आते हैं। अपने स्वामी को आते हुए देखकर जैसे भृत्य निस्तब्ध हो जाता है अथवा अपने गुरु के सामने जैसे शिष्य विनीत हो जाता है वैसे ही वह धनुष मूल स्वभाव में आ जाता है। उसके रक्षक हजारों देवता मानों स्वामी की प्रतीक्षा में स्थिर हो जाते हैं।

लीलामात्र में श्रीरामचन्द्र उस धनुष को उठाकर उसे चढ़ा देते हैं। श्रीरामचन्द्र की गर्जना और उस धनुष की टंकार से सारी दिशाएं क्षणभर के लिए बहरी हो जाती हैं। सभा में बैठे हुए लोग तो भंवर में पड़े हुए के समान घूमने लगते हैं। आकाश से 'साधु-साधु, ठीक-ठीक' इस प्रकार से देव और विद्याधरों के शब्द गूँज उठते हैं। देवों के द्वारा पुष्पों की वर्षा हो जाती है और व्यंतर लोग नृत्य करने लगते हैं।

उसी क्षण सीता अपने हाथ में सुन्दर माला लेकर मंदगति से वहाँ आ जाती है और श्रीराम के गले में माला पहना कर उन्हीं के पास खड़ी हो जाती है। लज्जा से संकुचित हो रही सीता के साथ श्रीरामचन्द्र वहाँ से आकर अपने आसन पर बैठ जाते हैं।

अनंतर लक्ष्मण उठकर भाई की आज्ञा लेकर द्वितीय सागरावर्त धनुष के पास पहुँचकर उसे चढ़ा देते हैं। तब चन्द्रवर्धन विद्याधर अपनी अठारह कन्याओं को उनके समीप खड़ी कर देते हैं। मंगलवाद्य और नगाड़ों की ध्वनि के साथ सभा विसर्जित हो जाती है।

उधर भरत के मन में विकल्प उठता है कि अहो! देखो, हम दोनों का एक कुल है, एक पिता हैं, पर इन दोनों अग्रजों ने ऐसा आश्चर्य प्राप्त किया और पुण्य की मंदता से मैं ऐसा आश्चर्य प्राप्त नहीं कर सका अथवा व्यर्थ के इस संताप से क्या ? इस असार संसार में सारभूत एक धर्म ही है। इत्यादि रूप से सोचते हुए भरत के मुख की कांति हीनता को देखकर माता कैकयी ने पुत्र के मन की चेष्टा को जानकर तत्काल ही राजा दशरथ से कहा—"स्वामिन् ! आप शीघ्र ही पुनः स्वयंवर विधि से राजा जनक के भाई कनक की पुत्री से भरत का पाणिग्रहण कर दीजिए।"

लोकव्यवहार में कुशल दशरथ ने शीघ्र ही अपने मित्र जनक को सूचित किया। द्वितीय दिवस पुनः स्वयंवर विधि

से राजा कनक की पुत्री लोकसुन्दरी ने भरत के गले में वरमाला डाल दी। अनंतर बड़े उत्सव के साथ इन तीनों भाइयों की विधिवत विवाह विधि सम्पन्न हुई। पिता जनक चन्द्रवर्धन और कनक ने अपनी पुत्रियों को यथायोग्य शिक्षा देकर हर्ष और विषाद से मुक्त होते हुए सबका अयोध्या के लिए प्रस्थान करा दिया और विद्याधर लोग भी राम, लक्ष्मण के गुणों में आकृष्ट होते हुए रथनूपुर चले गये।

1.1.2 सीता के प्रति अनुरक्त भामण्डल को आर्यखण्ड की ओर जाते समय जातिस्मरण—

कुछ दिन व्यतीत होने के बाद पुनः भामण्डल ने सभी बड़े जनों के समक्ष अपने मित्र से कहा—

"मित्र! आप बड़े दीर्घसूत्री हैं। उस सीता की आशा में डूबते हुए मेरा कितना समय निकल गया है, मुझे सहारा क्यों नहीं दिया जा रहा है ?"

इस प्रकार के भामंडल के वचनों को सुनकर एक बृहत्केतु नामक विद्याधर बोल उठा—

"अब तक इस सीता संबंधी बात को क्यों छिपाया जा रहा है ? सारा वृतान्त प्रकट कर देना चाहिए कि जिससे कुमार इस विषय में निराश हो जावें।"

तब सभी ने चन्द्रगति विद्याधर नरेश को आगे करके लड़खड़ाते हुए अक्षरों में सारी विगत घटना सुना दी और बोले—

"कुमार! उन दोनों देवोपनीत धनुषों के चले जाने से अब तो हम लोग बिल्कुल सारहीन निःसार हो गये हैं। इस समय राम-लक्ष्मण के पुण्य की कल्पना कर सकना भी हम लोगों की शक्ति से परे है।"

इन सारी बातों को सुनकर भामंडल आवेश में उठ खड़ा होता है और बोलता है—

"ठीक है, अब मैं स्वयं राम की शक्ति का परीक्षण करने जा रहा हूँ।" विमान में बैठ कर बहुत से सामंत और सेना को साथ लेकर भामंडल आकाश मार्ग से आर्यखण्ड की ओर जा रहा है। कुछ दूर पहुँच कर आकाश मार्ग से ही उसने पृथ्वीतल पर विदग्ध नाम का एक देश देखा। मन में सोचने लगा 'यह नगर मैंने पूर्व में भी देखा है' इतना सोचते ही उसे जातिस्मरण हो गया और वह वहीं मूर्च्छित हो गया। इस स्थिति में सभी विद्याधर उसे तत्क्षण ही पिता के पास वापस ले आये। अनेक शीतोपचार से सचेत होने पर अत्यधिक लज्जा से नम्रित हो मुख नीचा कर विलाप करने लगा। तब चन्द्रगति पुत्र को अपनी गोद में लेकर मस्तक पर हाथ फेरते हुए बोले—

"बेटा! तुम इतने विक्षिप्त क्यों हो रहे हो ?" भामंडल ने कहा—

"हे पिताजी! मैं पूर्व जन्म में विदग्धपुर का राजा कुलमंडित था। मैंने किसी समय पिंगल नाम के ब्राह्मण की पत्नी का अपहरण कर लिया था। अनंतर पाप से डरकर एक बार दिगंबर मुनि के समीप अणुव्रत आदि ग्रहण कर लिये। उसके प्रभाव से मरणकर जनक की रानी विदेहा के गर्भ में आ गया, उसी समय उस ब्राह्मणी का जीव भी मरकर विदेहा के गर्भ में आ गया। उधर वह पिंगल आर्तध्यान से तपस्या के द्वारा मरकर महाकाल नाम का असुर हो गया। वही द्वेषवश मुझे जन्मते ही हरण कर ले गया किन्तु कुछ दयारूप परिणाम के होने से उसने मेरे कानों में कुण्डल पहनाकर और पर्णलघ्वी विद्या के बल से मुझे आकाश से छोड़ दिया। मध्य में ही गिरते हुए अपने उद्यान में स्थित आपने मुझे झेल लिया और माता पुष्पवती ने बड़े ही प्यार से मेरा लालन-पालन किया है। ओह.....वह सीता मेरी सगी बहन है। नारद ने मुझे चित्रपट दिखाया और उस सीता में आसक्त हो उसे पाने के लिए मैं बेचैन हो उठा। धिक्कार हो इस अज्ञान को.....।"

कुमार भामंडल के मुख से सारी विस्तृत भवावली सुनकर राजा चन्द्रगति उसी क्षण संसार से विरक्त हो गये। वे भामंडल का राज्याभिषेक करके अयोध्या के उद्यान में स्थित 'सर्वभूतहित' मुनिराज के निकट पहुँच गये और मुनिराज से दीक्षा की याचना की। मुनिराज ने भी सभी के विस्तृत भव-भवांतर सुनाये। उस समय रात्रि में ही बंदीजन जोर-जोर

से शब्द करने लगे कि—

"राजा जनक का लक्ष्मीशाली पुत्र भामंडल जयवंत हो रहा है।"

इस उच्चध्वनि को सुनते ही अयोध्या के महल में सोई हुई सीता जाग उठी और विलाप करने लगी-

"हाय! जन्मकाल में ही मेरे भाई का अपहरण हुआ था, वह कहाँ है ?"

रामचन्द्र ने सीता को सान्त्वना देते हुए कहा—

"हे वैदेहि! शोक छोड़ो, हो सकता है तुम्हारा भाई आज तुम्हें मिल जाये।" पुनः सब लोग महावैभव के साथ प्रभात के होने के पहले ही महेन्द्रोदय उद्यान में पहुँच गये। गुरु की वंदना कर यथास्थान बैठ गये। प्रभात होते चन्द्रगति विद्याधर का दीक्षा महोत्सव देखा। पुनः मुनि के द्वारा परिचय को प्राप्त भामण्डल से मिलकर सीता भाई से चिपट कर बहुत ही रोती रही। दशरथ ने तत्क्षण ही मिथिला नगरी आदमी भेजा जो कि विद्या के विमान से जनक को परिवार सहित ले आये। जन्म देने के बाद प्रथम बार पुत्र का मुख देखकर रानी विदेहा पहले तो मूर्च्छा को प्राप्त हो गई पुनः सचेत हो पुत्र को प्राप्त कर एक अद्भुत ही आनन्द को प्राप्त किया। एक महीने तक सब लोग अयोध्या में ठहरे। अनन्तर भामण्डल पिता के साथ मिथिला पहुँचे, वहाँ का राज्य अपने चाचा कनक को देकर अपने माता-पिता को साथ लेकर रथनूपुर आ गये।

1.2 श्रीरामचन्द्र का वनवास-

अयोध्या के सभी जिनमंदिरों की सजावट देखते ही बनती है चूँकि आषाढ़ शुक्ला अष्टमी से आष्टाह्निक महापर्व आया है। अतः दशरथ महाराज ने महामहिम पूजा की तैयारी की है। उस मंदिर की शोभा तो अनिर्वचनीय है। पंचरंगी रत्नचूर्ण से मंडल पूरा गया है। दशरथ राजा ने आठ दिन का उपवास ले रखा है। तुरही के विशाल शब्दों की ध्वनि से सारी अयोध्या मुखरित हो रही है। राजा दशरथ अनेक बन्धु-बांधवों के साथ जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा का महाअभिषेक करके अष्टद्रव्यमय पूजन की सामग्री से महापूजा प्रारंभ कर रहे हैं। सहज सुगंधित खिले हुए पुष्प और स्वर्ण एवं रजत के पुष्प, सामग्री की शोभा बढ़ा रहे हैं। जैसे इन्द्र सपरिवार, नन्दीश्वर द्वीप में आठ दिन लगातार पूजा-विधि सम्पन्न करता है, वैसे ही महाराजा दशरथ सपरिवार आष्टान्हिक पूजा में तत्पर हैं।

आठ दिन के अनन्तर जब रानियाँ घर पहुँच गईं तब राजा दशरथ ने सबके लिए महापवित्र, शांतिकारक गंधोदक भिजवाया। तीन रानियों के पास गंधोदक यथासमय पहुँचा किन्तु छोटी रानी सुप्रभा के पास गंधोदक नहीं पहुँचा। उसे इस बात का इतना दुःख हुआ कि वह मरने के लिए तैयार हो गई और एक नौकर से चुपचाप विष लाकर देने को कहा। मध्याह्नोपरांत राजा दशरथ घर आये उन्होंने सुप्रभा को शयन कक्ष में उन्मनस्क देख स्थिति समझनी चाही कि इसी बीच में वह नौकर विष लेकर पहुँच गया। राजा ने विष को स्वयं हाथ में लेकर एक तरफ रखा, रानी से उसका कारण 'गंधोदक न मिलना' सुनकर उसे समझाने लगे। इसी बीच में वृद्ध कंचुकी गंधोदक लेकर वहाँ पहुँच गया तब रानी ने गंधोदक मस्तक पर धारण कर संतोष व्यक्त किया।

इसी बीच राजा ने कंचुकी से कहा—

"अरे नीच अधम! बता तुझे यह विलम्ब कहाँ हुआ ?"

भय से काँपते हुए उस कंचुकी ने महाराज को घुटने टेककर प्रणाम किया पुनः हाथ जोड़कर लड़खड़ाते शब्दों में अपने बुढ़ापे की दुर्दशा का वर्णन करना शुरू किया—

"स्वामिन्! इस बुढ़ापे से मैं अब जल्दी-जल्दी चलने में सर्वथा असमर्थ हूँ। इस लाठी के सहारे बड़े कष्ट से पैर उठाता हूँ। कमर के झुक जाने से चलते-चलते कई बार गिर जाता हूँ, आँखें जवाब दे चुकी हैं, कानों से कम सुनता हूँ। चूँकि यह राजकुल मेरी वंश परम्परा से चला आया है अतः छोड़ने में असमर्थ हो रहा हूँ, मुझे निकटवर्ती मृत्यु से इतना

भय नहीं है कि जितना भय भविष्य में होने वाली आपके चरणों की सेवा के अभाव का है। आपकी सम्माननीय आज्ञा ही मेरे जीवित रहने का कारण है। देव! मेरे इस शरीर को जरा से जर्जरित जानकर मुझ पर क्रोध करना आपको उचित नहीं है। अतः हे धीर! प्रसन्नता धारण करो।'

1.2.1 राजा दशरथ को वैराग्य एवं भरत को दीक्षा हेतु जाते देख कैकेयी का दशरथ से वरदान माँगना-

कंचुकी के द्वारा बुढ़ापे के वर्णन को सुनते-सुनते राजा दशरथ को एकदम संसार से वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। वे सोचते हैं कि "यह हमारा वंशपरम्परागत व्रत है कि हमारे धीरवीर वंशज विरक्त हो पुत्र के लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर तपोवन में प्रवेश कर जाते हैं।"

अनंतर कुछ काल व्यतीत हो जाने पर बड़े भारी संघ से घिरे हुए मनःपर्ययज्ञान के धारी 'सर्वभूतहित' नामक आचार्य अयोध्या के महेंद्रोदय उद्यान में पधारे। राजा दशरथ सपरिवार मुनि वंदना को निकल पड़े। गुरु के दर्शन करके उनसे अपने भव-भवांतरों को सुनकर पूर्णतया विरक्त हुए राजा राज दरबार में आये और राम के राज्याभिषेक का विचार मंत्रियों से व्यक्त कर दिया। स्वामी को दीक्षा के सन्मुख देख मंत्रियों में और अन्तःपुर में सर्वत्र शोक का वातावरण छा गया।

पिता को विरक्त देख भरत भी प्रतिबोध को प्राप्त हो साथ ही दीक्षा लेने के लिए सोचने लगा। भरत के चेहरे से उसकी विरक्ति का अभिप्राय समझकर कैकेयी अत्यर्थ चिंतित हो गई। पुनः वह कुछ सोचकर पति के पास पहुँचकर निवेदन करती है—

"हे नाथ! जब युद्ध के समय मैंने आपकी सहायता की थी उस समय प्रसन्न होकर आपने समस्त राजाओं और पत्नियों के सामने कहा था कि 'जो तू चाहेगी दूँगा।' सो हे नाथ! इस समय वह वर मुझे दीजिए।"

"हे प्रिये! ' तू अपना अभिप्राय बता।' जो तुझे इष्ट हो सो मांग, अभी देता हूँ।"

कैकेयी पति के वियोग से होने वाले दुःख से दुःखी हो आंसू डालती हुई नीचे मुख करके बोलती है—

"हे नाथ! मेरे पुत्र को राज्य प्रदान कीजिए।"

तब दशरथ ने कहा—

"इसमें लज्जा की क्या बात है ? तुमने अपनी धरोहर मेरे पास रख छोड़ी थी सो जैसा तुम चाहती हो वैसा ही होगा। शोक छोड़ो, आज तुमने मुझे ऋण से मुक्त कर दिया है।"

उसी समय दशरथ, राम को बुलाकर खिन्न चित्त से कहते हैं—

"हे वत्स! कला की पारगामिनी इस चतुर कैकेयी ने पहले भयंकर युद्ध में अच्छी तरह मेरे सारथी का काम किया था। उस समय संतुष्ट होकर मैंने सभी के समक्ष इसे वर मांगने के लिए कहा था, सो यह आज अपने पुत्र के लिए राज्य माँग रही है। उस समय प्रतिज्ञा कर यदि इस समय मैं इसके इच्छानुरूप वर नहीं देता हूँ तो भरत दीक्षित हो जावेगा और यह पुत्र के शोक में प्राण छोड़ देगी तथा असत्य व्यवहार से मेरी अपकीर्ति चारों तरफ फैल जायेगी। साथ ही यह भी मर्यादा नहीं है कि बड़े पुत्र के योग्य होते हुए छोटे पुत्र को राज्य दिया जाये। जब भरत को राज्य दे दिया जायेगा तब क्षत्रिय संबंधी परम तेज को धारण करने वाले तुम लक्ष्मण के साथ कहाँ जाओगे ? यह मैं नहीं जानता हूँ। तुम पंडित हो, अतः बताओ इस दुःखपूर्ण, बहुत बड़ी चिंता के मध्य में स्थित अब मैं क्या करूँ ?"

प्रसन्नमना राम पिता के चरणों में दृष्टि लगाये हुए विनयपूर्वक निवेदन करते हैं—

"हे पिताजी! आप अपने सत्यव्रत की रक्षा कीजिए और मेरी चिंता छोड़िये। यदि आपकी अपकीर्ति हो तो मुझे इन्द्र की लक्ष्मी से भी क्या प्रयोजन है ? जो पिता को पवित्र करे अथवा शोक से उनकी रक्षा करे, पुत्र का पुत्रपना यही है।"

जब पिता पुत्र में ऐसी उत्तम चर्चा चल रही थी इसी बीच भरत दीक्षा के लिए तत्पर हो नीचे उतरने लगे। यह देख लोग हाहाकार करने लगे। पिता ने स्नेह से आर्द्र हो उसे रोक लिया और अपनी गोद में बिठा कर उसके मस्तक पर हाथ

फेरते हुए बोले—

"हे पुत्र! तू राज्य का पालन कर, मैं तपोवन को जा रहा हूँ।"

भरत ने कहा—"पूज्य पिताजी! मैं भी दीक्षा ग्रहण करूँगा।'

"पुत्र! अभी तू नवीन वय से युक्त है, अतः कुछ दिन राज्य सुख का अनुभव कर पुनः दीक्षा लेना। देख! गृहस्थाश्रम में भी धर्म धारण किया जाता है।"

"हे तात! यदि कर्मों का क्षय घर में ही हो जाता तो आप दीक्षा क्यों ले रहे हैं ? अहो! जो पुत्र को दुःख से तारे और तप की अनुमोदना करे यही तात का तातपना है पुनः आप मुझे इस राज्य में क्यों फँसा रहे हैं ?"

"हे वत्स! तू धन्य है, तू प्रतिबोध को प्राप्त है, सचमुच में तू उत्तम भव्य है। फिर भी हे धीर! तूने कभी भी मेरे स्नेह को भंग नहीं किया है, तू विनयी मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ है। सुन, एक बार युद्ध में मेरे प्राणों के संशय के समय तेरी माँ के उपकार से प्रसन्न हो मैंने उसे वर दिया था सो उसने आज तेरे लिए राज्य की याचना की है। इन्द्र के समान निष्कंटक राज्य कर, जिससे असत्य के कारण मेरी अपकीर्ति न हो। चूँकि अपत्य अर्थात् पुत्र का अपत्यपना यही है कि जो माता-पिता को शोकरूपी महासागर में नहीं गिरने दे।"

तदनंतर प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखते हुए श्री रामचन्द्र ने भरत का हाथ पकड़कर मधुर शब्दों में कहना शुरू किया—

"भाई! देखो, अभी तुम्हारी वय दीक्षा के योग्य नहीं है पुनश्च यह तुम्हारी माता यदि तुम्हारे जैसे पुत्र के रहते हुए मरण को प्राप्त हो तो क्या यह तुम्हारे लिए उचित है ? अहो! पिता के सत्य वचन की रक्षा के लिए हम शरीर को भी छोड़ सकते हैं फिर तुम बुद्धिमान होकर भी लक्ष्मी को क्यों नहीं ग्रहण कर रहे हो ? मैं किसी नदी के किनारे, पर्वत पर, अथवा वन में निवास करूँगा जहाँ कि कोई जान नहीं सकेगा इसलिए तू इच्छानुसार राज्य कर।"

इतना कहकर रामचन्द्र पिता को नमस्कार कर वहाँ से चले गये। उसी क्षण दशरथ मूर्च्छा को प्राप्त हो गये। उधर रामचन्द्र अपनी माता अपराजिता के पास पहुँचे, उन्हें जैसे-तैसे सान्त्वना देकर सीता के पास पहुँचे। सीता रामचन्द्र के बहुत कुछ समझाने पर भी साथ चलने के लिए ही कटिबद्ध रही तब सीता को साथ ले पुनः पिता के पास आकर उन्हें सान्त्वना देकर अनेकों मंत्रियों, राजाओं से तथा परिवार के अन्य लोगों से आदरपूर्वक पूछकर श्रीरामचन्द्र चल पड़े। मंत्री लोग बहुत से रथ, हाथी, घोड़े आदि लाये थे किन्तु सबकी उपेक्षा कर वे पैदल ही चल पड़े। लक्ष्मण भी एक क्षण के लिए सोचते हैं—

"हाय! यह कैसा अनर्थ है ? पिताजी ने यह क्या किया ? रामचन्द्र के समान दुर्लभ हृदय तो मुनि के भी जब कभी ही होता होगा। ऐसे महामना रामचन्द्र वन में विचरण करेंगे। क्या मैं आज ही दूसरी सृष्टि रच डालूँ ? क्या बलपूर्वक इन्हें राज्य लक्ष्मी में उत्सुक करूँ ? अथवा इस क्रोध से क्या प्रयोजन ? उचित या अनुचित यह सब पिताजी और बड़े भाई ही जानते हैं। मुझे तो इस समय इनकी सेवा में चल पड़ना ही उचित है।"

1.2.2 श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण एवं सीता का वनगमन-

बस, इतना सोचकर लक्ष्मण पिता-माता व परिवार की आज्ञा लेकर श्रीरामचन्द्र के साथ चल पड़े।

उस समय का दृश्य बहुत ही करुण था। सीता के साथ राम-लक्ष्मण आगे बढ़े जा रहे हैं। माता-पिता और समस्त परिवार भरत और शत्रुघ्न पुत्रों के साथ धारा प्रवाह अश्रु बरसा रहे हैं। परन्तु राम-लक्ष्मण दृढ़ निश्चयी थे अतः वे सान्त्वना देते हुए बार-बार चरणों में गिरकर जैसे-तैसे माता-पिता आदि को वापस लौटाते हैं और जैसे-तैसे महल से बाहर निकल पाते हैं। उस समय भी बहुत से राजा लोग, मंत्री-अमात्य लोग और पुरवासी उनके साथ ही चलते चले जाते हैं। शहर में नाना तरह की चर्चा होने लगती है सब अपने मकान छोड़-छोड़कर भाग आते हैं—

"अरे माता! यह क्या हो रहा है ? यह सब किसने कर डाला।"

"हाय, हाय, यह नगरी अभागिन हो गई, अब हम सब भी इन्हीं के साथ चलेंगें।"

"देखो, देखो, यह सीता कैसी जा रही है ? अरे पतिव्रता स्त्रियों का यह उदाहरण है।"

"हाय, हाय , इस नगर के देवता कहाँ चले गये ? यह बड़ा अनुचित हो रहा है।"

"अरे भाई! भरत तो दीक्षा लेना चाहता था किन्तु राजा दशरथ ने यह क्या कर दिया ?"

"ओहो! राम-लक्ष्मण को भी यह कौन सी बुद्धि उत्पन्न हुई ?"

इत्यादि प्रकार से बोलती हुई और अश्रुओं से पृथ्वीतल को सींचती हुई समस्त प्रजा राम-लक्ष्मण के पीछे चल पड़ती है। कोई उनके चरणों में बार-बार नमस्कार करते हैं, कोई पूजा करते हैं, कोई भक्तिवश उनसे वार्तालाप करना चाहते हैं। प्रजा की नाना चेष्टाओं को देखते हुए रामचन्द्र अत्यर्थरूप से उन्हें सम्बोधते हैं और वापस जाने को कहते हैं किन्तु लोग उनकी कुछ भी नहीं सुनकर पागलवत् पीछे-पीछे चलते रहते हैं।

वे दोनों राजपुत्र सीता सहित अरहनाथ के मंदिर में प्रवेश करते हैं। संध्या का समय है। दो दरवाजों के बाद तृतीय दरवाजे पर सबको रोक दिया जाता है। उस समय वहाँ मंदिर में अपराजिता, सुमित्रा आदि माताएं आ जाती हैं। नाना प्रकार से विलाप करती हुई पुत्रों से चलने का आग्रह करती हैं पुनः लाचार हो वापस दशरथ के पास पहुँचती हैं और कहती हैं—

"हे वल्लभ! शोकरूपी समुद्र में डूबते हुए इस रघुकुलरूपी जहाज को रोको, लक्ष्मण सहित राम को वापस बुलाओ।"

"देवियों! यह जगत् मेरे अधीन नहीं है। मेरी इच्छानुसार यदि कार्य होवे तो मैं तो यही चाहता हूँ कि समस्त प्राणी सदा ही सुखी रहें, किसी को किंचित् मात्र भी दुःख न हो किन्तु यह जगत तो कर्मों के अधीन है, बाँधव आदि इष्ट पदार्थों से कभी भी किसी को तृप्ति न हुई है और न होगी।....आप लोग पुत्रवाली हो इसलिए अपने पुत्रों को लौटा लो। मैं तो राज्य का अधिकार छोड़ चुका हूँ और संसार के भय से भीत हूँ अतः मुनि व्रत धारण करूँगा।"

अर्द्धरात्रि के समय हाथ में दीपक को लेकर लक्ष्मण और सीता सहित रामचन्द्र मंदिर के बाहर निकलकर चल पड़े। जब प्रातः सभी सामन्त व पुरवासी लोगों ने देखा कि रामचन्द्र धोखा देकर चले गये हैं तो वे पुनः दौड़-दौड़कर उनके निकट पहुँच जाते हैं और भावपूर्वक पुनः-पुनः प्रणाम करके उनके साथ-साथ चलने की इच्छा व्यक्त करते हैं। राम-लक्ष्मण धीरे-धीरे परियात्रा नामक वनी में पहुँचते हैं। वहाँ शर्वरी नाम की नदी थी उसी के तट पर बैठकर रामचन्द्र कुछ लोगों को तो वापस लौटा देते हैं और कुछ लोग बहुत भारी प्रयत्न से भी नहीं लौटते हैं। तब रामचन्द्र कहते हैं—

"बन्धुओं! हम लोगों के साथ तुम्हारा इतना ही समागम था। अब हमारे और तुम्हारे बीच यह नदी सीमा बन गई है। इसलिए अब तुम सभी लोग लौट जाओ। पिताजी ने तुम सबके लिए भरत को राजा बनाया है सो तुम सब निर्भय होकर उसी की शरण में रहो।"

इतना कहकर उन सबकी करुण प्रार्थना की सर्वथा उपेक्षा करने वाले रामचन्द्र सीता को लेकर नदी पार कर जाते हैं। सामंत, राजागण और प्रजागण रोते हुए इधर-उधर घूमने लगते हैं पुनः उस वन में एक मंदिर में पहुँचते हैं। वहाँ पर महामुनि के दर्शन करके विरक्त हो दिगम्बर मुनि बन जाते हैं कुछ लोग अणुव्रती श्रावक बन जाते हैं और कुछ लोग सम्यग्दर्शन को ग्रहण कर रोते-बिलखते वापस आ जाते हैं।

1.3 राजा दशरथ की दीक्षा एवं भरत का राज्याभिषेक-

राजा दशरथ भरत का राज्याभिषेक करके महेंद्रोदय उद्यान में पहुँचते हैं और बहत्तर राजाओं के साथ सर्वभूतहित गुरु के पास दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। उत्तम संहनन से युक्त होने से गुरु की आज्ञा लेकर एकाकी विहार करने लगते हैं चूँकि वे जिनकल्पी हैं। यद्यपि मुनिराज दशरथ सदा ही शुभ ध्यान की इच्छा रखते हैं फिर भी कदाचित्- क्वचित् उनका मन पुत्रशोक के कारण कलुषित हो जाता है तब वे योगारूढ़ हो संसार की स्थिति का विचार करके मन को शांत कर लेते हैं।

इधर पति और पुत्र के वियोग से दु:खी हुई अपराजिता और सुमित्रा के अश्रुओं की अविरल धारा को देखकर कैकेयी अतीव दु:खी होती है, पश्चात्ताप करती है और भरत को समझाकर सभी सामंतों को साथ लेकर अपराजिता आदि के साथ रामचन्द्र के पास पहुँचकर पुन:-पुन: क्षमायाचना करते हुए उन्हें वापस चलने का आग्रह करती है—

"हे पुत्रों! मेरे द्वारा जो भी गलती हुई है क्षमा करो और चलो! ये तुम्हारी मातायें शोक में पागल हो रही हैं, तुम लोग इतने निष्ठुर क्यों हो रहे हो ?"

भरत निवेदन करते हैं—

"हे नाथ! आपने राज्य देकर मेरी यह क्या विडम्बना की है ? जो हुआ, सो हुआ, अब भी स्थिति को संभालो।"

इत्यादि प्रकार से अनुनय-विनय करने पर भी श्री रामचन्द्र कहते हैं—

"भाई! क्षत्रिय पुत्र एक बार जो निश्चय कर लेते हैं उसे अन्यथा नहीं करते हैं अत: तुम सब शोक छोड़ो और सुखपूर्वक प्रजा का पालन करो। यदि तुम समझते हो कि यह अनुचित है सो अनुचित नहीं है चूँकि मैं स्वयं तुम्हें राज्याधिकार दे रहा हूँ।" ऐसा कहते हुए पुनरपि तमाम राजाओं के समक्ष स्वयं श्री रामचन्द्र उसी वन में भरत का राज्याभिषेक करके अनेकों मधुर वचनों से समझा-बुझाकर सभी को वापस भेज देते हैं।

भरत वापस अयोध्या आकर जिनमंदिर में जाकर जिनेन्द्र भगवान की महान पूजा करते हैं पुन: 'द्युति' नाम के आचार्य के निकट पहुँचकर उनकी वंदना करके यह प्रतिज्ञा करते हैं कि "मैं राम के दर्शन मात्र से मुनिव्रत धारण कर लूँगा। अनन्तर महामुनि भरत को समझाते हैं—

"हे भरत! जब तक तुम घर में हो तब तक गृहस्थ के धर्म का पालन करो क्योंकि यह गृहस्थ धर्म मुनि धर्म का छोटा भाई है।" पुन: उस धर्म का विस्तार से वर्णन करते हैं। भरत महाराज गृहस्थ धर्म को विशेष रीति से पालने हेतु स्त्रियों के बीच में रहकर भी जल से भिन्न कमल के सदृश भोगों से अनासक्त रहते हुए मुनिव्रत की भावना भाते रहते हैं।

1.4 परोपकार-

यत्र-तत्र विचरण करते हुए श्रीरामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण के साथ दशांगपुर नगर के समीप पहुँचते हैं। समीप के उद्यान में एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। ऊजड़ होते हुए गाँव को देखकर लक्ष्मण ने पता लगाया और श्री रामचन्द्र से निवेदन किया।

"देव! इस नगर के राजा वज्रकर्ण ने यह प्रतिज्ञा ली हुई है कि मैं जिनेन्द्रदेव और निर्ग्रन्थ गुरु के सिवाय किसी को नमस्कार नहीं करूँगा, सो उसने अपने अंगूठे में पहनी हुई अंगूठी में मुनिसुव्रतनाथ की प्रतिमा विराजमान कर रखी है। जब वह अपने स्वामी सिंहोदर की सभा में जाता था तब उस प्रतिमा को लक्ष्य कर नमस्कार करता था। किसी ने यह भेद सिंहोदर महाराज से कह दिया तब उसने इस सम्यग्दृष्टि के राज्य पर चढ़ाई करके चारों तरफ से इसे घेर लिया। अब यह यह बेचारा वज्रकर्ण पूर्ण संकट के मध्य स्थित है।"

पुन: रामचन्द्र की आज्ञा पाकर लक्ष्मण सिंहोदर की सेना को नष्ट-भ्रष्ट कर सिंहोदर को बाँध लाते हैं। रामचन्द्र वज्रकर्ण को भी बुला लेते हैं, सिंहोदर द्वेष को छोड़कर जैनधर्म का कट्टर श्रद्धालु हो जाता है। उस समय वज्रकर्ण, सिंहोदर आदि राजागण लक्ष्मण की तीन सौ कन्याओं के साथ विवाह विधि करना चाहते हैं किन्तु लक्ष्मण कहते हैं—

"मैं जब तक अपने बाहुबल से अर्जित स्थान प्राप्त नहीं कर लूँ तब तक स्त्रियों को साथ नहीं रखूँगा।"

1.4.1 लक्ष्मण एवं कल्याणमाला का विवाह-

कुछ दिन बाद ये लोग अन्यत्र किसी सुन्दर वन में पहुँचते हैं। लक्ष्मण जल हेतु पास के सरोवर पर पहुँचते हैं। उधर एक राजकुमार जलक्रीड़ा के लिए वहाँ आया था सो उन्हें देखकर अपने तम्बू में बुला लेता है तथा वन में विराजे हुए रामचन्द्र और सीता को अपने स्थान पर बुलाकर उन्हें स्नान-भोजन आदि से संतृप्त कर आप एकांत में जाकर अपने स्त्रीरूप को प्रकट कर लेता है। उस समय रामचन्द्र पूछते हैं—

थकान समाप्त हो जाती है और हर्ष से विभोर हो निकट पहुँचते हैं। उस समय मुनियों के शरीर में अनेक सर्प और बिच्छू लिपटे हुए थे जो अति भयंकर दिख रहे थे। उन्हें देखकर रामचन्द्र और लक्ष्मण जैसे-तैसे उन जन्तुओं को अपने धनुष के अग्रभाग से दूर करते हैं किन्तु पुनः पुनः वे जन्तु वहाँ आ जाते हैं।

अनन्तर भक्ति से भरी सीता निर्झर के जल से उन मुनियों के चरणों का प्रक्षालन करती है, गन्ध का लेपन करती है। पुनः लक्ष्मण के द्वारा लाकर दिये गये सुगंधित पुष्पों से उनके चरणों की पूजा करती है। पश्चात् अंजलि जोड़कर तीनों जन खूब स्तुति करते हैं। रामचन्द्र वीणा बजाते हैं और सीता भक्ति में विभोर हो सुन्दर नृत्य करती है।

धीरे-धीरे सूर्य अस्त हो जाता है और चारों तरफ अंधकार अपना साम्राज्य फैला लेता है। उसी समय ऐसा विचित्र शब्द सुनाई देता है कि मानों यह आकाश ही भेदन कर डालेगा। रुण्ड-मुण्ड विकराल रूप दिखाने लगते हैं। डाकिनी नाचने लगती हैं। राक्षस, भूत, पिशाचों का अट्टहास होने लगता है। सीता घबड़ाकर रामचन्द्र से चिपट जाती है तब रामचन्द्र बोलते हैं—

"हे देवि! हे शुभमानसे! डरो मत, सर्व प्रकार के भय को दूर करने वाले इन मुनियों के चरणों का आश्रय लेकर बैठ जाओ।"

इतना कहकर रामचन्द्र सीता को मुनि के चरणों के समीप बिठाकर स्वयं लक्ष्मण के साथ धनुष को तान कर खड़े हो जाते हैं। इन दोनों के धनुष की टंकार से ऐसा प्रतीत होता है कि मानों आकाश से वज्र ही गिर रहे हों। तदनन्तर 'ये बलभद्र और नारायण हैं' ऐसा जानकर वह अग्निप्रभ नाम का देव घबड़ा कर भाग जाता है। उन ज्योतिषी देव के जाते ही सब चेष्टाएं तत्क्षण ही विलीन हो जाती हैं।

उसी क्षण मुनिराज क्षपक श्रेणी पर आरोहण कर घातिया कर्मों का नाश कर देते हैं और दोनों को एक साथ ही केवलज्ञान प्रगट हो जाता है। समय मात्र में ही चतुर्निकाय देव अपने वाहनों पर सवार हो वहाँ एकत्रित हो जाते हैं। दोनों मुनि गंधकुटी में विराजमान हो जाते हैं। उस समय वहाँ पर रात दिन का भेद समाप्त हो जाता है। बारह सभा में सब यथास्थान बैठ जाते हैं।

1.5.1 केवली भगवान की दिव्यध्वनि द्वारा देशभूषण-कुलभूषण मुनि के दीक्षा लेने का वृत्तान्त-

इन्द्रादि लोग केवलज्ञान महोत्सव मनाकर भगवान् की दिव्यध्वनि को श्रवण करते हुए अपने-अपने कोठे में बैठ जाते हैं। राम-लक्ष्मण भी सीता के साथ केवली भगवान् की पूजा करके मनुष्य के कोठे में जा बैठते हैं। श्री रामचन्द्र प्रश्न करते हैं—

"प्रभो! इस देव ने आप पर अथवा अपने पर ही यह उपसर्ग क्यों किया है ?" केवली भगवान् की दिव्यध्वनि खिरती है—

"पद्मिनीनगर के राजा विजयपर्वत का एक अमृतस्वर नाम का दूत था उसकी उपयोगा नाम की भार्या थी और उदित और मुदित नाम के दो पुत्र थे। अमृतस्वर का एक वसुभूति नाम का मित्र था, जो उपयोगा के साथ गुप्त रूप से व्यभिचार कर्म करता था। एक दिन उपयोगा की प्रेरणा से उसने अमृतस्वर को मार डाला। पुत्रों को विदित होने से पितृघाती वसुभूति को इन दोनों ने भी जान से मार दिया। कुछ दिन बाद उदित और मुदित दोनों भाई दीक्षा लेकर मुनि हो गये और कई भवों के बाद ये सिद्धार्थ नगर के राजा क्षेमंकर की विमला देवी रानी के पुत्र हो गये। इनका देशभूषण और कुलभूषण ये नाम रखा गया। सागरसेन नामक महाविद्वान के पास ये दोनों विद्याध्ययन करने लगे और उस विद्याध्ययन में ये इतने तन्मय हुए कि इन्हें अपने घर का ही कुछ पता नहीं रहा। विद्याध्ययन के अनन्तर विवाह योग्य देखकर पिता ने राजकन्यायें बुलाई हैं ऐसा इन्हें विदित हुआ। दोनों भाई उस समय नगर की शोभा देखते हुए बाहर जा रहे थे कि अकस्मात् उनकी दृष्टि ऊँचे महल के झरोखे में बैठी हुई एक कन्या पर पड़ी। दोनों ही भाइयों ने उस कन्या के लिए

अपने-अपने मन में एक-दूसरे भाई के वध करने का विचार बना लिया। उसी समय बंदी के मुख से यह शब्द निकला कि—"राजा क्षेमंकर और महारानी विमला सदा जयवन्त रहें कि जिनके ये देवों के समान दोनों पुत्र हैं तथा झरोखे में बैठी हुई यह कमलोत्सवा कन्या भी धन्य है कि जिसके ये दोनों भाई हैं।"

बंदी के मुख से ऐसा सुनकर 'अरे! यह हमारी बहन है' ऐसा सोचकर उसी क्षण दोनों भाई परम वैराग्य को प्राप्त हो गये।

"अहो! हम लोगों के द्वारा इस भारी पाप को धिक्कार हो, धिक्कार हो, धिक्कार हो। अहो! मोह की दारुणता तो देखो कि जिससे हमने बहन की ही इच्छा की। हम लोग तो प्रमाद से ऐसा विचार मन में आ जाने से ही दु:खी हो रहे हैं। पुन: जो जानबूझ कर ऐसा पाप करते होंगे उन्हें क्या कहना चाहिए ?"

इत्यादि रूप से सोचते हुए दोनों भाई एक-दूसरे से अपने मन की बात कहकर दीक्षा के लिए तैयार हो गये। माता-पिता आदि के अनेक प्रयत्नों के बावजूद भी ये दीक्षित हो नाना देशों में विहार कर यहाँ आये और प्रतिमायोग में स्थित हो गये। जो वह हमारे पिता को मारने वाला वसुभूति था वह अनेक पर्यायों में भ्रमण कर एक बार अनुंधर नाम का तापसी हो गया और मिथ्या तप के प्रभाव से ज्योतिषी देवों में अग्निप्रभ देव हो गया। एक समय इसने अनन्तवीर्य केवली के मुख से यह सुना कि मुनिसुव्रत भगवान के तीर्थ में देशभूषण कूलभुषण केवली होंगे। सो यहाँ हम दोनों को देखकर इसने सोचा कि मैं 'अनन्तवीर्य केवली' के वचनों को मिथ्या कर दूँ।' इस भाव से तथा पूर्व के वैर के निमित्त से इसने हम दोनों पर उपसर्ग करना प्रारंभ कर दिया। पुन: तुम्हें 'बलभद्र' समझ भयभीत हो तिरोहित हो गया है।

1.5.2 श्री रामचन्द्र के तद्भव मोक्षगामी होने का वर्णन-

अनन्तर दिव्यध्वनि से तमाम लोग धर्मामृत पीकर तृप्त हुए। राम ने यह सुना कि मैं इसी भव से मोक्ष प्राप्त करूँगा। रामचन्द्र को चरम शरीरी जान समस्त राजागण जयध्वनि के साथ उनकी स्तुति कर उन्हें नमस्कार करते हैं। वंशस्थल नगर के राजा सुरप्रभ राम से अपने नगर में चलने के लिए बहुत कुछ आग्रह करते हैं किन्तु वे स्वीकार न कर उसी पर्वत पर निवास करते हैं। तब राजा सुरप्रभ वहीं पर तमाम ध्वजा, तोरण आदि लगाकर भूमि को अतिशय रम्य कर देते हैं और तो क्या उस समय श्रीराम जहाँ-जहाँ चरण रखते हैं, वहाँ-वहाँ पृथ्वी तल पर बड़े-बड़े कमल रख दिये जाते हैं। जहाँ-तहाँ मणियों और सुवर्ण से चित्रित अतिशय सुखद स्पर्श वाले आसन और स्थान बनाये गये हैं। भोजनशाला आदि की उत्तम व्यवस्था की गयी है।

गौतम स्वामी कहते हैं कि—

"हे राजन् ! जगत के चन्द्रस्वरूप रामचन्द्र ने उस पर्वत पर भगवान् जिनेन्द्रदेव की हजारों प्रतिमाएं बनवाई थीं। जिनमें सदा महामहोत्सव होते रहते थे। ऐसे राम के बनवाये हुए जिनमंदिरों की पंक्तियाँ उस पर्वत पर जहाँ-तहाँ सुशोभित हो रही थीं। उन मंदिरों में सर्व लोगों द्वारा नमस्कृत पंचवर्ण की जिनप्रतिमाएं अतिशय शोभायमान हो रही थीं।"

अनंन्तर एक दिन रामचन्द्र लक्ष्मण से कहते हैं—

"अब आगे क्या करना है ? इस उत्तम पर्वत पर सुख से बहुत समय व्यतीत किया है, जिनमंदिरों के निर्माण से उज्ज्वल कीर्ति प्राप्त की है। हे भाई! देखो, ये राजा उत्तम-उत्तम सेवा के वशीभूत होकर यदि यहीं रहते हैं तो अपना संकल्पित कार्य नष्ट होता है। यद्यपि इन भोगों से हमें कोई प्रयोजन नहीं है तो भी, ये भोग हमें क्षण भर के लिए नहीं छोड़ते हैं। यहाँ रहते हुए हमारे जो भी दिन व्यतीत हो गये उनका फिर से आगमन नहीं होगा। हे लक्ष्मण! सुनते हैं कर्णरवा नदी के उस पार दण्डक वन है जहाँ भूमिगोचरियों का पहुँचना प्राय: कठिन है। अपन वहीं चलें, देशों से रहित उस वन में भरत की आज्ञा का प्रवेश नहीं है इसलिए वहाँ अपना घर बनायेंगें और शोक से व्याकुल हुई अपनी माताओं को वहीं ले आयेंगे।"

ऐसा सुनकर लक्ष्मण ने कहा—

"जो आज्ञा!" उस समय वंशस्थल का राजा बहुत दूर तक उन दोनों को छोड़ने आता है पुनः शोकाकुल हो वापस चला जाता है। ये लोग निर्मोह भाव से आगे बढ़ते जा रहे हैं।

1.6 श्रीराम-सीता चारणऋद्धिधारी मुनियों को आहारदान—

आकाशमार्ग से आते हुए सुगुप्ति और गुप्ति नामक दो मुनिराजों का पड़गाहन करके श्रीरामचन्द्र सीता के साथ भक्तिपूर्वक आहारदान दे रहे हैं, सामने वृक्ष पर बैठा एक गिद्ध पक्षी एकटक देख रहा है। उस आहारदान के समय देवतागण आकाश से रत्नवृष्टि करने लगे, दुंदुभि बाजे बजने लगे।

इधर पंचाश्चर्य वृष्टि हो रही है, उधर गिद्ध पक्षी को मुनिराज के दर्शन से अपने अनेकों पूर्वभवों का स्मरण हो जाता है। वह आकुल-व्याकुल होकर वृक्ष के नीचे आ जाता है। उसे निकट आया देख सीता घबड़ा कर हल्ला मचाते हुए उसे दूर करने का प्रयत्न करती है किन्तु वह न हटकर पास में ही रखे हुए मुनि के चरणोदक को पीने लगता है। चरणोदक के प्रभाव से उसी समय उसका शरीर रत्नराशि के समान नाना प्रकार के तेज से युक्त हो जाता है। उसके दोनों पंख सुवर्ण के सदृश, पैर नील मणि के सदृश, शरीर नाना रत्नों की कांति के सदृश एवं चोंच मूंगे के सदृश दिखने लगती है। अपने आपको अन्य रूप हुआ देख वह हर्षित होता हुआ देवदुंदुभि की ध्वनि के साथ नृत्य करने लगता है।

1.6.1 मुनिराज द्वारा गिद्धपक्षी के पूर्वजन्म का वर्णन—

आहार के अनन्तर मुनिराज रामचन्द्र की प्रेरणा से पास के शिलातल पर बैठ जाते हैं उस समय वह पक्षी मुनिराज की तीन प्रदक्षिणा देकर उनके निकट हर्षाश्रु को गिराता हुआ विनीत भाव से बैठ जाता है। रामचन्द्र कौतुकपूर्ण दृष्टि से पक्षी को देखते हुए गुरु के चरणों में नमस्कार कर प्रश्न करते हैं—

"भगवन् ! अत्यन्त विरूप का धारक यह पक्षी क्षणमात्र में रत्नों की कांति का धारक कैसे हो गया ?" मुनिराज कहते हैं—

"रामचन्द्र! इसे अपने अनेकों भवों का जातिस्मरण हो आया है अतः यह घबड़ाकर अब धर्म की शरण में आया है।"

"प्रभो! इसे क्या जातिस्मरण हुआ है ?"

"सुनो!"

इसी देश में कर्णकुण्डल नाम का एक मनोहर देश था। उस देश का परमप्रतापी महामानी दण्डक नाम का राजा था। उसकी रानी परिव्राजकों की भक्त थी। राजा दण्डक भी रानी के वशीभूत होने से उसी पापपोषक धर्म का आश्रय लेता था। किसी समय राजा ने ध्यान में स्थित एक महामुनि के गले में मरा हुआ सर्प डाल दिया। कई दिन बाद एक श्रावक उधर से निकला, यह दृश्य देखकर घबराया हुआ वह मुनि के गले से सर्प निकाल रहा था कि अकस्मात् राजा भी उसी मार्ग से निकले। उन्होंने पूछा—

"यह क्या है ?"

श्रावक ने कहा—"महाराज! नरक की खोज करने वाले किसी पापी ने अकारण ही इन महामुनि पर उपसर्ग किया है।"

कुछ भी प्रतीकार नहीं करने वाले मुनि को उसी प्रकार ध्यानारूढ़ देख राजा ने मुनि को बार-बार प्रणाम किया और क्षमा याचना की। पुनः यथास्थान चला गया। उस समय से राजा दिगम्बर मुनियों की भक्ति में तत्पर रहने लगा।

राजा के इस धर्मपरिवर्तन को देखकर एक परिव्राजक ने कुपित हो उपाय सोचा। पुनः उसने नग्न दिगम्बर मुनि के वेश को बनाकर रानी के साथ संपर्क किया। जब राजा को इस निंद्य कार्य का पता लगा तब वह पूर्व में मंत्री

द्वारा कहे गये निर्ग्रन्थ मुनियों के निंदा के वाक्यों का स्मरण कर-करके दिगम्बरों के प्रति पुनः द्वेष भाव को प्राप्त हो गया। पुनः दुष्ट लोगों के द्वारा प्रेरित हुए राजा ने अनेक सेवकों को कहा कि जितने भी दिगम्बर मुनि दिखें सभी को घानी में पेल दो। उस काल में वहाँ पर एक विशाल मुनि संघ आया हुआ था। आचार्य के साथ-साथ ही सभी मुनियों को किन्नरों ने राजाज्ञानुसार घानी में पेल डाला। सभी मुनि समता भाव से उपसर्ग को सहन कर उत्तम-उत्तम स्वर्ग को प्राप्त हो गये।

उसी समय एक मुनि कहीं बाहर गये थे जो लौटकर वापस आ रहे थे। उन्हें देख किसी दयालु व्यक्ति ने कहा—

"हे दिगम्बर रूपधारी महामुने! तुम इस वेष से इस नगरी में मत जाओ, ठहरो-ठहरो अन्यथा तुम भी घानी में पेल दिये जाओगे।"

मुनि ने पूछा—

"क्यों, क्या बात है ?"

"महामुने! राजा ने कुपित होकर सारे मुनिसंघ को घानी में पिलवा दिया है।"

संघ की मृत्यु के समाचार सुनते ही मुनि स्तब्ध रह गये। उन्हें ऐसी शल्य लगी कि उनकी चेतना अव्यक्त हो गई। उसी क्षण उन निर्ग्रन्थ मुनिरूपी पर्वत की शांतिरूपी गुफा से सैकड़ों दुःखों से प्रेरित हुआ क्रोधरूपी सिंह बाहर निकला अर्थात् मुनि के हृदय में क्रोध उत्पन्न होते ही उनके मुख से 'हा' शब्द निकला कि उसी के उच्चारण के साथ एकदम अग्नि का पुतला निकला। उससे चारों तरफ का वातावरण हाहाकारमय हो गया, लोग चिल्लाने लगे—

"हाय माता! यह क्या हुआ ?"

"हाय हाय! यह ताप तो अत्यन्त दुस्सह है।"

"अरे रे! क्या अग्निदेव कुपित हो गये ?"

"हे भगवान् ! रक्षा करो, रक्षा करो।"

देखते ही देखते उस अग्नि ने समस्त देश को भस्मसात् कर दिया। अंतःपुर, देश, नगर, पर्वत, नदियाँ, जंगल और प्राणी कुछ भी शेष नहीं रहे। महान् संवेग से युक्त मुनिराज ने चिरकाल से जो तप संचित कर रक्खा था वह सबका सब क्रोधाग्नि में दग्ध हो गया। पुनः दूसरी वस्तुएं भला कैसी बचतीं ? दण्डक नाम के राजा के निमित्त से वह सारा देश दण्डक कहलाता था सो आज भी यह वन दण्डक नाम से प्रसिद्ध है।

"हे रघुनन्दन! यह वही स्थान है जहाँ इस समय आप ठहरे हुए हैं। बहुत समय बीत जाने के बाद यहाँ की भूमि कुछ सुन्दरता को प्राप्त हुई है और ये वृक्ष, पर्वत, नदी, तालाब आदि दिखने लगे हैं। राजा दण्डक उस समय मरकर नरक गया था पुनः वहाँ से निकलकर त्रस-स्थावर योनियों में भटकता हुआ दुःख उठाता रहा। अब वही दण्डक राजा का जीव इस गिद्ध की पर्याय में आया है। इस समय हम दोनों को देखकर पाप कर्म की मंदता होने से यह जातिस्मरण को प्राप्त हो गया है।"

"हे रामचन्द्र! देखो, जो राजा परम वैभव से युक्त था आज पाप कर्मों के कारण कैसा हो गया है ? सो देखो! संसार में दूसरे के भी ऐसे उदाहरण जब जीवों की शांति के लिए हो जाते हैं तो पुनः यदि अपनी ही खोटी बात स्मरण हो जावे तो कहना ही क्या है ?"

रामचन्द्र से इतना कहकर वे मुनिराज अश्रु गिराते हुए उस गिद्ध पक्षी को सम्बोधित करते हुए कहने लगे—

"हे द्विज! अब भयभीत मत होवो, मत रोवो, जो बात जैसी होने वाली होती है उसे अन्यथा कौन कर सकता है ? धैर्य करो, निश्चिंत होकर कंपकंपी छोड़ो, सुखी होवो, देखो यह महावन कहाँ ? और सीता सहित राम कहाँ ? हमारा पड़गाहन कहाँ ? और आत्मकल्याण के लिए दुःख का अनुभव करते हुए तुम्हारा प्रबुद्ध होना कहाँ ? कर्मों की ऐसी ही

चेष्टा है। कर्मों की विचित्रता के कारण ही यह संसार अत्यन्त विचित्र हो रहा है।"

1.6.2 गृद्ध पक्षी को सम्यक्त्व एवं अणुव्रत की प्राप्ति-

"हे पक्षिराज! तुमने धर्म के प्रसाद से यह एक नूतन शरीर प्राप्त कर लिया है और पाप के क्षीण हो जाने से तुम एक नूतन जन्म को ही प्राप्त हुए हो ऐसा समझो। अब संसार के समस्त दु:खों से छुड़ाने वाला ऐसा सम्यक्त्व ग्रहण करो, जिनेन्द्रदेव के सिवास अन्य किसी को देव मत समझो, निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनियों के सिवाय किसी को गुरु मत मानो और जैन आगम के सिवाय किसी के वचनों पर श्रद्धा मत रखो। देखो, मिथ्यात्व के ही निमित्त से तुमने ये भयंकर दु:ख भोगे हैं। अत: मिथ्यात्व को महाशत्रु समझकर उससे दूर होवो। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पांचों पापों से एकदेश विरक्त होवो क्योंकि सर्वदेश विरति तो पशु पर्याय में संभव ही नहीं है। इस समय इन व्रतों को धारण करो, रात्रि भोजन का त्याग करो और रात-दिन जिनेन्द्र भगवान् को हृदय में धारण करो, शक्त्यनुसार विवेकपूर्वक उपवास आदि नियमों का आचरण करो और साधुओं की भक्ति में तत्पर होवो।"

मुनिराज के मुख से इस प्रकार के दिव्य उपदेश को सुनकर पक्षी ने अंजलि बांधकर बार-बार सिर हिलाकर तथा मधुर शब्द का उच्चारण कर उपदेश ग्रहण किया तथा मैं व्रत ग्रहण कर रहा हूं, ऐसा संकेत किया। उस समय प्रसन्नचित्त हो सीता बोली—

"अहो! विनीत आत्मा को धारण करने वाला यह हम लोगों का विनोद करने वाला हो गया है।"

पुन: मन्दहास्य करती हुई सीता अपने दोनों हाथों से उस गृद्ध पक्षी का स्पर्श करने लगी।

तदनन्तर वे मुनि बोले—

"रामचन्द्र! अब आप लोगों को इसकी रक्षा करना उचित है क्योंकि शांतचित्त हुआ यह बेचारा पक्षी अब कहाँ जायेगा ? क्रूर प्राणियों से भरे हुए इस सघन वन में तुम्हें इस सम्यग्दृष्टि पक्षी की सदा रक्षा करनी चाहिए।"

तब सीता ने कहा—

"हे गुरुदेव! ऐसा ही होगा।" इतना कहने के बाद सबने पुन: पुन: मुनिराज को नमस्कार किया। मुनिराज भी सबको आशीर्वाद देकर आकाशमार्ग से विहार कर गये।

उसी समय मदोन्मत्त हाथी को वश में कर उस पर सवार होकर लक्ष्मण वहाँ पर पहुँचे। रत्नों की राशि देखकर अग्रज की ओर देखने लगे। तब राम ने मुनि के आहारदान आदि का सारा वृत्तान्त सुना दिया। लक्ष्मण पहले तो अत्यन्त प्रसन्न हुए पुन: कुछ खेद प्रगट करते हुए बोले—

"अहो! मुझे इन मुनियों के दर्शन का सौभाग्य नहीं मिला।"

जिसे रत्नत्रय की प्राप्ति हुई है ऐसा वह पक्षी राम और सीता के बिना कहीं भी नहीं जाता था। अणुव्रत आश्रम में स्थित सीता भी उसे बार-बार मुनियों के उपदेश का स्मरण दिलाती रहती थी। वह राम, लक्ष्मण के पास ही क्रीड़ा किया करता था। सीता के द्वारा दिये हुए शाकपत्र का भोजन करता था। सीता ने उसके गले में छोटी-छोटी घंटियाँ तथा पैर में घुंघरू पहना दिये थे और जब कभी उसे ताल दे देकर नृत्य कराया करती थीं। उसके शरीर पर रत्न तथा सुवर्ण की किरणों के सदृश जटाएं सुशोभित हो रही थीं इसलिए रामचन्द्र आदि उसे 'जटायु' इस नाम से बुलाते थे और वह भी उन सबको बहुत ही प्यारा था।

पात्रदान के प्रभाव से सीता सहित राम-लक्ष्मण उस समय रत्न, सुवर्ण आदि महती सम्पत्ति से युक्त हो गये थे। जिसमें चार हाथी जुते थे और विमान के समान सुन्दर ऐसे रथ पर सवार होकर इच्छानुसार क्रीड़ा करते हुए उस वन में सर्वत्र विचरण कर रहे थे।

1.7 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-श्रीराम के दादा का क्या नाम था ?

(क) राजा चन्द्रगति ☐
(ख) राजा अनरण्य ☐
(ग) भामण्डल ☐

प्रश्न 2-'शत्रुघ्न' की माँ का क्या नाम था ?

(क) अपराजिता ☐
(ख) सुमित्रा ☐
(ग) सुप्रभा ☐

प्रश्न 3-सीता के माता-पिता का क्या नाम था ?

(क) रानी विदेहा-राजा जनक ☐
(ख) रानी विदेहा-राजा दशरथ ☐
(ग) रानी अपराजिता-राजा जनक ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-राजा जनक को मायावी घोड़ा कहाँ और क्यों ले गया था ?

प्रश्न 2-जब राजा जनक ने सीता का विवाह भामण्डल के साथ कराने से मना कर दिया, तो राजा चन्द्रगति ने क्या शर्त रखी ?

प्रश्न 3-भामण्डल का सीता के साथ क्या संबंध था ? भामण्डल का पूर्व भव बताइये ?

प्रश्न 4-रानी सुप्रभा ने किस बात से दु:खी होकर नौकर से विष लाने को कहा ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-रानी कैकेयी राजा दशरथ से क्या वरदान माँगती है और क्यों ? एवं श्रीराम अयोध्या छोड़कर वनवास के लिए क्यों चले जाते हैं, विवेचन कीजिए ?

पाठ-2—सीता हरण एवं राम-रावण युद्ध

2.1 लक्ष्मण द्वारा सूर्यहास खड्ग सिद्धि और शंबूक वध-

श्रीरामचन्द्र से आज्ञा लेकर दिशाओं की ओर दृष्टि डालते हुए महापराक्रमी लक्ष्मण अकेले ही उस दण्डक वन के समीप घूम रहे हैं। उसी समय वे विनयी पवन के द्वारा लाई गई दिव्य सुगंधि सूंघते हैं। उसे सूँघते ही वे विचार करने लगते हैं कि यह मनोहर गंध किसकी है ? आश्चर्य को प्राप्त हुए लक्ष्मण अन्य कार्य छोड़कर जिस मार्ग से गंध आ रही थी उसी ओर चल पड़ते हैं। वहाँ जाकर वे वृक्षों से आच्छादित एक दुर्गम स्थान देखते हैं। उस दुर्गम स्थान में एक बाँसों का स्तम्भ दिखाई पड़ता है। उसके निकट पहुँचते ही उसके अग्र भाग में समस्त वन में प्रकाश की किरणें बिखेरता हुआ एक खड्ग दिखाई देता है।

आश्चर्यचकित हुए लक्ष्मण नि:शंक हो वह खड्ग हाथ में ले लेते हैं और तीक्ष्णता की परख के लिए उसी बाँस के बीड़े को काट डालते हैं। खड्गधारी लक्ष्मण को देख वहाँ पर सभी देवता 'आप हमारे स्वामी हैं' ऐसा कहकर नमस्कार के साथ उनकी पूजा करते हैं।

इधर रामचन्द्र कुछ आकुलित हो नेत्र सजल कर जटायु से कहते हैं—

"हे भद्र जटायु! लक्ष्मण आज बड़ी देर कर रहा है, वह कहाँ चला गया है ? तू शीघ्र ही आकाश में उड़कर देख।"

इतना सुनते ही जटायु उड़ना चाहता है कि सीता बोलती है—

"हे देव! वह देखो सामने लक्ष्मण आ रहे हैं। वे गन्ध से लिप्त माला और आभूषणों से सुसज्जित हैं तथा हाथ में महादेदीप्यमान खड्ग भी धारण कर रहे हैं।"

लक्ष्मण को वैसा देख रामचन्द्र हर्ष को रोकने में असमर्थ हो उसी क्षण उठकर लक्ष्मण का गाढ़ आलिंगन कर लेते हैं। लक्ष्मण भी खड्ग संबंधी सर्व वृत्तांत बतला देते हैं। इस तरह राम, लक्ष्मण और सीता हर्षोल्लास के वातावरण में नाना प्रकार की सुखद कथाएं करते हुए सुखपूर्वक बैठे हुए हैं—

इसी बीच चन्द्रनखा प्रतिदिन के सदृश आज भी वहाँ आती है और बाँस के बीड़े को कटा हुआ देख सोचने लगती है—

ओहो! पुत्र ने यह अच्छा नहीं किया जिस पर बैठकर नियम का अनुष्ठान करके खड्गरत्न को सिद्ध किया था उसी को उसने काट डाला अथवा अन्य किसी ने कुछ मेरे पुत्र का अमंगल तो नहीं कर दिया है ? आशंका से भरी चंद्रनखा इधर-उधर देखने लगती है कि अकस्मात् कुण्डलों से युक्त निष्प्रभ शिर एक तरफ दिखाई पड़ता है उधर दौड़ती है कि पास ही ठूंठ के बीच पड़ा हुआ पुत्र का धड़ भी दिखाई पड़ता है। उसी क्षण मूर्च्छित हो धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ती है पुन: कुछ देर के बाद स्वयं ही होश में आती है। कारण कि उस दिन वह अकेली ही वहाँ आई थी। उठते ही वह हा-हाकार करते हुए पुत्र के शिर को अपनी गोद में लेकर बड़े जोरों से करुण क्रंदन करने लगती है—

"हाय दैव! तूने यह क्या किया ? मेरा पुत्र बारह वर्ष और चार दिन तक यहाँ रहा, यहाँ इसके आगे तीन दिन तूने सहन नहीं किये। हे निष्ठुर दैव! मैंने तेरा क्या अपकार किया था जिसमें तूने मेरे पुत्र को निधि दिखाकर पुन: उसे ही सहसा नष्ट कर दिया। हे वत्स! तू कहाँ चला गया ? सूर्यहास खड्ग सिद्ध होने पर यदि तू जीवित रहता तो शायद चन्द्रहास को भी फीका कर देता। ओह!.....चन्द्रहास खड्ग मेरे भाई के पास है सो जान पड़ता है कि वह अपने विरोधी सूर्यहास को सहन नहीं कर सका। अरे! नियम का पालन करते हुए इस भयंकर वन में तूने किसी का कुछ भी नहीं बिगाड़ा है पुन: किस दुष्ट ने तुझे मारने को हाथ उठाया है ? अच्छा मैं देखती हूँ वह अविचारी पापी कैसे जीवित रह सकेगा ?"

2.1.1 श्रीराम-लक्ष्मण के रूप सौन्दर्य में अनुरक्त चन्द्रनखा ने रखा विवाह प्रस्ताव—

इस प्रकार पुत्र के शिर को गोद में लिए बहुत देर तक वह रोती रही। वह बार-बार पुत्र का मुख चूमती है। कुछ क्षण बाद वह शोक छोड़कर उठ पड़ती है। क्रोध के आवेश में यत्र-तत्र भ्रमण करती हुई शत्रु को खोजने लगती है। कुछ दूर पर उसकी नजर इन तीनों पर पड़ती है।.....राम, लक्ष्मण के रूप को देखकर वह एक क्षण के लिए स्तब्ध रह जाती

है।....उसका शोक क्रोध एक तरफ रह जाता है उसी क्षण उसके मन में अनुराग रस उत्पन्न हो जाता है। वह कन्या का रूप बनाकर उसके निकट ही में स्थित पून्नाग वृक्ष के नीचे बैठकर रोने लगती है।

रुदन की आवाज सुनकर सीता का हृदय दया से आर्द्र हो उठता है। वह उठकर उसके पास जाकर उसके मस्तक पर हाथ फेरते हुए सान्त्वना देती है—

"हे कन्ये! डरो मत, आओ मेरे साथ चलो।"

पुनः उसका हाथ पकड़कर सीता अपने स्थान पर ले आती है और समझाने लगती है। तदनन्तर राम ने पूछा—

"हे कन्ये! जंगली जानवरों से भरे हुए इस निर्जन वन में तू अकेली कौन है ? कहाँ से आई है ?" उसने कहा—

"हे पुरुषोत्तम! मूर्च्छा आने पर मेरी माँ मर गई उसके शोक से मेरे पिता का प्राणांत हो गया। मैं पूर्वोपार्जित कर्म के उदय से परम वैराग्य को प्राप्त हुई इस वन में प्रविष्ट हुई हूँ।"

कुछ मेरे पुण्य से "हे सुन्दर! आप लोग मुझे यहाँ मिले हैं सो जब तक मैं प्राण नहीं छोड़ती हूँ तब तक आप ही मुझे स्वीकार करो।"

राम-लक्ष्मण उसके लज्जाशून्य वचन सुनकर परस्पर में एक-दूसरे को देखते हुए चुप रह जाते हैं। कुछ क्षण प्रतीक्षा कर निराश हो दीर्घ निःश्वास छोड़कर वह बोलती है—

"अच्छा, अब मैं जाती हूँ।" तब राम ने उत्तर दिया—

"जैसी तुम्हारी इच्छा।"

उसके चले जाने के बाद ये तीनों जन आश्चर्यचकित हो हँसने लगते हैं।

2.1.2 खरदूषण का पुत्र शोकवश युद्ध हेतु प्रस्थान-

शोक से व्याकुल चन्द्रनखा पति खरदूषण के पास पहुँचकर पुत्र मरण की सारी घटना सुना देती है और यह भी बता देती है कि वहाँ पर दो पुत्र एक महिला ऐसे तीन जने बैठे हुए हैं उन्होंने ही मेरे पुत्र को मार कर खड्ग छीन लिया है और जब मैं पुत्र के मस्तक को गोद में रखे विलाप कर रही थी तब वे आकर मेरा शील भंग करना चाहते थे किन्तु मैं जैसे-तैसे अपने शील की रक्षा कर यहाँ आई हूँ। उसी क्षण खरदूषण विद्या से वहाँ जाकर पुत्र के शिर को देखकर शोक से आक्रांत हो उठता है। वह सोचता है—

"अहो! मैं रावण का बहनोई हूँ, इतना प्रतापशाली हूँ। मेरे पुत्र शंबूक ने सबके मना करने पर सूर्यहास खड्ग के लिए बारह वर्ष तक यहाँ घोर तपश्चर्या की। खड्गरत्न सिद्ध हो गया, वह सात दिन के भीतर-भीतर ग्रहण करने योग्य रहता है अन्यथा सिद्ध करने वाले को ही मार देता है। मेरे पुत्र शंबूक ने क्यों प्रमाद किया ? आज चार दिन हो गये थे उसने उसे ग्रहण कर अपना मनोरथ पूर्ण क्यों नहीं किया। हाय! यह खड्गरत्न भी गया और मेरा पुत्ररत्न भी गया।"

जैसे-तैसे शोक को संवृत कर वापस अपने स्थान पर आकर मंत्रणा करके सेना सहित उस दण्डकवन में आ जाते हैं और त्रिखंडाधिपति रावण को भी समाचार भेज दिया जाता है क्योंकि जिसने खड्गरत्न प्राप्त किया है वह सुख से वश में नहीं किया जा सकेगा, यह अनुमान सहज ही ये लोग लगा लेते हैं।

सीता युद्धसूचक वादित्रों का भयंकर शब्द सुनकर काँप उठती हैं—

"हे नाथ! यह क्या ? यह क्या ?" ऐसा कहते हुए पति से लिपट जाती है। 'रामचन्द्र' भी सीता को आश्वासन देते हुए सहसा यह अनुमान लगा लेते हैं कि या तो खड्गरत्न को प्राप्त करने के निमित्त से किसी का कोप है अथवा उस मायावी स्त्री के कथन से कुछ उपद्रव आया हुआ जान पड़ता है। तत्क्षण वे अपने धनुष को संभाल कर खड़े होते हैं। तब लक्ष्मण हाथ जोड़कर निवेदन करते हैं—

"देव! मेरे रहते हुए आपका क्रोध करना शोभा नहीं देता है। आप राजपुत्री की रक्षा कीजिए, मैं शत्रु की ओर जाता हूँ। हाँ,

यदि मुझ पर आपत्ति आयेगी तो मैं सिंहनाद करूँगा।"

इतना कहकर लक्ष्मण चल पड़ते हैं। अकेले ही इतनी विशाल सेना के साथ जूझ पड़ते हैं। अगणित विद्याधर आकाश में ही घिरे हुए एक अकेले के साथ युद्ध कर रहे हैं। इधर रावण भी अपने पुष्पक विमान में बैठकर वहाँ आ जाता है। वहाँ ऊपर से ही वह रामचन्द्र के साथ बैठी हुई सीता को देखता है। वह सहसा उस पर आसक्त हो सारे क्रोध और शोक को भूलकर उसे हरण करने के प्रयत्न में अपना उपयोग लगाता है। पुनः वह अपनी अवलोकिनी विद्या के द्वारा यह जान लेता है कि ये अयोध्या के राजपुत्र राम हैं, यह इनकी पत्नी सीता है और लक्ष्मण द्वारा सिंहनाद किये जाने पर रामचन्द्र उसकी सहायता के लिए युद्धस्थल पर जा सकते हैं। बस! फिर क्या था, वह उसी क्षण सिंहनाद कर देता है।

उस सिंहनाद के साथ हे राम! हे राम!! ऐसी ध्वनि सुनने में आती है। रामचन्द्र व्याकुल हो उठते हैं और सीता से कहते हैं—

"हे प्रिये! तुम क्षण भर यहीं ठहरना, डरना नहीं!" और अत्यधिक मालाओं से उसे ढककर जटायु से बोलते हैं—

'हे जटायु! यदि तुम मेरा किंचित् भी उपकार मानते हो तो मित्र की स्त्री की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करना।'

पक्षियों के करुण क्रन्दन को देखकर अपशकुन हो रहा जान कर भी रामचन्द्र मोह से भाई की रक्षा हेतु चल पड़ते हैं।

2.1.3 रावण द्वारा सीताहरण-

इधर रावण शीघ्र पुष्पक विमान को उतार कर सीता को दोनों भुजाओं से उठाकर उसमें बिठाने लगता है कि अतीव क्रोध से भरकर जटायु पक्षी अपनी चोंच से उसे मारने लगता है। वह आकाश में अधर उड़कर रावण के वक्षस्थल को नोचने लगता है। रावण अपने कर प्रहार से उसे मारकर नीचे गिरा देता है और सीता को लेकर भाग जाता है। सीता अपना अपहरण हुआ जान शोक से व्याकुल हो अत्यन्त विलाप करने लगती है। रावण उसके अतीव विलाप को देख मन में विरक्त हो सोचने लगता है कि—

"अहो! इसका तो रंचमात्र भी मेरे प्रति आदर नहीं है।.....

क्या करूँ ? हो सकता है मेरी सम्पदा देखकर कदाचित् यह प्रसन्न हो सकती है। हाँ.....मैंने केवली भगवान् के पास यह व्रत लिया था कि जो स्त्री मुझे नहीं चाहेगी मैं बलात् उसका उपभोग नहीं करूँगा।' अतः जैसे-तैसे इसे प्रसन्न करने का ही उपाय करना होगा।" ऐसा सोचकर वह अपनी गोद से उतार कर सीता को अपने पास में बिठा लेता है। अपने स्थान पर पहुँचकर अनुनय, विनय व भय दिखाने के बाद भी जब सीता को राम के स्मरण में रोती हुई ही देखता है तब वह उसे हजारों स्त्रियों की सुरक्षा में अपने प्रमद उद्यान में पहुँचा देता है। जब विभीषण आदि को पता चलता है वे सीता से सारा वृत्तांत समझते हैं पुनः रावण को समझाते हैं—

"हे भाई! तुम यह विष की बेल ऐसी परस्त्री को क्यों ले आये हो ? इसे आज ही इसके पति के पास पहुँचाओ अन्यथा यह प्राण त्याग कर देगी।" किन्तु रावण किसी की एक भी नहीं मानता है।

2.2 सीताहरण से संतप्त हुए श्रीरामचन्द्र-

युद्ध के मैदान में रामचन्द्र को प्रविष्ट हुए देख लक्ष्मण बोल उठते हैं—

"हाय देव! बड़े दुःख की बात है आप विघ्नों से व्याप्त इस वन में सीता को अकेली छोड़कर यहाँ किसलिए आ गये हो ?"

राम ने कहा—"भाई! मैं तुम्हारा शब्द सुनकर ही यहाँ आया हूँ।"

लक्ष्मण ने कहा—"आप शीघ्र ही चले जाइये, आपने अच्छा नहीं किया।"

अच्छा, तुम परम उत्साह से शत्रुओं को सब प्रकार से जीतो। ऐसा कहकर शंकितचित्त हुए राम अपने स्थान पर

पहुँचते हैं और वहाँ सीता को न देखकर—

"हा सीते!" ऐसा कहकर मूर्च्छित हो गिर जाते हैं। जब स्वयं सचेत होते हैं तब व्याकुलचित्त हुए इधर-उधर खोजने लगते हैं—

"हे देवी! तुम कहाँ गई हो ? आओ, आओ, हे प्रिये! यदि हँसी करने के लिए कहीं छिप गई हो तो जल्दी आ जाओ।"

पुनः कुछ ही दूर पर जटायु को मरणासन्न देखकर उसे महामंत्र सुनाकर सन्यास ग्रहण कराते हैं। वह पक्षी मरकर देव पर्याय को प्राप्त हो जाता है। इधर रामचन्द्र सीता के अपहरण का अनुमान लगाकर और पक्षी के मरण को देखकर पुनः रुदन करते हुए मूर्च्छित हो जाते हैं। पुनः सचेत हो विलाप करते हुए वृक्षों और पक्षियों से सीता के बारे में पूछते हुए हा-हाकार करते हैं और शोक के भार से पीड़ित हो पुनः-पुनः मूर्च्छित हो जाते हैं।

उधर लक्ष्मण युद्ध में विजय प्राप्त कर अपने स्थान पर आते हैं और राम को एक तरफ धरती पर पड़े हुए देखकर घबड़ाते हुए बोलते हैं—

"हे नाथ! उठो और कहो, सीता कहाँ गई हैं ?"

राम सहसा उठ बैठते हैं, लक्ष्मण का घाव रहित शरीर देखकर कुछ हर्षित हो उनका आलिंगन करते हैं, पुनः कहते हैं-

"हे भद्र! मैं नहीं जानता कि देवी को किसी ने हर लिया या सिंह ने खा लिया है। मैंने इस वन में बहुत खोजा पर वह दिखी नहीं।"

विषादयुक्त हो लक्ष्मण बोले—

"हे देव! उद्वेग को छोड़ो, जान पड़ता है कि जानकी किसी दैत्य के द्वारा हरी गई है, सो वे कहीं भी क्यों न हों मैं अवश्य ही उनका पता लगाऊँगा।"

इस प्रकार मधुर वचनों से सान्त्वना देकर लक्ष्मण ने अग्रज का मुख धुलाया। इसी बीच तुरही का उच्च शब्द सुनकर राम ने पूछा—

"भाई! यह शब्द किसका है ? क्या कुछ शत्रु शेष रह गये हैं ?"

"नहीं, यह शब्द शत्रु का न होकर मित्र का है। प्रभो! सुनिये, भयंकर युद्ध के मध्य एक राजा कुछ सेना लेकर आया और मुझसे कुछ प्रार्थना करने लगा, मैंने शीघ्र ही उसके मस्तक पर हाथ रखकर उसे आश्वासन देते हुए अपने पीछे खड़ा होने को कहा। पुनः वह प्रणाम कर बोला—

"नाथ! आप मुझे इन दुष्टों को मारने का आदेश दीजिए। मेरी स्वीकृति मिलते ही उसने खरदूषण की सारी सेना में खलबली मचा दी। पुनः मैंने भी आपके प्रसाद से इसी सूर्यहास खड्ग से खरदूषण को मार गिराया और उसे उस खरदूषण के राज्य का स्वामी बना दिया।"

2.2.1 विद्याधर विराधित द्वारा सीता की खोज किन्तु निराशा-

इसी बीच चंद्रोदय विद्याधर का पुत्र विराधित अपनी सेना सहित वहाँ आकर विनय से रामचन्द्र को नमस्कार करके निवेदन करता है—

"प्रभो! चिरकाल बाद आप जैसे महापुरुष हमें प्राप्त हुए हैं सो करने योग्य कार्य के विषय में मुझे आदेश दीजिए।"

तब लक्ष्मण ने सारी घटना सुनाकर कहा—

"सीता के बिना राम शोक के वशीभूत हो यदि प्राण छोड़ते हैं तो निश्चित ही मैं अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा क्योंकि हे भद्र! तुम निश्चित समझो कि मेरे प्राण इन्हीं के प्राणों के साथ मजबूत बंधे हुए हैं।"

विराधित ने मन में सोचा, "अहो! मैं अपने राज्य को प्राप्त करने हेतु इनकी शरण में आया, परन्तु देखो, सभी जीव

कर्मों के आधीन हैं। इन पर तो इस समय महान् संकट आ पड़ा है।" पुनः बोला—

"देव! मैं अवश्य ही सीता की खोज कराऊँगा।" ऐसा कहकर अपने आश्रित हुए तमाम विद्याधरों को उसने दशों दिशाओं में देखने के लिए भेजा। सभी घूम-घूम कर वापस आ गये। तब रामचन्द्र अत्यधिक दुःखी हो विलाप करने लगे। विराधित विद्याधर आदि ने उन्हें समझाते हुए निवेदन किया—

"हे नाथ! आप जैसे महापुरुष को शोक करके शरीर का अनिष्ट करना उचित नहीं है, धैर्य धारण कीजिए और हमारी प्रार्थना स्वीकार कीजिए। खरदूषण के मरने से सुग्रीव, रावण आदि में भयंकर क्षोभ हुआ होगा सो अब आप सुरक्षित स्थान जो अलंकारपुर नगर है वह हम लोगों की वंश परंपरा से चला आया उत्तम और शत्रु के लिए दुर्गम स्थान है वहीं चलें। वहीं पर रहकर सीता की खोज करायेंगें।"

इतना सुन राम-लक्ष्मण रथ में बैठकर उनके साथ चल पड़े। वहाँ पहुँचकर विराधित तथा राम-लक्ष्मण खरदूषण के भवन में यथायोग्य निवास करने लगे। वहाँ पर सुन्दर जिनमंदिर में जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा का दर्शन कर रामचन्द्र कुछ धैर्य को प्राप्त होते थे, पुनः सीता के शोक में व्याकुल हो उठते थे।

2.3 राम रावण युद्ध-

2.3.1 श्रीराम का सुग्रीव से मिलन-

मेघ के समान दुंदुभि का शब्द सुनकर लक्ष्मण विराधित से पूछते हैं—

"कहो, यह किसका शब्द है ?" विराधित कहता है—

"हे देव! वानरवंशियों का स्वामी सुग्रीव आपके पास आया हुआ है यह उसी की सेना का शब्द है।"

इसी वार्तालाप के मध्य सुग्रीव राजभवन में प्रवेश करता है। लक्ष्मण आदि उसका आलिंगन कर अमृततुल्य वाणी से परस्पर वार्तालाप करते हैं तदनन्तर एक वृद्ध सज्जन रामचन्द्र से सुग्रीव का परिचय देते हुए कहते हैं—

"हे नाथ! यह किष्किन्ध नगर का राजा सुग्रीव है। एक समय कोई दुष्ट मायावी विद्याधर इसी जैसा रूप बनाकर इसके अन्तःपुर में घुस आया। उस समय उसकी रानी सुतारा उसे कृत्रिम समझकर भयभीत हो अपने परिजनों से कहती है कि यद्यपि इसका रूपरंग सभी मेरे पति के सदृश है फिर भी जैसे चिह्न, व्यंजन आदि मेरे पति के हाथ आदि में हैं वैसे इसके नहीं हैं। इसी बीच सत्य सुग्रीव भी वहाँ आ जाता है। वह अपने जैसे रूपधारी को देख गर्जना करके उसे पराजित करना चाहता है कि वह भी गर्जना करने लगता है किन्तु युद्ध में सत्य सुग्रीव ही कहीं न मारा जाय इस कारण युद्ध रोक दिया जाता है।

इस समस्या में मंत्री आदि लोग संदिग्ध होकर मंत्रणा करके यह निर्णय करते हैं कि 'लोक में गोत्र की शुद्धि दुर्लभ है अतः उसकी रक्षा करना अपना कर्तव्य है।" इसलिए वे लोग नगर के दक्षिण भाग में कृत्रिम सुग्रीव को और उत्तर भाग में सत्य सुग्रीव को स्थापित कर देते हैं। सात सौ अक्षौहिणी प्रमाण आधी सेना और अंग पुत्र पिता की आशंका से कृत्रिम सुग्रीव के पास चला जाता है और आधी सेना के साथ अंगद पुत्र अपने पिता के पास चला जाता है। सुग्रीव के बड़े भाई बालि ने दीक्षा ले ली थी। उनका पुत्र चन्द्ररश्मि यह आदेश दे देता है कि सही निर्णय होने तक दोनों सुग्रीव में से जो भी सुतारा के भवन की ओर आयेगा वह मेरे द्वारा बाध्य होगा।

इस संकट में पड़े हुए सुग्रीव का संकट हनुमान आदि भी दूर नहीं कर सके हैं अब यह आपकी शरण में आया है सो आप ही इसके दुःख को दूर करने में समर्थ हैं।

इतना सुनकर रामचन्द्र मन में सोचते हैं—

"ओह! यह तो मुझसे भी अधिक दुःखी है, अहो! इसका शत्रु तो प्रत्यक्ष में ही इसे बाधा पहुँचा रहा है।"

पुनः रामचन्द्र और लक्ष्मण विराधित आदि के साथ मंत्रणा करके सुग्रीव को आश्वासन देते हुए कहते हैं—

"भद्र! मैं तुम्हारे शत्रु को मारकर तुम्हारी प्रिया और राज्य को वापस दिला दूँगा। बाद में यदि तुम मेरी प्राणाधिका प्रिया

का पता लगा सको तो उत्तम बात है।" सुग्रीव कहता है—

"नाथ! यदि मैं सात दिन के अंदर सीता का पता न लगा दूँ तो मैं अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा।'

राम और सुग्रीव जिनालय में जिनधर्मानुसार शपथ ग्रहण करते हैं कि "हम दोनों परस्पर में द्रोह रहित एक-दूसरे के मित्र हैं।" पुनः महासामंतों से सेवित राम-लक्ष्मण सुग्रीव के साथ किष्किंधपुर चल देते हैं। वहाँ पर पहुँचकर दोनों सुग्रीव का युद्ध शुरू हो जाता है। एक बार तो राम भी संशय में पड़ जाते हैं कि वास्तव में सुग्रीव कौन है ? और मायावी कौन है ? युद्ध में सुग्रीव को मायावी सुग्रीव पराजित कर देता है वह मूर्च्छित हो जाता है तब लोग उसे शिविर में ले आते हैं। होश आने पर वह रामचन्द्र से कहता है—

"नाथ! आपने हाथ में आए हुए शत्रु को कैसे छोड़ दिया ? ओ हो!! मालूम पड़ता है कि मेरे दुःखों का अंत अब नहीं होगा।" रामचन्द्र कहते हैं—

"भद्र! कहीं तेरा ही वध न हो जाये इसलिए मैं आज तटस्थ रहा हूँ। चूँकि जिनागम का उच्चारण कर तू मेरा मित्र बना है।"

2.3.2 सुग्रीव को सुतारा की प्राप्ति और रामचन्द्र का सुग्रीव की तेरह कन्याओं से विवाह-

पुनः द्वितीय दिवस लक्ष्मण वास्तविक सुग्रीव का आलिंगन कर युद्ध में जाने से उसे रोक लेते हैं उधर रामचन्द्र कृत्रिम सुग्रीव का सामना करते हैं, उस समय रामचन्द्र को बलभद्र समझ वैताली विद्या उस मायावी के शरीर से निकलकर भाग जाती है और वह अपने असली रूप में दिखने लगता है। सारे विद्याधर चिल्ला उठते हैं—

'अरे, अरे! यह साहसगति नाम का विद्याधर है जो कि माया से सुग्रीव बना हुआ था। इसी बीच रामचन्द्र उसके साथ घोर युद्ध कर अन्त में उसे पृथ्वी का आलिंगन करा देते हैं। साहसगति को मरा हुआ सुनकर सुग्रीव हर्ष से विभोर हो लक्ष्मण सहित राम की पूजा करता है और अपनी सुतारा को तथा राज्य को पाकर कृतकृत्य हो जाता है। रामचन्द्र चन्द्रप्रभ जिनालय में जाकर भगवान की पूजा भक्ति कर वहीं ठहर जाते हैं और विराधित आदि विद्याधर उस चैत्यालय के बाहर ही अपनी सेना ठहरा लेते हैं।

अनंतर सुग्रीव अपनी चंद्रा, हृदयावली आदि तेरह पुत्रियाँ राम को समर्पित करते हैं। वे कन्यायें वीणा वादन, मधुर गान आदि से राम को सुखी करना चाहती हैं किन्तु रामचन्द्र सीता के स्थान के सिवाय किसी की तरफ आँख उठाकर देखते भी नहीं हैं। यदि कदाचित् किसी से बोलते भी हैं तो सीता समझकर ही बोलते हैं।

2.3.3 सुग्रीव द्वारा सीता की खोज एवं रत्नजटी विद्याधर द्वारा रामचन्द्र को मिला सीता का समाचार-

एक समय रामचन्द्र उद्विग्न चित्त हो सोच रहे हैं—

"क्या सुग्रीव को भी सीता का पता नहीं लगा ? क्या वह मृत्यु को प्राप्त हो गई है या जीवित है ? अहो, देखो सुग्रीव अपनी पत्नी में आसक्त हो मेरे दुःख को भूल गया है।.....ओह!!.....अब मुझे वह मेरी प्रिया मिलेगी या नहीं ?...." सोचते-सोचते उनकी आँखें सजल हो जाती हैं और शरीर शिथिल हो जाता है। उस समय लक्ष्मण अग्रज के अभिप्राय को समझकर क्षुभितचित्त हो नंगी तलवार हाथ में लेकर सुग्रीव के भवन में पहुँच जाते हैं और बोलते हैं—

"अरे पापी, दुर्बुद्धिधर! मूढ़! जबकि परमेश्वर रामचन्द्र स्त्री दुःख में निमग्न हैं तब तू स्त्री के साथ सुखोपभोग क्यों कर रहा है ? अरे दुष्ट! नीच विद्याधर! मैं तुझ भोगासक्त को वहीं पहुँचाए देता हूँ जहाँ के स्वामी ने तेरी आकृति के धारक को पहुँचाया है।"

इस गर्जना को सुनकर घबराया हुआ सुग्रीव लक्ष्मण को नमस्कार करता है और उसकी स्त्रियाँ हाथ में अर्घ ले-लेकर प्रणाम करके लक्ष्मण को शांत करती हैं। लक्ष्मण सुग्रीव को प्रतिज्ञा का स्मरण कराते हैं और सुग्रीव पश्चात्तापपूर्वक क्षमायाचना करके राम के समीप आकर नमस्कार करके अपने सामंतों को व किन्नरों को बुलाकर सर्वत्र भेज देता है और भामंडल को भी समाचार भिजवाकर स्वयं ही वह विमान में बैठकर सीता की खोज के लिए निकल पड़ता है।

आकाश में भ्रमण करते हुए सुग्रीव को एक पर्वत पर ध्वजा दिखती है। वहाँ पहुँचकर वह रत्नजटी नाम के विद्याधर से मिलता है और उसे विमान में बिठाकर ले आता है। रत्नजटी राम के पास आकर नमस्कार कर निवेदन करता है—

"प्रभो! आपकी सीता का अपहरण दुष्ट रावण ने किया है। वह पुष्पक विमान में बिठाकर ले जा रहा था और मैं उधर से आ रहा था। सीता के करुण क्रंदन से मैंने परिचय पूछकर रावण से उसे छोड़ देने को कहा। जब वह नहीं माना तब मैंने उसका सामना किया। उस समय उस पापी ने मेरी विद्यायें छीनकर मुझे आकाश से नीचे गिरा दिया।"

सीता का समाचार सुनते ही राम बार-बार उसका आलिंगन कर प्रसन्न होते हैं। पुनः हर्ष-विषाद को प्राप्त हुए राम लोगों से पूछते हैं—

"कहो, लंका यहाँ से कितनी दूर है ?"

लोग कहते हैं—

"नाथ! लवणसमुद्र में एक राक्षसद्वीप है उसमें त्रिकूटाचल पर्वत है उसके शिखर पर लंका नगरी स्थित है।"

पुनः ये लोग रावण के पराक्रम का वर्णन करते हुए बार-बार यही कहते हैं कि—

"देव! उस रावण से आपका और हम लोगों का युद्ध सर्वथा विषम है। हम लोग उसे जीतने में सर्वथा असमर्थ हैं।"

तब लक्ष्मण उन सबकी बातों का अनादर कर कहते हैं—

"वह परस्त्रीलंपट महाक्षुद्र नीच है, हम उसे अवश्य ही निर्जीव करेंगे।"

तब वे लोग पुनः कहते हैं—

"हे राजन् ! एक बार अनंतवीर्य केवली ने यह बताया था कि जो कोटि शिला को उठायेगा वही रावण का वधकर्त्ता होगा।"

इतना सुनते ही राम-लक्ष्मण वहाँ चलने को उद्यत हो जाते हैं। वहाँ पहुँचकर ये लोग गंध, पुष्प आदि से उस कोटि शिला की अच्छी तरह पूजा करते हैं। सिद्धों को नमस्कार करके लक्ष्मण उस कोटि शिला को अपनी भुजाओं से हिला देते हैं पुनः उसे भुजाओं से ऊपर तक उठा लेते हैं। आकाश से देवतागण पुष्पों की वृष्टि करते हुए धन्य-धन्य शब्द से दिशाओं को मुखरित कर देते हैं और विद्याधरों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता है। अब वे लोग निश्चय कर लेते हैं कि रावण का शत्रु लक्ष्मण ही होगा। फिर भी आपस में मंत्रणा करते हैं—

युद्ध में न जाने कितने जीवों का संहार होगा अतः पहले दूत भेजकर उसके अभिप्राय को जाना जाए और उसे समझाकर सीता को वापस लाकर राम-लक्ष्मण व रावण की परस्पर में संधि करा दी जाए। इस कार्य के लिए पवनञ्जय के पुत्र हनुमान को उपयुक्त समझकर उन्हें वहाँ बुलाया जाता है और रामचन्द्र उसे अपनी अँगूठी देकर सीता की खबर लाने के लिए उसे तरह-तरह से समझाकर भेज देते हैं।

2.4 हनुमान का लंकागमन एवं मार्ग में मुनियों का उपसर्ग निवारण-

हनुमान विमान में बैठे हुए बहुत ऊँचे आकाश में उड़ते चले जा रहे हैं। प्राकृतिक शोभा को देखते हुए दधिमुख नगर के ऊपर से निकलते हैं। उस नगर के बाहर चारों तरफ के उद्यान की शोभा हनुमान के मन को बरबस अपनी ओर खींच रही है। धीरे-धीरे विमान आगे बढ़ता जा रहा है, कुछ दूर चलकर भंयकर वन दिखता है। वहाँ पर तमाम जंगली पशु विचरण कर रहे हैं, आगे बढ़ते ही देखते हैं कि उस वन में भयंकर अग्नि की ज्वाला अपनी लपटों से मानों आकाश को छूने का ही उपक्रम कर रही है। एकदम घबराते हुए हनुमान तत्क्षण ही दूसरी तरफ दृष्टि डालते हैं तो क्या देखते हैं—

दो महामुनि अपनी भुजाओं को नीचे लटकाये हुए नासाग्र दृष्टि सौम्यमुद्रा से युक्त कायोत्सर्ग से खड़े हुए हैं। उनसे कुछ दूर ही वह अग्नि मानों उनके दर्शन की अभिलाषा से ही अथवा उनके ध्यान का परीक्षण करने के लिए उधर की ओर बढ़ती आ रही है। वहीं से लगभग पांच कोश की दूरी पर तीन कन्यायें ध्यान मुद्रा में स्थित हैं। वे शुक्ल वस्त्र को

धारण किए हुए हैं उनका मनोहर रूप उनके विशेष पुण्य को सूचित कर रहा है।

हनुमान के हृदय में उन महामुनियों के प्रति परम भक्ति- भाव उमड़ पड़ता है और साथ ही वात्सल्य भाव से प्रेरित हो सोचने लगते हैं—

"अहो! सुख-दुख में समभावी ये महामुनि कुछ क्षण में ही इस अग्नि के उपसर्ग से इस नश्वर शरीर को छोड़ने को प्रयत्नशील हैं। इनके लिए जीवन और मरण एक समान है फिर भी मेरा क्या कर्तव्य है ?.....क्या मैं इनके उपसर्ग को दूर करके सातिशय पुण्य का भागी बन सकता हूँ ? और ये कन्यायें कौन हैं ?....जो भी हों'।

इतना सोचते ही हनुमान शीघ्रता से ही समुद्र का जल खींच कर उसे मेघरूप में परिणत कर लेते हैं और उन मेघों को हाथ में लेकर आकाश में ऊँचे जाकर वर्षा शुरू कर देते हैं। देखते ही देखते दावानल अग्नि शांत हो जाती है और हनुमान कृतकृत्य हुए के समान नीचे आकर गुरु के चरणों में नमस्कार कर पुष्प, अक्षत आदि सामग्री से उनके चरणों की पूजा करना शुरू कर देते हैं।

2.4.1 प्रज्वलित दावानल अग्नि के कथानक का कन्याओं द्वारा वर्णन-

इसी बीच वे कन्यायें मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा देकर वहीं पर आ जाती हैं और गुरु की वंदना करके बैठ जाती हैं पुनः हनुमान से कहती हैं—

'अहोबन्धु! आप जिनशासन के परमभक्त हैं। आज आपने अन्यत्र कहीं जाते हुए जो इन महामुनियों के उपसर्ग का निवारण किया है सो आपका यह धर्मी के प्रति वात्सल्य आपके अपूर्व माहात्म्य को प्रकट कर रहा है।'

तब हनुमान पूछते हैं—

"इस भयंकर निर्जन वन में आप लोग कौन हैं ? और यह दावानल कब एवं कैसे प्रज्ज्वलित हुआ था ?"

ज्येष्ठ कन्या कहती है—

'भद्र! दधिमुख नगर के राजा गंधर्व की अमरा नाम की रानी से उत्पन्न हुई हम तीनों बहने हैं। मैं चन्द्रलेखा हूँ मेरी यह दूसरी बहन विद्युत्प्रभा है एवं यह तीसरी तरंगमाला है। एक बार अष्टांग निमित्तज्ञाता महामुनि से हमें यह मालूम हुआ कि जो महापुरुष युद्ध में विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी के अधिपति साहसगति विद्याधर को मारेगा वही इन तीनों का भर्ता होगा। कितने ही विद्याधर हम तीनों के लिए प्रार्थना कर रहे हैं उनमें से एक अंगारक नाम का विद्याधर है वह विशेष रूप से संताप को प्राप्त हो रहा था।

साहसगति को मारने वाला कौन होगा ? इस बात को समझने की उत्कंठा से हम तीनों 'मनोनुगामिनी' नामक उत्तम विद्या सिद्ध करने के लिए यहाँ आई थीं। दुष्ट अंगारक ने यह अग्नि प्रज्ज्वलित कर दी और भाग गया। आज हमें यहाँ बारहवाँ दिन है। जो विद्या छः महीने से भी अधिक दिनों में सिद्ध होने वाली थी वह आज आपके निमित्त से हमें सिद्ध हो गई है और आज इन मुनियों को यहाँ पर आकर ध्यानस्थ हुए आठ दिन हुए हैं। यदि आप उपसर्ग निवारण न करते तो मेरे निमित्त से ये महामुनि भी अग्नि में भस्मसात् हो जाते।

'हे भ्रातः! आपने आज हम तीनों पर व जैनशासन पर महान् उपकार किया है।'

2.4.2 श्रीराम का राजा गंधर्व की कन्याओं के साथ पाणिग्रहण—

इन बातों के मध्य ही विद्याधर राजा गंधर्व भी अपनी रानी आदि सहित वहाँ आ जाते हैं। पुनः हनुमान साहसगति को मारने वाले रामचन्द्र की सारी घटना उन सबको सुना देते हैं। सुनते ही राजा गन्धर्व व कन्याओं के हर्ष का पार नहीं रहा। हनुमान के कहे अनुसार वे सब किष्किंधपुर पहुँचते हैं। राम के साथ तीनों कन्याओं का पाणिग्रहण संस्कार हो जाता है। राजा गंधर्व राम की आज्ञा में रहते हुए अपने को पुण्यशाली मानते हैं किन्तु रामचन्द्र सीता के बिना दशों दिशाओं को शून्य सा ही अनुभव करते हैं।

का अन्न छोड़ने के योग्य नहीं है....।"

2.4.5 हनुमान के समझाने पर सीता द्वारा आहार ग्रहण-

इत्यादि अनुनय विनय के पश्चात् सीता आहार ग्रहण के लिए स्वीकृति दे देती है। तब हनुमान 'इरा' नाम की कुलपालिक को आहार वस्तु लाने के लिए आदेश देते हैं। सीता स्नानादि क्रिया से निवृत्त हो अतिथियों के समागम का चिंतवन करते हुए महामंत्र का स्मरण करती है। पुनः जो यह नियम लिया था कि—

'जब तक पतिदेव का समाचार नहीं मिलेगा, तब तक आहार नहीं लूँगी।' इस नियम को धीरता से समाप्त करती है।

तब जिसके हृदय में भाई का स्नेह उमड़ रहा है ऐसे हनुमान स्वयं आगे होकर 'इरा देवी' के द्वारा लाये गये उत्तम-उत्तम पदार्थों से सीता को पारणा कराते हैं। अनन्तर भोजन के बाद सीता जब कुछ विश्राम कर लेती है तब हनुमान उनके पास पहुँच कर कहते हैं—

'हे देवि! हे पवित्रे! हे गुणभूषणे! अब आप मेरे कंधे पर चढ़ो, मैं अभी समुद्र लांघकर तुम्हें श्री राम के दर्शन कराये देता हूँ।'

तब सीता कहती है—

"भाई! स्वामी की आज्ञा के बिना इस तरह जाना योग्य नहीं है इसलिए प्राणनाथ ही स्वयं यहाँ आकर मेरा उद्धार करेंगे।" पुनः कहती है—

"हे भद्र! अब तू जल्दी कर और जब तक रावण के द्वारा तुझे कोई उपद्रव नहीं होता है तब तक ही तू शीघ्र जाकर मेरे स्वामी को मेरा समाचार विदित करा दे।"

पुनः अपने मस्तक का चूड़ामणि उतार कर हनुमान को देते हुए कहती है—

"इस भूषण को दे करके तुम श्री रामचन्द्र को मेरे विषय में सब कुछ स्पष्ट कहना, भाई! तुम उन्हें यह भी कहना कि आपने जब दण्डक वन में चारण मुनियों को आहार दिया था उस समय गृद्ध पक्षी ने मुनि के चरणोदक से अपने को एक विलक्षण ही बना लिया था.....।"

इत्यादि अनेक स्मृतियों को सीता बताती है कि जिन्हें सुनकर रामचन्द्र को पूर्ण विश्वास हो जाये कि सीता अभी जीवित है और मेरे वियोग से दुःख समुद्र में डूब रही है। अनंतर हनुमान को विदा कर पति की मुद्रिका को अपनी अंगुली में पहनकर इतनी संतुष्ट होती है कि मानों साक्षात् आज पति का समागम ही प्राप्त हुआ है।

2.4.6 हनुमान का रावण से वार्तालाप, पुनः श्रीराम से मिलन-

हनुमान बार-बार सीता को प्रणाम कर वहाँ से चल देते हैं। पुष्पोद्यान से बाहर निकलते समय रावण की आज्ञा से कुछ किंकर दौड़कर उन्हें घेर लेते हैं। तमाम सेना इकट्ठी हो जाती है। शस्त्रों से सहित योद्धाओं को पराजित करते हुए हनुमान कुछ ही क्षणों में उस उद्यान का सर्वनाश कर देते हैं। बड़े-बड़े वृक्षों को उखाड़ कर फेंक देते हैं और योद्धाओं को चूर-चूर कर देते हैं। अनन्तर चिरकाल तक युद्ध करने के बाद 'इन्द्रजीत' हनुमान को नागपाश में बाँध लेता है। उस समय यद्यपि हनुमान नागपाश से छूट कर भाग सकते थे किन्तु फिर भी रावण से वार्तालाप के लिए उत्सुक होते हुए वैसे ही बंधन से बंधे रावण के पास लाए जाते हैं। रावण कहता है—

"अरे रे! दुष्ट! तुझे धिक्कार है। अरे! जिनसे तूने वृद्धि को प्राप्त किया था आज उन्हीं के साथ शत्रु भाव को प्राप्त होता हुआ तू मूढ़ भूमिगोचरियों का दूत बनकर यहाँ मेरे सामने आया है। अरे! मैं तो तेरा मुख भी नहीं देखना चाहता हूँ, तू निर्लज्ज है, कृतघ्नी है, पापी है.....।"

हनुमान कहते हैं—

"बहुत कहने से क्या, हे विद्याधराधिपते! अभी तो तुम सावधान होवो और पतिव्रता सीता को श्रीराम से मिलाओ, उनसे सौहार्दभाव स्थापित करके चिरकाल तक अपने चक्ररत्न का उपभोग करो।"

रावण कुपित हो कहता है—

"बस, बस, रहने दे, अपनी विद्वत्ता को रहने दे, आज मुझे मालूम पड़ रहा है कि तू पवनंजय का पुत्र नहीं है अन्यथा ऐसी चेष्टा नहीं करता।"

उस समय हनुमान भी क्रोध के आवेश में गरजकर कहते हैं—

"रावण! निश्चित ही तेरी मृत्यु लक्ष्मण के हाथ से होने वाली है ऐसा दिख रहा है। अब तू अपनी कीर्तिपताका को नष्ट कर अपकीर्ति की ध्वजा को चिरकाल के लिए सारे विश्व के ऊपर फहराने को उद्यत हुआ है। जभी तो परस्त्री में लंपट बन रहा है।"

इत्यादि वार्तालापों के अनन्तर रावण कहता है—

"मंत्रियों! तुम लोग इसे साँकल से बाँधकर धूलि से धूसरित कर घर-घर में घुमाओ और इसके आगे ढोल बजता जाये जो कि सबको सूचित करता जाये कि—

देखो! देखो! आज यह भूमिगोचरियों का दूत बनकर यहाँ आया है और स्वामी की अवज्ञा से ऐसे अपमान को प्राप्त कराया गया है।"

इसी क्रोध से लाल हो हनुमान नागपाश के बंधन को ध्वस्त कर निकल पड़ते हैं। अपने पैरों के आघात से इन्द्रभवन के समान रावण के उस सुवर्णमयी कोट को चूर-चूर कर डालते हैं। पुनः प्रसन्न हुए आकाशमार्ग से चले जाते हैं। उधर सीता भी हनुमान के पराक्रम को सुनती हुई पुष्पांजलि बिखेरकर उनके गमन की मंगलकामना करती हुई कहती हैं—

"हे पुत्र! तेरे समस्त ग्रह मंगलकारी हों, तू विघ्नों को नष्ट कर शीघ्र ही अपने मनोरथ सफल कर।"

"हनुमान कुछ ही समय में श्रीराम के पास पहुँचकर प्रणाम करते हैं। राम सहसा उठकर उसका गाढ़ आलिंगन कर लेते हैं और प्रसन्न हो पुनः-पुनः पूछते हैं—

'हनुमान् ! क्या सच में तुमने मेरी प्रिया देखी है ? क्या वह जीवित है ?.....क्या वह संकट में भी अपने प्राणों को धारण किए हुए है ?....."

हनुमान कहते हैं—

" हे प्रभो! यह चूड़ामणि उन्होंने दिया है, वे केवल आपका ही मात्र ध्यान कर रही हैं। रो-रो कर उन्होंने अपने नेत्र लाल कर लिए हैं। प्रभो! ग्यारहवें दिन आपका समाचार पाकर ही उन्होंने मेरी अतीव प्रार्थना से भोजन ग्रहण किया है।"

अनेक प्रकार से वार्तालाप के बाद रामचन्द्र सभी विद्याधरों के साथ मंत्रणा करके युद्ध के लिए प्रस्थान की तैयारी करने में लग जाते हैं।

2.5 श्रीराम का लंका की ओर प्रस्थान-

मगसिर वदी पंचमी के दिन सूर्योदय के समय अनेक विद्याधरों के साथ महाराजा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र लक्ष्मण के साथ प्रयाणकालिक बाजे बजवाकर प्रस्थान कर देते हैं। उस काल में उत्तम-उत्तम शकुनों से उन सबका उत्साह द्विगुणित होता जा रहा है। निर्ग्रंथ मुनिराज सामने आ रहे हैं, आकाश में छत्र फिर रहा है, घोड़ों की गंभीर हिनहिनाहट फैल रही है, घंटों की मधुर ध्वनि हो रही है एवं दही से भरा हुआ कलश सामने आ रहा है। विद्याधरों के प्रमुख राजा सुग्रीव, हनुमान, शल्य, दुर्मषण, नल, नील आदि अपनी-अपनी सेनाओं के साथ चल रहे हैं। निमिषमात्र में ये सब वेलन्धर पर्वत से आगे बढ़ते हुए हंसद्वीप में पहुँच जाते हैं और भामंडल की प्रतीक्षा करते हुए वहाँ ठहर जाते हैं।

शत्रु की सेना को निकट आती हुई सुनकर अर्धचक्री रावण भी मंत्रणा करके युद्ध के लिए प्रस्थान करना चाहते हैं।

उस समय विभीषण आकर कहते हैं—

"हे प्रभो! आपकी कीर्ति कुन्द पुष्प के समान उज्जवल है अतः हे परमेश्वर! परस्त्री के निमित्त इस कीर्ति को मलिन मत कीजिए। हे स्वामिन् ! श्रीराम यहाँ पधारे हैं सो आप उनका सम्मान कर सीता को उन्हें सौंप दीजिए।"

पिता के अभिप्राय को जानने वाला इन्द्रजीत विभीषण को तर्जित कर कहता है—

"हे भद्र! तुमसे किसने पूछा है ? तुम्हें यहाँ इस समय बकवास करने का क्या अधिकार है ? तुम कायर हो, चुपचाप अपने घर में बैठो।"

बीच में ही बात काटकर विभीषण कहता है—

"अरे बालक! तू रावण का नामधारी पुत्र है किन्तु वास्तव में शत्रु है। अरे मूढ़! जब तक लक्ष्मण आकर इस लंका नगरी को ध्वस्त नहीं करता है और रावण को धराशायी नहीं करता है तब तक तू पिता के लिए हितकर उपाय सोच...."

इत्यादि वार्तालापों के प्रसंग में रावण क्रोध में लाल होकर उठकर खड़ा हो जाता है और म्यान से तलवार निकाल लेता है। इधर विभीषण भी वज्रमयी खंभा उखाड़कर सामने हो जाता है। युद्ध के लिए उद्यत देख मंत्रीगण शीघ्र ही इन दोनों भाइयों को रोक लेते हैं और जैसे-तैसे शांत करने की कोशिश करते हैं। पुनः आवेश में भरा हुआ रावण कहता है—

"इस दुष्ट विभीषण को यहाँ से शीघ्र ही निकाल दिया जाये। मेरे नगर में इसके रहने से भला क्या लाभ है ? यहाँ रहते हुए यदि इसको मैं मृत्यु को प्राप्त न कराऊँ तो मैं रावण ही नहीं कहलाऊं।"

तब विभीषण कहता है—

"क्या मैं रत्नश्रवा का पुत्र नहीं हूँ ? मैं भी इस नगरी में अब एक क्षण नहीं रहना चाहता हूँ। ओह!....जहाँ राजा ही परस्त्रीलंपट हो वहाँ रहना क्या उचित है ?"

2.5.1 विभीषण का रावण को छोड़कर श्रीराम से मिलन-

इतना कहकर वे वहाँ से चल पड़ते हैं और हंसद्वीप में पहुँचकर अपनी कुछ अधिक तीस अक्षौहिणी प्रमाण सेना वहाँ ठहरा देते हैं और स्वयं रामचन्द्र के दर्शन हेतु पहुँचते हैं।

रामचन्द्र के यहाँ जब यह समाचार पहुँचता है तब सभी लोग काँप उठते हैं। लक्ष्मण अपनी दृष्टि सूर्यहास खड्ग की ओर डालते हैं तो श्रीराम वज्रावर्त धनुष का स्पर्श करते हैं। इसी बीच विभीषण द्वारा भेजा हुआ द्वारपाल श्रीराम के पास पहुँचकर दोनों भाई के बीच हुए विवाद को स्पष्ट कर देता है पुनः निवेदन करता है—

"हे नाथ! विभीषण आपकी शरण में आया है अतः आप उसे आश्रय दीजिए।"

दूत के मधुर वाक्यों को सुनकर रामचन्द्र कुछ क्षण के लिए उसे अन्यत्र बिठाकर आप मंत्रियों व हनुमान आदि विश्वस्त जनों के साथ मंत्रणा करते हैं। मतिकांत मंत्री कहता है—

"हो सकता है, रावण ने इसे छल से भेजा हो क्योंकि राजाओं की कूटनीति विचित्र ही होती है।"

तब मतिसागर मंत्री कहता है—

"मैंने अनेक बार यह बात सुनी है कि विभीषण सदैव धर्म का ही पक्ष लेता है अतः भाई-भाई में विरोध हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है।"

इत्यादि मंत्रणा के बाद रामचन्द्र विभीषण को अन्दर आने की आज्ञा दे देते हैं। विभीषण निकट आकर हाथ जोड़कर रामचन्द्र को प्रणाम करते हुए कहते हैं—

"हे प्रभो! मेरा यही निश्चय है कि इस जन्म में मेरे स्वामी आप हैं और परजन्म में श्री जिनेन्द्रदेव।"

जब विभीषण निश्छलता की शपथ ग्रहण कर लेते हैं तब रामचन्द्र कहते हैं—

"हे विभीषण! मैं निःसंदेह तुम्हें लंका का अधिपति बनाऊँगा।"

इन सब शुभ वातावरण के मध्य ही भामंडल भी अपनी विशाल सेना सहित वहाँ आ जाते हैं और सब मिलकर लंका के निकट पहुँच जाते हैं।

2.5.2 श्रीराम-रावण की सेना में युद्ध-

वहाँ पर बीस योजन प्रमाण भूमि में युद्धस्थल निर्धारित किया जाता है। उधर से रावण भी युद्ध के लिए प्रस्थान करता है। मारीचि, सिंहजवन, स्वयंभू आदि अनेक विद्याधर अधिपति चल पड़ते हैं। उस समय अपशकुन होने लगते हैं। पक्षी पंख फैलाकर फड़फड़ाने लगते हैं। महा भयंकर शब्द होने लगता है। अनेक अपशकुनों को देखकर मंदोदरी रावण को बहुत कुछ समझाती है किन्तु वह दुराग्रही अपने हठ को नहीं छोड़ता है। उस समय लंका नगरी से सब मिलकर साढ़े चार करोड़ कुमार युद्ध के लिए बाहर निकल पड़ते हैं।

युद्ध प्रारंभ हो जाता है उधर इन्द्रजीत, मेघवाहन, कुम्भकर्ण, मय विद्याधर आदि प्रमुख हैं तो इधर सुग्रीव, हनुमान, भामंडल, विभीषण आदि प्रमुख हैं। इन लोगों में दिव्य अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार चल रहे हैं। इन्द्रजीत वरुण अस्त्र छोड़कर सर्वदिशाओं को मेघ समूह से व्याप्त कर देता है तो सुग्रीव पवन बाण चलाकर मेघ को छिन्न-भिन्न कर देते हैं। मेघवाहन आग्नेयबाण से अग्नि प्रज्जवलित करता है तो हनुमान वरुण अस्त्र से उसे बुझा देते हैं। कई दिनों तक भयंकर युद्ध के चलने से असंख्य प्राणियों का संहार हो जाता है। इसी मध्य विभीषण देखते हैं कि मेघवाहन और इन्द्रजीत ने सुग्रीव और भामंडल को नागपाश से वेष्टित कर लिया है। वे निश्चेष्ट पड़े हैं। उस समय की दयनीय दशा को देखकर लक्ष्मण श्रीराम से कहते हैं—

"हे नाथ! हे विद्याधरों के स्वामी! सुग्रीव और भामंडल जैसे महाशक्तिशाली विद्याधर भी रावण के पुत्रों द्वारा जहाँ नागपाश से बाँध लिए गये हैं तब हमारे और आपके द्वारा क्या रावण जीता जा सकता है ?"

इतना सुनते ही राम कुछ स्मरण करते हुए कहते हैं—

"भाई! उस समय देशभूषण-कुलभूषण मुनियों का उपसर्ग दूर करने पर हम लोगों को जो वर प्राप्त हुआ था उसका स्मरण करो.....।"

2.5.3 गरुड़ेन्द्र द्वारा श्रीराम-लक्ष्मण को विद्या प्रदान करना-

उसी समय राम के स्मरण मात्र से महालोचन नामधारी गरुड़ेन्द्र का आसन कंपायमान हो जाता है। वह अवधिज्ञान से सर्व वृत्तान्त समझकर चिंतावेग नाम के देव को वहाँ भेजता है। देव उनके समक्ष उपस्थित होकर विनयपूर्वक सर्व संदेश सुनाकर श्रीराम के लिए सिंहवाहिनी एवं लक्ष्मण को गरुडवाहिनी विद्या प्रदान करता है। पुनः वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र, वायव्यास्त्र आदि हजारों देवोपनीत शस्त्र देकर राम के लिए छत्र, चामर आदि विभूति, अनेक विद्या रत्न और हल तथा मूसल नामक शस्त्र देता है एवं लक्ष्मण के लिए विद्युत्वक्त्र नाम की गदा प्रदान करता है। दोनों भाई इन महान् दिव्य अस्त्र-शस्त्र आदि को प्राप्त करके उस देव का सन्मान करके उसे विदा कर देते हैं पुनः आप दोनों मिलकर जिनेन्द्रदेव की महापूजा करते हैं।

अनन्तर युद्धस्थल में पहुँचकर गरुड़वाहिनी विद्या के प्रयोग से भामंडल आदि को नागपाश बंधन से मुक्त कर देते हैं। कुछ क्षण बाद सुग्रीव आदि विद्याधर विस्मययुक्त हो राम लक्ष्मण से पूछते हैं—

"हे नाथ! जो विपत्ति के समय कभी भी देखने में नहीं आई थीं ऐसी ये अद्भुत विभूतियाँ आज आपके पास कहाँ से प्राप्त हुई हैं। ये दिव्यवाहन, दिव्यास्त्र, छत्र, चामर, ध्वजाएं और विविध रत्न आपको कहाँ से मिले हैं ?"

श्रीराम कहते हैं—

"हे बंधु! यह सर्व विभूति गुरुभक्ति के प्रसाद रूप में हमें गरुड़ेन्द्र के द्वारा प्राप्त हुई है।"

इतना कहकर वे देशभूषण-कुलभूषण के उपसर्ग निवारण से उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति होना अनन्तर गरुड़ेन्द्र द्वारा संतुष्ट होकर वर माँगने की प्रेरणा करना इत्यादि समाचार सुना देते हैं। तब सभी लोग गुरुभक्ति और जिनेन्द्रभक्ति के

माहात्म्य की चर्चा करते हुए राम-लक्ष्मण की अतिशय प्रशंसा करते हैं और उनकी सब प्रकार से पूजा करते हैं।

2.5.4 लक्ष्मण को शक्ति शस्त्र लगने से मूर्च्छा-

पुनरपि युद्ध प्रारंभ हो जाता है। कभी रावण की सेना पराजित होती है तो कभी वानरवंशियों की सेना परास्त हुई दिखने लगती है। किसी समय भामण्डल, लक्ष्मण आदि भानुकर्ण और इन्द्रजीत को नागपाश से वेष्ठित करके अपने रथ में उन्हें डाल देते हैं। इस घटना से कुपित हो रावण विभीषण को ललकारता है और शक्ति नामक शस्त्र को उठाता है। इसी बीच विभीषण को जैसे-तैसे अलग कर लक्ष्मण मध्य में आ जाते हैं। वह रावण उसी पर शक्ति का प्रहार कर देते हैं। बस, देखते ही देखते लक्ष्मण मूर्च्छित हो पृथ्वीतल पर गिर जाते हैं। उन्हें ऐसा देख श्रीराम तीव्र शोक को रोककर रावण से भिड़ जाते हैं। यद्यपि राम छह बार रावण को धनुष रहित और रथरहित कर देते हैं तथापि उसे पराजित नहीं कर पाते हैं तब वे आश्चर्यचकित हो कहते हैं—

"जब तू इस तरह भी मृत्यु को प्राप्त नहीं हुआ है तब तू अल्पायुष्क नहीं यह निश्चित है। ओह! पूर्व पुण्य तेरी रक्षा कर रहा है। हे विद्याधर राज! सुन! मैं तुझसे कुछ कहता हूँ। जिस मेरे प्राण प्यारे भाई को तूने घायल किया है वह मरने के सन्मुख है, यदि तू अनुमति दे तो मैं उसका मुख देख लूँ ?"

तब प्रसन्न हो रावण कहता है—

'एवमस्तु' और लंका की ओर चला जाता है। उस दिन युद्ध विराम ले लेता है।

2.6 लक्ष्मण की मूर्च्छा से श्रीराम हुए शोकविह्वल-

उसी युद्धभूमि में चारों तरफ से सफाई करके विद्याधर लोग तम्बू लगाकर शिविर बना देते हैं। पहले गोपुर के दरवाजे पर राजा नल, दूसरे पर नील, तीसरे पर विभीषण, चौथे पर कुमुद, पाँचवें पर सुषेण, छठे पर सुग्रीव और सातवें द्वार पर स्वयं भामंडल हाथ में नंगी तलवार लेकर सुरक्षा में खड़े हो जाते हैं।

महाराज राम वहाँ आकर भाई के शोक में विह्वल हो मूर्च्छित हो जाते हैं। अनेक उपचारों से होश को प्राप्त होकर वे करुण विलाप करने लगते हैं—

"हे भाई! तू कर्मयोग से इस दुर्लंघ्य सागर को भी उल्लंघ कर यहाँ आया और अब इस दुरावस्था को कैसे प्राप्त हो गया ? हाय भाई! मैं तेरे बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता हूँ अब जल्दी उठ और मेरे से वार्तालाप कर। ओह!....अब तुझे सीता से भी कुछ प्रयोजन नहीं है। अरे....तू सुख में दुःख में सदैव साथ देता रहा है। तेरे बिना मैं जीवित नहीं रह सकूँगा।....."

राम इधर-उधर देखकर कहते हैं—

"सुग्रीव! भामण्डल! अब तुम लोग अपने-अपने स्थान जाओ। ओह! विभीषण! मैं तुम्हारा कुछ भी उपकार नहीं कर सका सो मुझे बहुत ही दुःख है। ओह!.....अब आप लोग चिता प्रज्ज्वलित करो मैं अपने प्यारे भाई के साथ उसी में बैठकर परलोक प्रयाण करूँगा। अब मुझे कुछ भी नहीं चाहिए।"

इतना कहते हुए श्रीराम लक्ष्मण का आलिंगन करने को आगे बढ़ते हैं कि मध्य में ही जाम्बूनद राजा उन्हें रोक लेते हैं—

"नाथ! सावधान होइए, ऐसा प्रमाद उचित नहीं है, ये दिव्य अस्त्र हैं। देव! आप धैर्य धारण करो, विलाप करना यह इसका प्रतीकार नहीं है। आपका भाई नारायण है इसका असमय में मरण नहीं हो सकता। आप शांति धारण करो।"

अन्य विद्याधर कहते हैं—

"अहो! सूर्योदय के पहले-पहले यदि इस शक्ति का कुछ उपाय सूझ गया तो ठीक अन्यथा इनका मरण निश्चित है।"

2.6.1 चन्द्रप्रतिम विद्याधर का आगमन और औषधि बताना-

सभी विद्याधर मंत्रणा में लगे हुए हैं और दुर्दिन के समान अश्रुवर्षा कर रहे हैं। उधर दरवाजे पर एक अपरिचित व्यक्ति आता है और अन्दर घुसना चाहता है। तब भामंडल पूछते हैं—

"तू कौन है ? कहाँ से आया है ? और किसलिए अन्दर जाना चाहता है ?"

वह कहता है—

"मैं राम का दर्शन करना चाहता हूँ, यदि आप लक्ष्मण को जीवित देखना चाहते हो तो मुझे शीघ्र ही अन्दर ले चलो।"

भामण्डल अपने स्थान पर अन्य विद्याधर को बिठाकर आप उसे साथ लेकर अन्दर पहुँचते हैं। वह राम को नमस्कार कर कहता है—

"प्रभो! आपके भाई जीवित हैं, आप मेरी प्रार्थना सुनिए।"

सभी एक स्वर से बोल उठते हैं—

"कहिए, जल्दी कहिए।"

"मैं देवगीतपुर का रहने वाला चन्द्रप्रतिम विद्याधर हूँ। एक बार शत्रु द्वारा शक्ति शस्त्र से घायल होकर मैं अयोध्या के उद्यान में गिरा था सो भरत महाराज ने मुझ पर चन्दनमिश्रित दिव्य जल छिड़क कर मुझे जीवनदान दिया था, उसी जल से ये लक्ष्मण भी जीवित होंगे, आप उस जल को शीघ्र ही यहाँ मँगाइये। राजा द्रोणमेघ की कन्या विशल्या के स्नान का वह जल स्वर्ग की दिव्य शक्ति और सर्वरोग को नष्ट करने में समर्थ है।"

इतना सुनते ही हनुमान तथा भामंडल रामचन्द्र की आज्ञा लेकर विमान से रात्रि में ही वहाँ पहुँचते हैं। भरत इस घटना को विदित कर मूर्च्छित हो जाते हैं, उन्हें सचेत कर वे लोग उस जल की याचना करते हैं। तब भरत शीघ्र ही विश्वस्त लोगों को राजा द्रोणमेघ के पास भेज देते हैं, साथ में माता कैकेयी भी जाती हैं। राजा द्रोणमेघ को सारी घटना मालूम होते ही वे कहते हैं—

"ठीक है, स्वामी भरत की आज्ञा के अनुसार मेरी पुत्री विशल्या वहाँ स्वयं जाएगी। चूँकि वह लक्ष्मण की ही वल्लभा होगी ऐसा महामुनि ने बताया है।"

2.6.2 राजकन्या विशल्या का युद्धभूमि में आगमन और शक्ति नामक विद्या का पलायन-

भामण्डल स्वयं उस कन्या को अपने विमान में बैठाते हैं और चलने को उद्यत होते हैं। उस समय उस विशल्या के साथ एक हजार राजपुत्रियाँ भी भेजी जाती हैं। ये लोग तत्काल युद्धभूमि में पहुँच जाते हैं। वहाँ विशल्या का अर्घ्य आदि से यथायोग्य सन्मान कर उसे लक्ष्मण के पास ले जाया जाता है।

जैसे-जैसे वह कन्या पास पहुँचती जाती है वैसे-वैसे ही लक्ष्मण की हालत सुधरती जाती है। जब वह निकट पहुँचती है कि 'शक्ति' नाम की विद्या लक्ष्मण के वक्षस्थल से निकलकर भागने लगती है। हनुमान बीच में ही पकड़ कर उससे पूछते हैं—

"तू कौन है ?"

वह कहती है—

"हनुमन् ! कैलाशपर्वत पर जब रावण ने अपने हाथ की नसों को खींचकर उसकी वीणा बनाकर भगवान जिनेन्द्रदेव की भक्ति की थी उस समय धरणेंद्र ने प्रसन्न हो रावण के लिए मुझे 'अमोघ विजया' नाम की विद्या दी थी। इस विशल्या के सिवाय इस संसार में आज किसी में यह शक्ति नहीं है कि जो मेरा पराभव कर सके।"

"ऐसा क्यों ?" हनुमान पूछते हैं, तब वह कहती है—

"विशल्या ने पूर्वभव में महा घनघोर वन में तीन हजार वर्ष तक घोरातिघोर तपश्चरण किया है। जिसके फलस्वरूप आज उसे यह शक्ति प्राप्त हुई है जिसके स्नान के जल से ही संपूर्ण रोग और संकट दूर हो जाते हैं। उसके सम्मुख मैं भी नहीं ठहर सकती हूँ अतः अब आप मुझे जाने दो।"

हनुमान उसे छोड़ देते हैं। इधर चन्दन के द्रव को लेकर विशल्या श्रीराम की आज्ञा से लक्ष्मण के शरीर में विलेपन करती है और उनकी आज्ञा से ही अन्य कन्यायें भी उस विशल्या के हाथ से स्पर्शित चन्दन को अन्य विद्याधरों को

लगाती हैं। वह चन्दन इन्द्रजीत आदि के पास भी भेजा जाता है।

2.6.3 लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर हुई—

इधर जब लक्ष्मण सोए हुए से प्रतीत होते हैं तब बांसुरी की मधुर ध्वनि से उन्हें उठाया जाता है। उठते हुए लक्ष्मण कहते हैं—

"वह रावण कहाँ गया ? कहाँ गया ?"

कुछ-कुछ मुस्कराते हुए राम उन्हें अपनी बाहों में भर लेते हैं और कहते हैं—

"भाई! रावण तो तुम्हें शक्ति द्वारा आहत कर कृतकृत्य होता हुआ अपने कटक में चला गया है और तुम इस कन्या के प्रभाव से आज पुनर्जन्म को प्राप्त हुए हो।"

2.6.4 लक्ष्मण और विशल्या का पाणिग्रहण संस्कार—

लक्ष्मण सारा वृत्तांत श्रवण करते हुए आश्चर्य व स्नेहपूर्ण दृष्टि से विशल्या की तरफ देखते हैं। उसी समय मंगलाचार में निपुण स्त्रियाँ कहती हैं—"स्वामिन्! हम सब लोग अब आपका विवाहोत्सव देखना चाहते हैं।"

लक्ष्मण मुस्कुराते हुए कहते हैं—

"जहाँ प्राणों का संशय विद्यमान है ऐसे युद्धक्षेत्र में यह विवाह कैसा ?"

"हे नाथ! इस कन्या के द्वारा आपका स्पर्श तो हो ही चुका है तथा आपके पुण्य के प्रभाव से समस्त विघ्न शांत हो चुके हैं अतः अब आप इसके साथ पाणिग्रहण विधि को स्वीकार करके हम लोगों के मनोरथ सफल कीजिए।"

राम की आज्ञा से लक्ष्मण स्वीकृति दे देते हैं और वहीं युद्धस्थल में बड़े ही वैभव के साथ इन दोनों की विवाह विधि सम्पन्न की जाती है।

इधर इस समाचार से रावण के यहाँ अतीव क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। अनेक सामंत और मंत्रीगण तरह-तरह से रावण को समझाते हैं और जैसे-तैसे एक दूत राम के पास भेजने का निर्णय लेते हैं। दूत आकर राम से निवेदन करता है—

"हे पद्म! त्रिखंडाधिपति रावण का कहना है कि युद्ध में अनेक महापुरुषों के संहार से कोई लाभ नहीं है। आपको वे लंका का आधा भाग पर्यंत राज्य देकर संतुष्ट करते हैं किन्तु आप उनके भाई और पुत्रों को भेजो तथा सीता देना स्वीकृत करो।"

तब राम कहते हैं—

"हे भाई! तू रावण से कह दे कि मैं अभी ही उनके भाई एवं पुत्रों को भेजे देता हूँ किन्तु वह मेरी सीता मुझे वापस कर दे। मैं सीता के साथ वन में रहकर ही संतुष्ट हूँ मुझे राज्य की इच्छा नहीं है।"

2.6.5 रावण द्वारा बहुरूपिणी विद्या की सिद्धि-

इतना सुनकर दूत सीता को भेजने के बारे में उत्तर-प्रत्युत्तर शुरू कर देता है। भामंडल आदि क्षुभित हो उसे अपमानित करके निकाल देते हैं। तब रावण मंत्रियों के साथ मंत्रणा करके बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करने हेतु श्री शांतिनाथ जिनालय में जाकर विधिवत् अनुष्ठान कर लेता है। मंदोदरी घोषणा कर देती है कि इस आष्टाह्निक महापर्व में रावण के अनुष्ठान तक सब लोग नियम अनुष्ठान करते रहें युद्ध का विराम हो जाता है।

भामंडल आदि यह समाचार ज्ञात कर चिंतित हो उठते हैं और श्रीराम के पास आकर निवेदन करते हैं—

"प्रभो! रावण बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर रहा है, यह चौबीस दिन में सिद्धि को प्राप्त होती है। इसके सिद्ध हो जाने पर रावण इन्द्रों द्वारा भी जीता नहीं जा सकता पुनः हम जैसे क्षुद्र पुरुषों की तो बात ही क्या ? अतः इस अवसर पर उसे क्षुभित किया जाये कि जिससे वह विद्या सिद्ध न कर सके।"

मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र कहते हैं—

"जो नियम लेकर जिनमंदिर में बैठा है उस पर ऐसा कुकृत्य करना कैसे योग्य हो सकता है ? भाई! हम उच्चकुलीन क्षत्रियों की यह प्रवृत्ति प्रशंसनीय नहीं है।"

सब लोग अपना सा मुंह लेकर चले जाते हैं और आपस में मंत्रणा करते हैं कि—

"हमारे स्वामी राम महापुरुष हैं ये अधर्म में प्रवृत्ति नहीं करेंगे अत: चुपचाप अपने-अपने कुमारों को इस कार्य में लगा देना चाहिए।"

सुभूषण आदि कुमार आठ दिन तक तो विचार-विमर्श में समय यापन कर देते हैं, पूर्णिमा के दिन लम्बे-चौड़े वज्रमय किवाड़ तोड़कर लंका में घुस जाते हैं और उपद्रव करना शुरू कर देते हैं। तब शांतिनाथ जिनालय के शासनदेव बाहर निकल कर वानर सेना पर झपटते हैं यह देखकर इस पक्ष के रक्षक देव भी अपने शिविर से निकल कर परस्पर में युद्ध करने लगते हैं। तब पूर्णभद्र और मणिभद्र यक्षेन्द्र अपनी विक्रिया से इन सबको परास्त कर श्रीराम के पास उलाहना लेकर पहुँचते हैं और कहते हैं—

"हे महानुभाव! जबकि रावण सम्यक्त्व की भावना से सहित है, जिनेन्द्रदेव के चरणों का सेवक है और इस समय शांतचित्त है तो पुन: क्या इन लोगों को यह उपद्रव करना उचित है ?

उस समय उसके क्रोध को देखकर प्राय: विभीषण आदि सभी विद्याधर भयभीत हो जाते हैं किन्तु लक्ष्मण ओजपूर्ण वचन कहते हैं—

"हे यक्षराज! जबकि उसने हमारे स्वामी की प्राणप्रिया का हरण कर कितना घोर अनर्थ किया है और इस विद्या को सिद्ध कर युद्ध में न जाने कितने जीवों का संहार करेगा तब भला तुम उस पर दया क्यों कर रहे हो..... ?"

इधर सुग्रीव आदि भी उन यक्षों को अर्घ्य समर्पण कर निवेदन करते हैं—

"हे यक्षराज! क्रोध छोड़िये और समभाव से देखिये कि हमारी सेना में और लंका की समुद्र सदृश सेना में कितना अन्तर है ? फिर भी रावण बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर रहा है। अहो! इस स्थिति में हम लोगों की विजय अथवा धर्म की विजय कैसे होगी ?"

इतना सुनकर वे दोनों यक्षेंद्र लज्जित हो जाते हैं पुन: सबसे वार्तालाप करते हुए कहते हैं—

"हे सत्पुरुषों! लंका में जीर्णतृण को भी पीड़ा मत पहुँचाओ और रावण के शरीर की भी कुशलता रखते हुए भले ही उसे क्षुभित करने का प्रयत्न करो कि जिससे वह विद्या न सिद्ध कर सके।"

तत्पश्चात् राम के गुणों की चर्चा करते हुए वे यक्षेंद्र चले जाते हैं और ये लोग रावण को क्षुभित करने के अनेक उपाय करते हैं, कभी उसकी माला तोड़ डालते हैं तो कभी स्त्रियों को उसके सामने कष्ट देते हैं। एक कुमार मंदोदरी को घसीट कर लाकर अनेक त्रास देने लगता है वह विलाप करने लगती है किन्तु रावण ध्यानमग्न है। उसी समय बहुरूपिणी विद्या आकर उपस्थित हो जाती है और कहती है—

"हे स्वामी! मैं सिद्ध हो गई हूँ आप आज्ञा दीजिए। प्रतिकूल खड़े हुए एक चक्रधर को छोड़ कर मैं समस्त लोक को आपके अधीन कर सकती हूँ।"

2.6.6 रावण का सीता को रिझाने का प्रयास-

विद्या सिद्ध होते ही अंग-अंगद आदि कुमार वहाँ से पलायन कर जाते हैं और रावण मंदिर की प्रदक्षिणा देकर अपने स्थान पर आ जाता है। विह्वल हुई मंदोदरी आदि रानियों को सान्त्वना देता है। अनंतर सीता को रिझाने के लिए उद्यान में पहुँचकर सीता को अपना वैभव, बल आदि दिखाकर कहता है—

"हे सुन्दरी! मैं अपने सत्यव्रत का पालन करते हुए ही तुम्हारे प्रसाद की प्रतीक्षा कर रहा हूँ किन्तु बलपूर्वक मैं तुम्हारा उपभोग नहीं कर रहा हूँ। अब तुम राम की आशा छोड़ो, वह मेरे बाणों से मरने वाला ही है। अब तुम मुझ पर

प्रसन्न होवो और मेरे साथ मेरु कुलाचल आदि में विहार करते हुए सर्वोत्तम सुखों का अनुभव करो।"

अश्रुओं से मुँह को धोती हुई सीता कहती है—

"हे दशानन! यदि तुम्हारी मेरे प्रति किंचित् भी सद्भावना है तो राम को मारने के पहले उन्हें मेरा एक समाचार कह देना कि हे राम! जनकनंदिनी कहला रही है कि मैंने जो अभी तक प्राण नहीं छोड़े थे सो केवल आपके दर्शन की उत्कंठा से ही नहीं छोड़े थे.....।"

इतना कहते हुए वह मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर जाती है। तब वैसी स्थिति में रावण अतीव दु:खी हो विचार करता है—

"अहो! इन दोनों का यह कभी भी नहीं छूटने वाला निकाचित स्नेह है। ओह! मुझे बार-बार धिक्कार है, मैंने यह क्या किया ? इस प्रेमयुक्त दम्पत्ति का विछोह क्यों करा दिया ? हाय! परस्त्री हरण के अपयश से मलिन हुआ मैं किस गति में जाऊँगा ? क्या करूँ ?....मैं विचित्र ही धर्मसंकट में पड़ गया हूँ।"

कुछ क्षण बाद सोचता है—

"ठीक है, अब तो युद्ध में करुणा करना विरुद्ध है अत: मैं युद्ध में रामचन्द्र को जीवित ही पकड़ लूँगा, पुन: वैभव के साथ उनकी सीता उन्हें सौंप दूँगा।"

2.7 लक्ष्मण एवं रावण युद्ध-

इत्यादि विचार करते हुए वह अपने स्थान पर पहुँचता है। पुन: इन्द्रजीत, मेघनाद और कुम्भकर्ण को शत्रु के यहाँ बँधा हुआ स्मरण कर व्याकुल हो उठता है। अनेक अपशकुन होते हुए भी वह सब निमित्तज्ञानियों की उपेक्षा कर पुन: युद्ध के लिए निकल पड़ता है। पूर्ववत् युद्ध प्रारंभ हो जाता है, दोनों पक्ष में हार का नाम नहीं है। रावण का एक शिर कटते ही हजारों शिर बन जाते हैं, हजारों भुजाओं से एक साथ हजारों बाण छोड़ रहा है इस तरह वीर रावण और लक्ष्मण को युद्ध करते हुए दस दिन व्यतीत हो जाते हैं। आकाश मार्ग में स्थित चन्द्रवर्धन विद्याधर की आठ कन्यायें लक्ष्मण के युद्ध को देख रही हैं। आपस में उनका परिचय पूछा जाने पर वे कहती हैं—

"ये वीर लक्ष्मण ही मेरे भावी पति हैं अत: इनकी जो गति होगी सो ही मेरी गति होगी।"

कन्याओं के मनोहारी वचन सुनकर अकस्मात् लक्ष्मण ऊपर की ओर दृष्टि उठाकर देखते हैं कि कन्याओं के मुख से सहसा शब्द निकलता है—

"हे नाथ! आप सब प्रकार से 'सिद्धार्थ' होओ।"

इतना सुनते ही लक्ष्मण को सिद्धार्थ नामक अस्त्र का स्मरण हो आता है और वे उसके द्वारा रणक्षेत्र में हाहाकार मचा देते हैं। तब रावण चक्ररत्न का स्मरण करता है, चक्ररत्न हाथ में आते ही वह लक्ष्मण पर चला देता है। चक्ररत्न को आता हुआ देख अब तो मरना ही होगा ऐसा निश्चय करते हुए श्री लक्ष्मण वज्रमुखी बाणों से उसे रोकने को तत्पर हो जाते हैं। उस समय श्रीरामचन्द्र एक हाथ में वज्रावर्त धनुष से और दूसरे हाथ से घुमाये हुए तीक्ष्णमुख हल से, सुग्रीव गदा से, भामंडल तलवार से, विभीषण त्रिशूल से, हनुमान उल्का मुद्गर, लांगूल आदि से, अंगद परिघ से, अंग कुठार से और अन्य विद्याधर भी शेष अस्त्रशस्त्रों से एक साथ मिलकर जीवन की आशा छोड़ उस चक्ररत्न को रोकने में लग जाते हैं किन्तु सब मिलकर भी उसे रोकने में समर्थ नहीं हो पाते हैं। राम की सेना में व्यग्रता बढ़ रही है फिर भी भाग्य की बात देखो, वह चक्ररत्न लक्ष्मण की तीन प्रदक्षिणाएं देता है उसके सब रक्षकदेव विनय से खड़े हो जाते हैं और वह चक्ररत्न. लक्ष्मण के हाथ में आकर ठहर जाता है।

2.7.1 लक्ष्मण द्वारा रावण की मृत्यु-

यह देख रावण एक क्षण के लिए चिन्तासागर में डूब जाता है—

"अहो! उस समय जगद्वंद्य अनन्तवीर्य केवली ने दिव्यध्वनि में जो कहा था कि लक्ष्मण नारायण होगा सो ऐसा लगता है कि यह वही नारायण आ गया है.....ओह! धिक्कार हो इस राज्य लक्ष्मी को.....धिक्कार हो इन पंचेन्द्रिय

विषयों को! हाय, हाय,! अब मैं इस भूमिगोचरी रंक से मरण को प्राप्त होऊँगा.....।"

उधर लक्ष्मण पुनः रावण को समझाते हुए कहते हैं—

"दशानन! अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है यदि तुम सीता को वापस देकर कहो कि मैं रामचन्द्र के प्रसाद से जीवित हूँ तो तुम्हारी लक्ष्मी ज्यों की त्यों अवस्थित है।"

तब रावण गर्विष्ठ हो कहता है—

"अरे नीच! तू यदि इस चक्र से अपने को नारायण मान रहा है तो अपने को इन्द्र क्यों नहीं मान लेता ?"

इत्यादि वार्तालाप के मध्य लक्ष्मण कहते हैं—

"बहुत कहने से क्या ? अब मैं तुझे मारने वाला नारायण उत्पन्न हो चुका हूँ।"

ऐसा कहते हुए लक्ष्मण चक्र को घुमाकर चला देते हैं। रावण अपने चन्द्रहास खड्ग से उसे रोकना चाहता है किन्तु वह चक्र उसके वक्षस्थल को विदीर्ण कर देता है। रावण अर्धनिमिष मात्र में पृथ्वी पर गिर पड़ता है। उसकी सेना में चारों तरफ से हाहाकार मच जाता है।

"रथ हटाओ, मार्ग देखो, भागो भागो, स्वामी धरती पर गिर पड़े, अरे अरे! हटो, हटो....।"

इस तरह हलचल देख सुग्रीव, भामंडल, हनुमान आदि तत्क्षण वस्त्र के छोर को ऊपर उठाकर अभय घोषणा करते हुए कहते हैं—

"डरो मत, डरो मत, शांत होओ, शांत होओ।"

इधर पुनः चक्ररत्न कृतकृत्य होता हुआ लक्ष्मण के हाथ में आ जाता है और सब ओर से एक ही स्वर निकलता है—

"ये लक्ष्मण आठवें नारायण के रूप में प्रकट हुए हैं। जय हो, जय हो। श्री रामचन्द्र बलभद्र की जय हो, जय हो, अर्धचक्री नारायण लक्ष्मण की जय हो, जय हो।"

इधर युद्ध की विभीषिका समाप्त हो जाती है।

2.8 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-राम-लक्ष्मण कौन से वन में रहे ?

(क) अरण्य ☐ (ख) दंडक ☐ (ग) इनमें से कोई नहीं ☐

प्रश्न 2-चन्द्रनखा के पति का क्या नाम था ?

(क) कुलभूषण ☐ (ख) लक्ष्मण ☐ (ग) खरदूषण ☐

प्रश्न 3-शंबूक ने किस खड्ग के लिए बारह वर्ष जंगल में तपश्चर्या की ?

(क) सूर्यहास ☐ (ख) चन्द्रहास ☐ (ग) ये दोनों ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-खरदूषण और लक्ष्मण के बीच युद्ध क्यों हुआ ?

प्रश्न 2-रावण ने सीता का हरण किस प्रकार किया ?

प्रश्न 3-सुग्रीव कौन था ? वह राम के पास क्यों आया ?

प्रश्न 4-राम को "सीता कहाँ है", यह समाचार किससे मिला ? लंका कहाँ पर स्थित थी ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-राम-रावण का युद्ध क्यों हुआ तथा रावण को किसने मारा ? वर्णन कीजिए ?

पाठ-3—राम-सीता एवं स्वजन मिलन

3.1 रावण के वध से विभीषण हुए शोकविह्वल-

भाई को पड़ा देख विभीषण मोह और शोक से पीड़ित हो अपना वध करने के लिए छुरी को उठाता है कि इसी बीच उसे मूर्च्छा आ जाती है। सचेत हो पुनः आत्मघात करने के लिए तैयार होता है। तब श्रीराम रथ से उतरकर बड़ी कठिनाई से उसे पकड़ रखते हैं। वह बार-बार मूर्च्छित हो जाता है और होश में आने पर घोर विलाप करता है—

"हे भाई! हे शूरवीर! हे आश्रितजनवत्सल! तुम इस पाप पूर्ण दशा को कैसे प्राप्त हो गये ? ओह! तुम्हारे ही इस चक्र ने तुम्हारे वक्षस्थल को कैसे विदीर्ण कर डाला ? हे कृपासागर! मुझसे वार्तालाप करो, मुझे छोड़कर कहाँ चले गये..... ?"

रामचन्द्र जैसे-तैसे उसे सान्त्वना देते हैं कि इसी बीच रावण की 18 हजार रानियाँ वहाँ एकत्रित हो जिस तरह करुण क्रंदन करती हैं कि वह लेखनी से नहीं लिखा जा सकता है। रत्नों की चूड़ियाँ तोड़-तोड़कर फेंक देती हैं और अपने वक्षस्थल को कूटते हुए बार-बार मूर्च्छा को प्राप्त हो जाती हैं। लक्ष्मण और विभीषण सहित श्री रामचन्द्र मंदोदरी आदि सभी को सान्त्वना देते हुए लंकेश्वर का विधिवत् दाह-संस्कार करते हैं। पुनः पद्म नामक महासरोवर में स्नान करके तीर पर बैठ जाते हैं और कुंभकर्ण आदि को छोड़ देने का आदेश देते हैं। भामंडल आदि मंत्रणा करते हैं—

"विभीषण का भी इस समय विश्वास नहीं करना चाहिए।"

"कुंभकर्ण, इन्द्रजीत आदि भी पिता की चिता जलती देख कुछ उपद्रव कर सकते हैं।"

अतः ये लोग सावधान हो पास में ही बैठ जाते हैं। रामचन्द्र के आदेश के अनुसार बेड़ियों से सहित कुंभकर्ण, इंद्रजीत और मेघवाहन लाये जाते हैं। आपस में दुःख वार्ता के अनंतर श्रीराम उनसे राज्य को संभालने के लिए अनुरोध करते हैं किन्तु वे कहते हैं-

"अब हम लोग पाणिपात्र में ही आहार ग्रहण करेंगे ऐसी प्रतिज्ञा कर ली है।"

उस समय रामचन्द्र आदि उन्हें भोगों में लगाने के लिए सब कुछ उपाय करते हैं किन्तु सफल नहीं हो पाते हैं।

3.1.1 महामुनि अनंतवीर्य का संघ सहित लंका आगमन और केवलज्ञान प्राप्ति-

उसी दिन अंतिम प्रहर में श्री अनंतवीर्य महामुनि अपने छप्पन हजार आकाशगामी मुनियों के साथ वहाँ आकर कुसुमायुध उद्यान में ठहर जाते हैं। दो सौ योजन तक पृथ्वी उपद्रव रहित हो जाती है और वहाँ पर रहने वाले सभी जीव परस्पर में निर्वैर हो जाते हैं। आचार्य कहते हैं कि—

"यदि यह संघ प्रातःकाल में आ जाता तो रावण और लक्ष्मण की परस्पर में परम प्रीति हो जाती।"

रात्रि में अनंतवीर्य सूरि को केवलज्ञान प्रगट हो जाता है और देवों के आगमन का दुंदुभि वाद्य आदि का मधुर शब्द होने लगता है। इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण और मेघवाहन आदि विद्याधर वहाँ पहुँच कर जैनेश्वरी दीक्षा लेकर महामुनि बन जाते हैं। शशिकान्ता आर्यिका से संबोधन को प्राप्त हुई मंदोदरी आदि 48 हजार स्त्रियाँ संयम धारण कर आर्यिका हो जाती हैं।

3.1.2 श्रीराम और सीता का मिलन—

अनंतर राम-लक्ष्मण महावैभव के साथ लंका नगरी में प्रवेश करते हैं। सीता से मिलने के लिए उत्कंठित हुए प्रमदवन की तरफ चलते हैं। पतिदेव को आते हुए देख उनके स्वागत के लिए आकुल हुई सीता उठकर आगे कदम बढ़ाती हैं, रामचन्द्र निकट आकर हाथ जोड़े हुए विनय से नम्र सीता का अपनी भुजाओं से आलिंगन कर लेते हैं। उस समय उनके सुख का अनुभव वे ही कर रहे हैं। शीलशिरोमणि दम्पत्ति के समागम को देखकर आकाश से देवतागण पुष्पांजलि छोड़ते हैं। सर्वत्र सब तरफ से जय-जयकार की ध्वनि गूंज उठती है—

"अहो! धन्य है सीता का धैर्य, धन्य है इसका शीलव्रत और धन्य है इसका शुद्ध आचरण।"

लक्ष्मण भी विनय से सीता के चरणयुगल को नमस्कार करते हैं और भामंडल भी भ्रातृ प्रेम से निकट आ जाते हैं सीता के नेत्रों में वात्सल्य के अश्रु आ जाते हैं। सुग्रीव, हनुमान आदि विद्याधर सीता देवी को सिर झुकाकर अभिवादन करते हैं अन्य सभी विद्याधर अपना-अपना परिचय देते हुए अभिवादन करते हैं। अनन्तर रामचन्द्र सीता का हाथ पकड़कर अपने साथ ऐरावत हाथी पर बिठाकर वहाँ से चलकर रावण के भवन में प्रवेश करते हैं।

श्री शांतिनाथ जिनालय में पहुँचकर भावविभोर हो स्तुति पाठ पढ़ते हुए वंदना करते हैं। अनंतर विभीषण के अनुरोध से उनके महल में प्रवेश करके पद्मप्रभ जिनालय में पहुँचकर श्री पद्मप्रभजिनेन्द्र की वंदना करते हैं, पुनः विभीषण की प्रार्थना से स्नान आदि से निवृत्त होकर सभी लोग वहीं पर भोजन करते हैं। तत्पश्चात् विभीषण, सुग्रीव आदि विद्याधर श्रीराम-लक्ष्मण के बलदेव-नारायण पद प्राप्ति के लिए राज्याभिषेक की तैयारी प्रारंभ कर देते हैं और पास आकर प्रार्थना करते हैं—

"हे देव! अब आप हम लोगों के द्वारा किये जाने वाले राज्याभिषेक को स्वीकार करके हम लोगों को सनाथ कीजिए।"

तब श्रीराम कहते हैं—

"पिता दशरथ की आज्ञा से अयोध्या में भरत का राज्याभिषेक किया गया था अतः वे ही तुम्हारे और हम दोनों के स्वामी हैं।"

विभीषण आदि कहते हैं—

"स्वामिन् ! जैसा आप कह रहे हैं यद्यपि वैसा ही है तथापि महापुरुषों से मान्य इस मंगलमय अभिषेक में क्या दोष है ?"

"ओम्" स्वीकृति प्राप्त कर सभी विद्याधर इन दोनों का बलदेव और अर्धचक्री के पद के उचित महावैभवशाली राज्याभिषेक करके इनके ललाट पर उत्तम मुकुट बाँध देते हैं।

अनंतर वनवास के समय श्रीराम और लक्ष्मण ने जिन-जिन कन्याओं को विवाहा था, पत्र देकर भामंडल, हनुमान आदि को भेजकर उन सबको वहीं बुला लेते हैं। वहाँ लंका नगरी में सबके द्वारा स्तुति प्रशंसा को प्राप्त करते हुए और दिव्य अनुपम भोगों को भोगते हुए इन राम-लक्ष्मण का समय सुख से व्यतीत हो रहा है।

3.2 माता कौशल्या की पुत्रवियोग में व्याकुलता—

माता कौशल्या सुमित्रा के साथ अपने सतखण्डे महल की छत पर खड़ी हैं और पताका के शिखर पर बैठे हुए कौवे से कहती है-

"रे रे वायस! उड़ जा, उड़ जा, यदि मेरा पुत्र राम घर आ जायेगा तो मैं तुझे खीर का खोजन देऊँगी।"

पागल सदृश हुई कौशल्या को जब कौवे की तरफ से कोई उत्तर नहीं मिलता है तब वह नेत्रों से अश्रु बरसाते हुए विलाप करने लगती है—

"हाय पुत्र! तू कहाँ चला गया ? ओह!....बेटा! तू कब आयेगा ? मुझ मंदभागिनी को छोड़कर कहाँ चला गया ?....."

इतना कहते-कहते दोनों माताएं मुक्त कंठ से रोने लगती हैं। इसी बीच क्षुल्लक के वेष में अवद्वार नाम के नारद को आते देख उनको आसन देती हैं। बगल में वीणा दबाए नारद माता को रोते देख आश्चर्यचकित हो पूछते हैं—

"मातः! दशरथ की पट्टरानी, श्रीराम की सावित्री माँ! तुम्हारे नेत्रों में ये अश्रु कैसे ? क्यों ?.....कहो, कहो, जल्दी कहो, किसने तुम्हें पीड़ा पहुँचाई है ?"

कौशल्या कहती है—

"देवर्षि! आप बहुत दिन बाद आये हैं अतः आपको कुछ मालूम नहीं है कि यहाँ क्या-क्या घटनाएं घट चुकी हैं ?"

"मात:! मैं धातकीखंड में श्री तीर्थंकर भगवान की वंदना करने गया था उधर ही लगभग 23 वर्ष तक समय निकल गया। अकस्मात् आज मुझे अयोध्या की स्मृति हो आई कि जिससे मैं आकाशमार्ग से आ रहा हूँ।"

कुछ शांतचित्त हो अपराजिता 'सर्वभूतिहित' मुनि का आगमन, पति का दीक्षा ग्रहण, राम का वनवास, सीताहरण और लक्ष्मण पर शक्ति प्रहार के बाद विशल्या का भेजना यहाँ तक का सब समाचार सुना कर पुनः रोने लगती है और कहती है—

"हे नारद! आगे क्या हुआ ? सो मुझे कुछ भी विदित नहीं है मेरा पुत्र सुख में है या दु:ख में, कौन जाने ?..... इतना कहकर पुनः विलाप करती है—

"हे पुत्र! तू किस दशा मे है ? मुझे खबर दे। हे पतिव्रते सीते! बेटी! तेरा संकट से छुटकारा हुआ या नहीं ? तू दुष्ट रावण द्वारा कैसे हरी गई ? समुद्र के मध्य भयंकर दु:ख को कैसे झेला होगा ?"

यह सब सुनते हुए नारद उद्विग्नमना हो वीणा को एक तरफ फेंक देते हैं और मस्तक पर हाथ धर कर बैठ जाते हैं। पुनः कुछ क्षण विचार कर कहते हैं—

"हे कौशल्ये! हे शुभे! अब तुम शोक छोड़ो। मैं शीघ्र ही तुम्हारे पुत्रों का समाचार लाता हूँ। हे देवि! इतना कार्य तो मैं ही कर सकता हूँ। शेष कार्य में आपका पुत्र ही समर्थ है।"

3.2.2 श्रीराम के समाचार लाने हेतु नारद का प्रस्थान—

इतना कहकर नारद बगल में वीणा दबाकर आकाशमार्ग से उड़ गये।.....वे नारद लंका नगरी में पहुँच कर पद्म सरोवर के तट पर क्रीड़ा करते हुए अंगद के साथियों से पता लगाकर श्रीराम की सभा में पहुँचे। नमस्कार करके आसन पर बिठाकर उनका कुशल समाचार पूछने के बाद रामचन्द्र पूछते हैं—

"हे देवर्षि! इस समय आप कहाँ से आ रहे हैं ?"

"मैं दु:ख के सागर में डूबी हुई आपकी माता के पास से आपको उनका समाचार बताने के लिए आ रहा हूँ। हे देव! आपके बिना आपकी माता बालक से बिछुड़ी हुई सिंहनी के समान व्याकुल हो रही हैं। तुम जैसे सुपुत्र के रहते हुए वह पुत्रवत्सला माता रो-रो कर महल में छोटा-मोटा सरोवर बना रही हैं। ओह!.....श्रीराम! उठो, जल्दी चलो, माता के दर्शन करो, क्यों बैठे हो ?"

इतना सुनते ही रामचन्द्र विह्वल हो उठते हैं। उनकी आँखें सजल हो जाती हैं। लक्ष्मण भी रो पड़ते हैं। तब विद्याधर लोग उन्हें सान्त्वना देने लगते हैं। रामचन्द्र कहते हैं—

"अहो ऋषे! इस समय आपने हमारा बहुत बड़ा उपकार किया है। कुछ अशुभोदय से हम लोग माताओं को बिल्कुल ही भूल गये थे। अहो! आपने स्मरण दिला दिया, सो इससे प्रिय और क्या हो सकता है ? जो माता की विनय में तत्पर रहते हैं वास्तव में वे ही सत्पुत्र कहलाते हैं।"

इतना कहकर श्रीरामचन्द्र नारद की पूजा करते हैं पुनः विभीषण भामण्डल, सुग्रीव आदि को बुलाकर कहते हैं—

"हे विभीषण! इन्द्रध्वज सरीखे इस भवन में मुझे रहते हुए लगभग छह वर्ष का लम्बा समय व्यतीत हो गया। यद्यपि माता के दर्शनों की लालसा हृदय में विद्यमान थी फिर भी आज मैं उनके दर्शन करके ही शांति का अनुभव करूँगा तथा दूसरी माता के समान अयोध्या के दर्शन की भी उत्कंठा हो रही है।"

विभीषण ने समझ लिया कि अब इन्हें यहाँ रोकना शक्य नहीं है तब वे कहते हैं—

"हे नाथ! यद्यपि आपका वियोग हम लोगों को सहना ही होगा, फिर भी आप कम से कम भी सोलह दिन की अवधि मुझे और दीजिए। हे देव! मैं अभी-अभी अयोध्या के लिए दूत को भेज रहा हूँ।"

जब राम असमर्थता व्यक्त करने लगते हैं तब विभीषण अपने मस्तक को उनके चरणों में रख देते हैं और जब

राम उनकी बात मानकर 'तथास्तु' कह देते हैं तभी वे मस्तक ऊपर उठाते हैं। पुनः विभीषण, सुग्रीव आदि मंत्रणा करके माता के पास समाचार भिजवा देते हैं और अयोध्या नगरी को इतनी अच्छी सजाते हैं कि वह एक नवीन ही रूप धारण कर लेती है। रत्नों के बने हुए तोरणद्वार, पताकायें, मंगल कलश आदि से वह नगरी अनुपम शोभा को प्राप्त हो जाती है।

3.2.3 श्रीरामचन्द्र का अयोध्या में आगमन एवं परिकर मिलन-

विभीषण को लंका का राज्य सौंप कर और सुग्रीव आदि को यथायोग्य राज्य देकर श्रीराम सीता सहित पुष्पक विमान में आरूढ़ हो अयोध्या की तरफ प्रस्थान कर देते हैं। लक्ष्मण, भामंडल आदि अपने-अपने परिवार सहित अपने-अपने वाहनों पर आरूढ़ होकर चल पड़ते हैं। मार्ग में सीता को परिचित स्थानों की स्मृति दिलाते हुए रामचन्द्र अयोध्या के निकट पहुँच जाते हैं।

इधर से राजा भरत हाथी पर सवार हो भाइयों के स्वागत हेतु नगरी के बाहर आ जाते हैं। भरत को आता देख श्रीराम अपने विमान को पृथ्वी पर उतार लेते हैं उस समय भरत हाथी से उतरकर स्नेह से पूरित हो सैकड़ों अर्घ्यों से उनकी पूजा करते हैं और कर-कमल जोड़कर नमस्कार करते हैं। राम उन्हें अपनी भुजाओं में भर लेते हैं। उस समय 'भ्रातृ-मिलन' अपने आप में एक ही उदाहरण रह जाता है चूँकि उसके लिए अन्य उदाहरण और कोई भी नहीं हो सकता है।

पुनः राम लक्ष्मण और भरत को पुष्पक विमान में बिठाकर नगरी में प्रवेश करते हैं। वहाँ के लोग कृतकृत्य हो राम की आरती कर रहे हैं, पुष्पवृष्टि कर रहे हैं और जय-जयकारों की ध्वनि से पृथ्वीतल एवं आकाशमंडल को एक कर रहे हैं। सभी लोग आपस में एक-दूसरे का परिचय करा रहे हैं। ये लोग सर्वप्रथम राजभवन में पहुँचते हैं। माताएं महल की छत से उतर कर नीचे आ जाती हैं।

कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी और सुप्रभा मंगलाचार में कुशल चारों माताएं राम-लक्ष्मण के समीप आती हैं। दोनों भाई विमान से उतरकर माता के चरणों में नमस्कार करते हैं। उस समय स्नेह से पूरित उन माताओं के स्तनों से दूध झरने लगता है। वे सैकड़ों आशीर्वाद देते हुए पुत्रों का आलिंगन करती हैं। उनकी आँखों से वात्सल्य के अश्रु बरसने लगते हैं। पुत्रों के मस्तक पर हाथ फेरते हुए उन माताओं को इतना सुख का अनुभव होता है कि वह अपने आप में नहीं समाता है। सीता को हृदय से लगाकर उसे सैकड़ों आशीर्वाद देते हुए माता कौशल्या एक अनिर्वचनीय आनन्द को प्राप्त हो जाती हैं।

3.3 श्रीरामचन्द्र का वैभव एवं अयोध्या में सुख शांति-

राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न माताओं और अपनी-अपनी स्त्रियों के मन को आह्लादित करते हुए धर्मचर्चा में तत्पर हैं। बलभद्र और नारायण के प्रभाव से जो वैभव प्रगट हुआ है उसका वर्णन कौन कर सकता है ? अयोध्या नगरी में निवास करने वालों की संख्या कुछ अधिक सत्तर करोड़ है। राम की गोशाला में एक करोड़ से अधिक गायें कामधेनु के समान दूध देने वाली हैं। नंद्यावर्त नाम की उनकी सभा है और हल, मूसल, रत्न तथा सुदर्शन नाम का चक्ररत्न है। उस समय वहाँ पर जैसी सुवर्ण और रत्नों की राशि थी शायद वैसी तीन लोक में भी अन्यत्र उपलब्ध नहीं थी।

रामचन्द्र ने हजारों चैत्यालय बनवाये और बड़े-बड़े महाविद्यालयों का निर्माण कराया जिनमें भव्य जीव नित्य ही पूजा-विधान महोत्सव किया करते हैं और विद्यालयों में बालक-बालिकाएं सर्वतोमुखी शिक्षा ग्रहण कर अपना बाल्य जीवन सफल बना रहे हैं। उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि अयोध्या नगरी के सभी नर-नारी महान् पुण्य का संचय करने ही यहाँ आये हैं। किमिच्छकदान में जब किसी से कहा जाता है कि 'जो चाहो-सो ले जावो' तब वह यही कहता है कि मेरे यहाँ कोई स्थान खाली ही नहीं है। सर्वत्र सुवर्ण और रत्नों के ढेर रखे हुए हैं।

3.3.1 भरत को वैराग्य—

इतना सब कुछ होते हुए और डेढ़ सौ स्त्रियों के बीच में रहते हुए भी भरत सोच रहे हैं—

श्रीमान् बलभद्र रामचन्द्र जी भी अब घर आ चुके हैं अब मुझे जैसे भी बने वैसे आत्महित के साधन में लगना है। कैकेयी भरत को विरक्तमना देख पुनः व्याकुल हो जाती है और राम से निवेदन करती है कि आप जैसे बने वैसे इन्हें रोको। रामचन्द्र भरत से कहते हैं—

"बंधुवर! पिता ने जगत् का शासन करने के लिए आपका राज्याभिषेक किया था इसलिए हम लोगों के भी आप स्वामी हो। यह सुदर्शन चक्र, ये सब विद्याधर तुम्हारी आज्ञा में तत्पर हैं। मैं स्वयं तुम्हारे ऊपर छत्र लगाता हूँ, शत्रुघ्न चमर ढोरेगा और लक्ष्मण तेरा मंत्री रहेगा।" भरत हाथ जोड़कर कहते हैं—

"हे देव! अब आप मुझे क्यों रोक रहे हो ? मैं अब संसार के परिभ्रमण से पूर्णतया ऊब चुका हूँ। अब मुझे तपोवन में प्रवेश करने दीजिए।"

तब पुनः रामचन्द्र कहते हैं—

"यदि तुम मेरी बात नहीं मानोगे तो पुनः मैं पूर्ववत् वन में चला जाऊँगा।"

अनेक वार्तालाप के अनन्तर रामचन्द्र के नेत्र में अश्रु आ जाते हैं। भरत सिंहासन से उठ खड़े हो जाते हैं और रोती हुई माता को समझा रहे हैं कि इसी बीच राम की आज्ञा से सीता, विशल्या आदि सभी स्त्रियाँ आ जाती हैं एवं भरत को घेरकर उनसे वन क्रीड़ा के लिए अनुरोध करती हैं—

3.3.2 त्रिलोकमण्डन हाथी को जातिस्मरण—

"हे देवर! हम लोगों पर प्रसन्नता कीजिए हम लोग आप के साथ वन क्रीड़ा करना चाहती हैं।"

भरत दाक्षिण्यवश उन सबकी बात मान लेते हैं। वन में जाकर सरोवर में स्नान आदि करके कमल तोड़कर उनसे जिनेन्द्रदेव की पूजा करते हैं, पुनः हजारों भावजों और डेढ़ सौ स्त्रियों के बीच भरत सुखपूर्वक बैठे हुए हैं। इसी बीच त्रिलोकमंडन नाम का महागजराज आलान बंधन को तोड़कर महा-उपद्रव करता हुआ उसी तरफ आ जाता है। श्रीरामचन्द्र आदि उसे रोकने के लिए तत्पर हो जाते हैं किन्तु वह भरत को देखते ही एकदम शांत हो विनय से पास में बैठ जाता है। उसे तत्काल जातिस्मरण हो जाने से वह शोक से आक्रान्त हो जाता है।

भरत उस गजराज पर सवार हो सर्वपरिजन के साथ अपने महल में आते हैं। उधर सर्वत्र हाथीविषयक ही चर्चा चल पड़ती है।

राजसभा में राजा रामचन्द्र के समीप महावत आदि प्रमुख जन आकर निवेदन करते हैं—

"देव! आज चौथा दिन है, त्रिलोकमंडन हाथी ने एक ग्रास भी नहीं लिया है वह सूंड पटकता है और सूं-सूं कर रहा है। हम लोग अनुनय, विनय, सेवा, शुश्रूषा, औषधि आदि सभी उपाय करके हार चुके हैं। अब आपको निवेदन करना ही हमारा कर्तव्य शेष रहा है। अब आपको जो उचित जँचे सो कीजिए।"

हाथी का ऐसा समाचार सुनकर राम-लक्ष्मण भी चिंतित हो जाते हैं—

"अहो! क्यों तो वह बंधन तोड़कर बाहर आया ? क्यों भरत को देखकर शांत हुआ ? और क्यों पुनः भोजन पान छोड़ बैठा है ? क्या कारण है ?"

3.3.3 देशभूषण-कुलभूषण केवली का आगमन और हाथी के भव-भवांतरों का कथन—

सभा विसर्जित हो जाती है। उधर देशभूषण-कुलभूषण केवली विहार करते हुए वहाँ आ जाते हैं। देवों द्वारा निर्मित दिव्य गन्धकुटी में विराजमान भगवान का दर्शन करने के लिए सभी राजा-प्रजा वहाँ उपस्थित हो जाते हैं। श्रीराम भी दर्शन करके अपने कोठे में बैठकर हाथी के भवांतर को कहने के लिए प्रार्थना करते हैं। भगवान् की

दिव्य देशना खिरती है—

"रामचन्द्र! भगवान् ऋषभदेव के समय दीक्षित हुए चार हजार राजाओं में सूर्योदय और चन्द्रोदय नाम के दो भाई भी दीक्षित हो गये थे। वे मरीचि के शिष्य पारिव्राजक हो गये थे। असंख्य भवों तक परिभ्रमण करते हुए पुनः सूर्योदय का जीव मृदुमति मुनि हो गया। एक समय गुणनिधि मुनि की पर्वत पर देवों ने पूजा की, अनन्तर वे आकाश से विहार कर गये तब मृदुमति मुनि वहाँ चर्या के लिए आये, उन्हें देखकर श्रावकों ने कहा, "आप की देव भी पूजा करते हैं अतः आप धन्य हैं।" इतना सुनकर मृदुमति ने सोचा, "यदि मैं कहूँगा कि मैं वह मुनि नहीं हूँ, तो ये लोग ऐसी पूजा नहीं करेंगे।" अतः मौन से रहकर उसने आत्मवंचना कर ली। समाधि से मरकर ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में दिव्य सुख भोग कर उस मायाचारी के पाप से यह त्रिलोकमंडन नाम का हाथी हो गया है और चन्द्रोदय का जीव कभी चक्रवर्ती का पुत्र अभिराम हुआ। पिता के अति आग्रह से दीक्षा न ले सका अतः वह घर में ही तीन हजार स्त्रियों के बीच रहकर पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए पक्ष, महीने आदि में पारणा करता था। इस तरह चौंसठ हजार वर्ष तक उसने असिधारा व्रत का पालन किया पश्चात् समाधि से मरकर ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ दोनों देव परस्पर में परम प्रीति को प्राप्त थे। आज वह चन्द्रोदय तो भरत है और यह सूर्योदय का जीव हाथी है। भरत को देखकर इसे जातिस्मरण हो जाने से यह शोक से आक्रांत हो रहा है। इतना सुनने के बाद हाथी ने भी सम्यग्दर्शन और अणुव्रत को ग्रहण कर लिया। भरत भी हाथ जोड़कर विनय करते हैं—

"हे भगवन् ! अब मुझे संसार समुद्र से पार करने वाली जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान कीजिए।"

3.3.4 भरत, कैकेयी आदि का दीक्षा ग्रहण करना एवं श्रीराम का राज्याभिषेक—

इतना कहकर वे वस्त्राभूषणों का त्याग करके केशलोंच करके निर्ग्रन्थ दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। भरत के अनुराग से प्रेरित हो कुछ अधिक एक हजार राजा भी राज्यलक्ष्मी का परित्याग कर मुनि दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। कैकेयी को शोक से विह्वल देख राम-लक्ष्मण बहुत समझाते हैं किन्तु वह निर्मल सम्यक्त्व को ग्रहण कर तीन सौ स्त्रियों के साथ पृथ्वीमती आर्यिका के पास आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर लेती हैं।

अनन्तर राम-लक्ष्मण भरत के गुणों का स्मरण कर उद्विग्न हो उठते हैं। इसी बीच राजा लोग अमात्य सहित आकर प्रार्थना करते हैं—

"हे नाथ! हम विद्वान हों या मूर्ख। हम लोगों पर प्रसन्न होइये। हे पुरुषोत्तम! अब आप राज्याभिषेक की स्वीकृति दीजिए।"

राम कहते हैं—

"हे महानुभावों! जहाँ राजाओं का राजा लक्ष्मण मेरे चरणों का सेवक है वहाँ हमें राज्य की क्या आवश्यकता है ? अतः आप लोग उन्हीं का राज्याभिषेक करो।" इतना सुनकर लोग लक्ष्मण के पास पहुँचते हैं तब लक्ष्मण स्वयं उठकर राम के पास आते हैं और राज्याभिषेक का कार्यक्रम शुरू हो जाता है। महान वैभव के साथ अनेक राजागण सुवर्ण कलशों से राम और लक्ष्मण का बलभद्र और नारायण के पद पर महाराज्याभिषेक करते हैं, पुनः सीता देवी और विशल्या का भी राज्याभिषेक सम्पन्न होता है। सीता को आठ हजार रानियों में पट्टमहिषी का पट्ट बाँधा जाता है और विशल्या को सत्रह हजार रानियों में पट्टरानी घोषित किया जाता है। उस समय श्री रामचन्द्र विभीषण, हनुमान, सुग्रीव आदि को यथायोग्य राज्य प्रदान करते हैं और शत्रुघ्न को उसी की इच्छानुसार मथुरा का राज्य दे देते हैं।

उस रामराज्य में प्रजा स्वर्ग सुख का अनुभव कर रही है। उस नगरी में सब मिलाकर साढ़े चार करोड़ राजकुमार हैं जो अपनी कुमार क्रीड़ा से सबका मन हरण कर रहे हैं, सोलह हजार मुकुटबद्ध राजा श्रीराम और लक्ष्मण के चरणों की सेवा कर रहे हैं।

3.4 शत्रुघ्न द्वारा मथुरा नगरी के लिए प्रयाण-राजा मधुसुंदर का समाधिमरण—

एक दिन महाराजा श्री रामचन्द्र ने अपने भाई शत्रुघ्न से कहा—

"शत्रुघ्न! इस तीन खण्ड की वसुधा में तुम्हें जो देश इष्ट हो उसे स्वीकृत कर लो। क्या तुम अयोध्या का आधा भाग लेना चाहते हो ? या उत्तम पोदनपुर को ? राजगृह नगर चाहते हो या मनोहर पौंड्र नगर को ?"

इत्यादि प्रकार से श्री राम और लक्ष्मण ने सैकड़ों राजधानियाँ बताई तब शत्रुघ्न ने बहुत कुछ विचार कर मथुरा नगरी की याचना की। तब श्री राम ने कहा—

"मथुरा का राजा मधु है वह हम लोगों का शत्रु है यह बात क्या तुम्हें ज्ञात नहीं है ? वह मधु रावण का जमाई है और चमरेन्द्र ने उसे ऐसा शूलरत्न दिया हुआ है जो कि देवों के द्वारा भी दुर्निवार है, वह हजारों के भी प्राण हरकर पुनः उसके हाथ में आ जाता है। इस मधु का लवणार्णव नाम का पुत्र है वह विद्याधरों के द्वारा भी दुःसाध्य है उस शूरवीर को तुम किस तरह जीत सकोगे ?"

बहुत कुछ समझाने के बाद भी शत्रुघ्न ने यही कहा कि—

"इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ ? आप तो मुझे मथुरा दे दीजिए। यदि मैं उस मधु को मधु के छत्ते के समान तोड़कर नहीं फेंक दूँ तो मैं राजा दशरथ के पुत्र होने का ही गर्व छोड़ दूँ। हे भाई! आपके आशीर्वाद से मैं उसे दीर्घ निद्रा में सुला दूँगा।"

अनन्तर श्री राम के द्वारा मथुरा नगरी को प्राप्त करने की स्वीकृति मिल जाने पर शत्रुघ्न वहाँ जाने के लिए तैयार हुए तब श्री रामचन्द्र ने शत्रुघ्न को एकांत में ले जाकर कहा—

"हे धीर! मैं तुमसे कुछ याचना करता हूँ तुम मुझे एक दक्षिणा दो।"

शत्रुघ्न ने कहा—"आप असाधारण दाता हैं फिर भी मुझसे कुछ मांग रहे हैं इससे बढ़कर मेरे लिए और क्या प्रशंसनीय होगा ? आप मेरे प्राणों के भी स्वामी हैं, एक युद्ध के विघ्न को छोड़कर आप कहिए मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?"

तब श्रीराम ने कुछ चिंतन करके कहा—

"हे वत्स! जब मधु शूलरत्न से रहित हो तभी तुम अवसर पाकर उससे युद्ध करना अन्य समय में नहीं.....।"

तब शत्रुघ्न ने कहा—"जैसी आपकी आज्ञा है ऐसा ही होगा।"

इसके बाद शत्रुघ्न ने जिनमंदिर में जाकर सिद्ध परमेष्ठियों की पूजा करके घर जाकर भोजन किया पुनः माता के पास पहुँचकर प्रणाम करके मथुरा की ओर प्रस्थान के लिए आज्ञा माँगी। माता सुप्रभा ने पुत्र के मस्तक पर हाथ फेरकर उसे अपने अर्धासन पर बिठाकर प्यार से कहा—

"हे पुत्र! तू शत्रुओं को जीतकर अपना मनोरथ सिद्ध कर। हे वीर! तुझे युद्ध में शत्रु को पीठ नहीं दिखाना है। हे वत्स! जब तू युद्ध में विजयी होकर आयेगा तब मैं सुवर्ण के कमलों से जिनेन्द्रदेव की परम पूजा करूँगी।"

इसके बाद अनेक मंगल कामना के साथ माता ने शत्रुघ्न को अनेक शुभ आशीर्वाद प्रदान किये ।

करस्थामलकं यद्वल्लोकालोकं स्वतेजसा।
पश्यंतं केवलालोका भवंतु तव मंगलम्।।1।।
कर्मणाष्टप्रकारेण मुक्तास्त्रैलोक्यमूर्द्धगाः।
सिद्धाः सिद्धिकरा वत्स! भवन्तु तव मंगलम् ।।2।।
कमलादित्यचंद्रक्षमामन्दराब्धिवियत् समाः।
आचार्याः परमाधारा भवन्तु तव मंगलम् ।।3।।

परात्मशासनाभिज्ञाः कृतानुगतशासनाः।
सदायुष्मनुपाध्यायाः कुर्वन्तु तव मंगलम् ।।4।।
तपसा द्वादशांगेन निर्वाणं साधयन्ति ये।
भद्र! ते साधवः शूरा भवन्तु तव मंगलम् ।।5।।

जो अपने तेज से समस्त लोक-अलोक को हाथ पर रखे हुए आंवले के समान देख रहे हैं ऐसे केवलज्ञानी अर्हन्त भगवान् तुम्हारे लिए मंगल स्वरूप होवें। जो आठ प्रकार के कर्मों से रहित होकर त्रिलोक शिखर पर विराजमान हैं, सिद्धि को करने वाले ऐसे सिद्ध भगवान् हे वत्स! तुम्हारे लिए मंगलस्वरूप होवें। जो कमल के समान् निर्लिप्त, सूर्य के समान तेजस्वी, चन्द्रमा के समान शांतिदायक, पृथ्वी के समान निश्चल, सुमेरु के समान उन्नत, समुद्र के समान गंभीर और आकाश के समान निःसंग हैं तथा परम आधार स्वरूप हैं ऐसे आचार्य परमेष्ठी तुम्हारे लिए मंगल रूप होवें। जो स्व-पर के शासन के जानने वाले हैं जो अपने अनुगामी जनों को सदा धर्मोपदेश देते हैं। ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी हे आयुष्मन्! तुम्हारे लिए मंगल स्वरूप होवें। जो बारह तप के द्वारा मोक्ष की सिद्धि करते हैं ऐसे शूरवीर साधु परमेष्ठी हे भद्र! तुम्हारे लिए मंगल स्वरूप होवें।"

इस प्रकार से विघ्नों के नाशक दिव्य स्वरूप ऐसे आशीर्वाद को प्राप्त कर माता को प्रणाम कर शत्रुघ्न घर से बाहर निकले। सुवर्णमयी मालाओं से युक्त हाथी पर सवार होकर मथुरा की ओर प्रस्थान कर दिया। उस समय भ्रातृ प्रेम से प्रेरित हुए श्री राम और लक्ष्मण भी शत्रुघ्न के साथ-साथ तीन पड़ाव तक गये थे। अनन्तर सैकड़ों राजाओं से घिरे हुए थे। इस समय लक्ष्मण नारायण ने अपना सागरावर्त धनुषरत्न और अग्निमुख नाम के अनेक बाण उसे दे दिये। श्री राम ने अपने सेनापति कृतांतवक्त्र को ही उनका सेनापति बना दिया था।

बहुत बड़ी सेना के साथ शत्रुघ्न ने क्रम-क्रम से पुण्यभागा नदी को पार कर आगे पहुँचकर अपनी सेना ठहरा दी और गुप्तचरों को मथुरा भेज दिया। उन लोगों ने आकर समाचार दिया—

"देव! सुनिए, यहाँ से उत्तर दिशा में मथुरा नगरी है वहाँ नगर के बाहर एक सुन्दर राजउद्यान है। इस समय राजा मधुसुन्दर अपनी जयंत रानी के साथ वहीं निवास कर रहा है। कामदेव के वशीभूत हुए और सब काम को छोड़कर रहते हुए आज छठा दिन है। तुम्हारे आगमन का उसे अभी तक कोई पता नहीं है।"

गुप्तचरों के द्वारा सर्व समाचार विदित कर शत्रुघ्न ने यही अवसर अनुकूल समझकर साथ में एक लाख घुड़सवारों को लेकर वह मथुरा की ओर बढ़ गया। अर्धरात्रि के बाद शत्रुघ्न ने मथुरा के द्वार में प्रवेश किया। इधर शत्रुघ्न के बंदीगणों ने—

"राजा दशरथ के पुत्र शत्रुघ्न की जय हो।" ऐसी जयध्वनि से आकाश को गुंजायमान कर दिया था। तब मथुरा के अन्दर किसी शत्रुराजा का प्रवेश हो गया है ऐसा जानकर शूरवीर योद्धा जग पड़े। इधर शत्रुघ्न ने मधु के राजमहल में प्रवेश किया और मधु की आयुधशाला पर अपना अधिकार जमा लिया।

3.4.1 शत्रुघ्न का मथुरा में प्रवेश एवं राजा मधु से युद्ध—

शत्रुघ्न को मथुरा में प्रविष्ट जानकर महाबलवान् राजा मधुसुन्दर रावण के समान क्रोध को करता हुआ उद्यान से बाहर निकला किन्तु शत्रुघ्न से सुरक्षित मथुरा के अन्दर व अपने महल में प्रवेश करने में असमर्थ ही रहा तब वह अपने शूलरत्न को प्राप्त नहीं कर सका फिर भी उसने शत्रुघ्न से सन्धि नहीं की प्रत्युत् युद्ध के लिए तैयार हो गया।

वहाँ दोनों की सेनाओं में घमासान युद्ध शुरू हो गया। इधर मधुसुन्दर के पुत्र लवणार्णव के साथ कृतांतवक्त्र सेनापति का युद्ध चल रहा था। बहुत ही प्रकार से गदा, खड्ग आदि से एक-दूसरे पर प्रहार करते हुए अन्त में कृतांतवक्त्र के द्वारा शक्ति नामक शस्त्र के प्रहार से वह लवणार्णव मृत्यु को प्राप्त हो गया। पुनः राजा मधु और शत्रुघ्न का बहुत देर तक युद्ध चलता रहा।

बाद में मधु ने अपने को शूलरत्न से रहित जानकर तथा पुत्र के महाशोक से अत्यंत पीड़ित होता हुआ शत्रु की दुर्जेय स्थिति समझकर मन में चिंतन करने लगा—

"अहो! मैंने दुर्दैव से पहले अपने हित का मार्ग नहीं सोचा, यह राज्य, यह जीवन पानी के बुलबुले के समान क्षणभंगुर है। मैं मोह के द्वारा ठगा गया हूँ। पुनर्जन्म अवश्य होगा ऐसा जानकर भी मुझ पापी ने समय रहते हुए कुछ नहीं सोचा। अहो! जब मैं स्वाधीन था तब मुझे सद्बुद्धि क्यों नहीं उत्पन्न हुई ? अब मैं शत्रु के सन्मुख क्या कर सकता हूँ ? अरे! जब भवन में आग लग जावे तब कुंआ खुदवाने से भला क्या होगा..... ?"

3.4.2 राजा मधु को वैराग्य, केशलोंच एवं समाधिमरण—

ऐसा चिंतवन करते हुए राजा मधु एकदम संसार, शरीर और भोगों से विरक्त हो गया। तत्क्षण ही उसने अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पाँचों परमेष्ठियों को नमस्कार करके चारों मंगल, लोकोत्तम और शरणभूत की शरण लेता हुआ अपने दुष्कृतों की आलोचना करके सर्व सावद्य योग—सर्व आरंभ-परिग्रह का भावों से ही त्याग करके यथार्थ समाधिमरण करने में उद्यमशील हो गया। उसने सोचा—

"अहो! ज्ञान-दर्शन स्वरूप एक आत्मा ही मेरा है वही मुझे शरण है। न तृण सांथरा है न भूमि, बल्कि अंतरंग-बहिरंग परिग्रह को मन से छोड़ देना ही मेरा संस्तर है।.....।"

ऐसा विचार करते हुए उस घायल स्थिति में ही शरीर से निर्मम होते हुए राजा मधुसुन्दर ने हाथी पर बैठे-बैठे ही केशलोंच करना शुरू कर दिया।

युद्ध की इस भीषण स्थिति में भी अपने हाथों से अपने सिर के बालों का लोच करते हुए देखकर शत्रुघ्न कुमार ने आगे आकर उन्हें नमस्कार किया और बोले—

"हे साधो! मुझे क्षमा कीजिए.....। आप धन्य हैं कि जो इस रणभूमि में भी सर्वारंभ-परिग्रह का त्याग कर जैनेश्वरी दीक्षा के सन्मुख हुए हैं।"

उस समय जो देवांगनाएं आकाश में स्थित हो युद्ध देख रही थीं उन्होंने महामना मधु के ऊपर पुष्पों की वर्षा की। इधर राजा मधु ने परिणामों की विशुद्धि से समता भाव धारण करते हुए प्राण छोड़े और समाधिमरण—वीरमरण के प्रभाव से तत्क्षण ही सानत्कुमार नाम के तीसरे स्वर्ग में उत्तम देव हो गये।

इधर वीर शत्रुघ्न भी संतुष्ट हुआ और युद्ध को विराम देकर सभी प्रजा को अभयदान देते हुए मथुरा में आकर रहने लगा।

3.5 मथुरानगरी में महामारी प्रकोप, सप्तर्षि के चातुर्मास से कष्ट निवारण—

राजा मधुसुन्दर का वह दिव्य शूलरत्न यद्यपि अमोघ था फिर भी शत्रुघ्न के पास वह निष्फल हो गया, उसका तेज छूट गया और वह अपनी विधि से च्युत हो गया। तब वह (उसका अधिष्ठाता देव) खेद, शोक और लज्जा को धारण करता हुआ अपने स्वामी असुरों के अधिपति चमरेन्द्र के पास गया। शूलरत्न के द्वारा मधु के मरण का समाचार सुनकर चमरेन्द्र को बहुत ही दुःख हुआ। वह बार-बार मधु के सौहार्द का स्मरण करने लगा। तदनंतर वह पाताललोक से निकलकर मथुरा जाने को उद्यत हुआ। तभी गरुड़कुमार देवों के स्वामी वेणुधारी इन्द्र ने इसे रोकने का प्रयास किया किन्तु यह नहीं माना और मथुरा में पहुँच गया।

वहाँ चरमेन्द्र ने देखा कि मथुरा की प्रजा शत्रुघ्न के आदेश से बहुत बड़ा उत्सव मना रही है तब वह विचार करने लगा—

"ये मथुरा के लोग कितने कृतघ्न हैं कि जो दुःख-शोक के अवसर पर भी हर्ष मना रहे हैं। जिसने हमारे स्नेही राजा मधु को मारा है मैं उसके निवास स्वरूप इस समस्त देश को नष्ट कर दूँगा।"

इत्यादि प्रकार से क्रोध से प्रेरित हो उस चमरेन्द्र ने मथुरा के लोगों पर दुःसह उपसर्ग करना प्रारंभ कर दिया। जो जिस स्थान पर सोये थे बैठे थे वे महारोग (महामारी) के प्रकोप से दीर्घ निद्रा को प्राप्त हो गये—मरने लगे।

इस महामारी उपसर्ग को देखकर कुलदेवता की प्रेरणा से राजा शत्रुघ्न अपनी सेना के साथ अयोध्या वापस आ गये।

3.5.1 विजयी शत्रुघ्न का अयोध्या में अभिनंदन—

विजय को प्राप्त कर आते हुए शूरवीर शत्रुघ्न का श्रीराम-लक्ष्मण ने हर्षित हो अभिनंदन किया। माता सुप्रभा ने भी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सुवर्ण के कमलों से जिनेन्द्रदेव की महती पूजा सम्पन्न करके धर्मात्माओं को दान दिया। पुनः दीन-दुःखी जनों को करुणादान देकर सुखी किया। यद्यपि वह अयोध्या नगरी सुवर्ण के महलों से सहित थी फिर भी पूर्वभवों के संस्कारवश शत्रुघ्न का मन मथुरा में ही लगा हुआ था।

3.5.2 मथुरा नगरी में सप्तऋषि आगमन एवं महामारी का नष्ट होना—

इधर मथुरा नगरी के उद्यान में गगनगामी ऋद्धिधारी सात दिगम्बर महामुनियों ने वर्षायोग धारण कर लिया—चातुर्मास स्थापित कर लिया। इनके नाम थे-सुरमन्यु, श्रीमन्यु, श्रीनिचय, सर्वसुन्दर, जयवान, विनयलालस और जयमित्र।

प्रभापुर नगर के राजा श्रीनंदन की धारिणी रानी के ये सातों पुत्र थे। प्रीतिंकर मुनिराज को केवलज्ञान प्राप्त हो जाने पर देवों को जाते हुए देखकर प्रतिबोध को प्राप्त हुए थे। उस समय राजा श्रीनंदन ने अपने एक माह के पुत्र को राज्य देकर अपने सातों पुत्रों के साथ प्रीतिंकर भगवान के समीप दीक्षा ग्रहण कर ली थी। समय पाकर श्रीनंदन ने केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त कर लिया था और ये सातों मुनि तपस्या के प्रभाव से अनेक ऋद्धियों को प्राप्त कर सातऋषि (सप्तर्षि) के नाम से प्रसिद्ध हो रहे थे।

उद्यान में वटवृक्ष के नीचे ये सातों मुनि चातुर्मास में स्थित हो गये थे। इन मुनियों के तपश्चरण के प्रभाव से उस समय मथुरा में चमरेन्द्र के द्वारा फैलायी गयी महामारी एकदम नष्ट हो गई थी। वहाँ नगरी में चारों तरफ के वृक्ष फलों के भार से लद गये थे और खेती भी खूब अच्छी हो रही थी। ये मुनिराज रस-परित्याग, बेला, तेला आदि तपश्चरण करते हुए महातप कर रहे थे। कभी-कभी ये आहार के समय आकाश को लांघकर निमिषमात्र में विजयपुर, पोदनपुर आदि दूर-दूर नगरों में जाकर आहार ग्रहण करते थे। वे महामुनिराज परगृह में अपने करपात्र में केवल शरीर की स्थिति के लिए आहार लेते थे।

3.5.3 सप्त ऋषियों का अयोध्या में आगमन—

एक दिन ये सातों ही महाऋषिराज जूड़ाप्रमाण (चार हाथ प्रमाण) भूमि को देखते हुए अयोध्या नगरी में प्रविष्ट हुए। वे विधिपूर्वक भ्रमण करते हुए अर्हद्दत्त सेठ के घर के दरवाजे पर पहुँचे। उन मुनियों को देखकर अर्हद्दत्त सेठ विचार करने लगा—

"यह वर्षाकाल कहाँ ? और इन मुनियों की यह चर्या कहाँ ? इस नगरी के आस-पास पर्वत की कंदराओं में, नदी के तट पर, वृक्ष के नीचे, शून्य घर में, जिनमंदिर में तथा अन्य स्थानों में जहाँ कहीं जो भी मुनिराज स्थित हैं वे सब वर्षायोग पूरा किये बिना इधर-उधर नहीं जाते हैं परन्तु ये मुनि आगम के विपरीत चर्या वाले हैं, ज्ञान से रहित और आचार्यों से रहित हैं इसलिए ये इस समय यहाँ आ गये हैं। यद्यपि ये मुनि असमय में आये थे फिर भी अर्हद्दत्त के अभिप्राय को समझने वाली वधू ने उनका पड़गाहन करके उन्हें आहारदान दिया।

आहार के बाद ये सातों मुनि तीन लोक को आनंदित करने वाले ऐसे जिनमंदिर में पहुँचे जहाँ भगवान् मुनिसुव्रतनाथ की प्रतिमा विराजमान थी और शुद्ध निर्दोष प्रवृत्ति करने वाले दिगम्बर साधुगण भी विराजमान थे।

ये सातों मुनिराज पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर चल रहे थे। ऐसे इन मुनियों को वहाँ पर स्थित द्युति भट्टारक—द्युति नाम के आचार्य देव ने देखा। इन मुनियों ने उत्तम श्रद्धा से पैदल चलकर ही जिनमंदिर में प्रवेश किया तब द्युति भट्टारक ने खड़े

होकर नमस्कार कर विधि से उनकी पूजा की।

"यह हमारे आचार्य चाहे जिसकी वंदना करने के लिए उद्यत हो जाते हैं।"

ऐसा सोचकर उन द्युति आचार्य के शिष्यों ने उन सप्तर्षियों की निंदा का विचार किया। तदनंतर सम्यक् प्रकार से स्तुति करने में तत्पर वे सप्तर्षि मुनिराज जिनेन्द्र भगवान् की वंदना कर आकाशमार्ग से पुनः अपने स्थान पर चले गये। जब वे आकाश में उड़े तब उन्हें चारण ऋद्धि के धारक जानकर द्युति आचार्य के शिष्य जो अन्य मुनि थे उन्होंने अपनी निंदा गर्हा आदि करके प्रायश्चित कर अपनी कलुषता दूर कर अपना हृदय निर्मल कर लिया।

इसी बीच में अर्हद्दत्त सेठ जिनमंदिर में आया तब द्युति आचार्य ने कहा—

"हे भद्र! आज तुमने ऋद्धिधारी महान् मुनियों के दर्शन किये होंगे। वे सर्वजग वंदित महातपस्वी मुनि मथुरा में निवास करते हैं आज मैंने उनके साथ वार्तालाप किया है। उन आकाशगामी ऋषियों के दर्शन से आज तुमने भी अपना जीवन धन्य किया होगा।"

इन आचार्यदेव के मुख से उन साधुओं की प्रशंसा सुनते ही सेठ अर्हद्दत्त खेदखिन्न होकर पश्चात्ताप करने लगा—

"ओह! यथार्थ को नहीं समझने वाले मुझ मिथ्यादृष्टि को धिक्कार हो, मेरा आचरण अनुचित था, मेरे समान दूसरा अधार्मिक भला और कौन होगा? इस समय मुझसे बढ़कर दूसरा मिथ्यादृष्टि अन्य कौन होगा? हाय! मैंने उठकर मुनियों की पूजा नहीं की तथा नवधाभक्ति से उन्हें आहार भी नहीं दिया।

साधुरूपं समालोक्य न मुंचत्यासनं तु यः।
दृष्ट्वाऽपमन्यते यश्च स मिथ्यादृष्टिरुच्यते।।

दिगम्बर मुनियों को देखकर जो अपना आसन नहीं छोड़ता है—उठकर खड़ा नहीं होता है तथा देखकर भी उनका अपमान करता है वह मिथ्यादृष्टि कहलाता है।

मैं पापी हूँ, पाप कर्मा हूँ, पापात्मा हूँ, पाप का पात्र हूँ अथवा जिनागम की श्रद्धा से दूर निंद्यतम हूँ। जब तक मैं हाथ जोड़कर उन मुनियों की वंदना नहीं कर लूँगा तब तक मेरा शरीर एवं हृदय झुलसता ही रहेगा। अहंकार से उत्पन्न हुए इस पाप का प्रायश्चित्त उन मुनियों की वंदना के सिवाय और कुछ भी नहीं हो सकता है।"

(इस कथा से यह स्पष्ट हो जाता है कि आकाशगामी मुनि चातुर्मास में भी अन्यत्र जाकर आहार ग्रहण करके आ जाते थे।)

3.6 शत्रुघ्न के लिए महामुनि का उपदेश—

इधर इस मथुरा नगरी में इन मुनियों के चातुर्मास करने से चमरेन्द्र द्वारा किये गये सारे उपद्रव-महामारी आदि नष्ट हो गये थे। नगर में पुनः पूर्ण शांति का वातावरण हो गया था।

इधर अयोध्या से अर्हदत्त सेठ महान वैभव के साथ कार्तिक शुक्ला सप्तमी के दिन उन ऋषियों की वंदना करने के लिए पहुँच गये थे। राजा शत्रुघ्न भी इन मुनियों का उपदेश श्रवणकर भक्ति से प्रेरित हुए मथुरा के उद्यान में आ गये थे और उनकी माता सुप्रभा भी विशाल वैभव और धन आदि को लेकर इन मुनियों की पूजा करने के लिए आ गई। उन सम्यग्दृष्टि महापुरुषों ने और सुप्रभा आदि रानियों ने मुनिराज की महान पूजा की। उस समय वहाँ वह उद्यान और मुनियों के आश्रम का स्थान प्याऊ, नाटकशाला, संगीतशाला आदि से सुशोभित हुआ स्वर्गप्रदेश के समान मनोहर हो गया था।

अनन्तर भक्ति एवं हर्ष से भरे हुए शत्रुघ्न ने वर्षायोग को समाप्त करने वाले उन मुनियों को पुनः-पुनः नमस्कार करके उनसे आहार ग्रहण करने के लिए प्रार्थना की तब इन सातों में जो प्रमुख थे, वे "सुरमन्यु" महामुनि बोले—

"हे नरश्रेष्ठ! जो आहार मुनियों के लिए संकल्प कर बनाया जाता है दिगम्बर मुनिराज उसे ग्रहण नहीं करते हैं। जो आहार न स्वयं किया गया है न कराया गया है और जिसमें न बनाते हुए को अनुमति दी गई है ऐसे नवकोटि विशुद्ध आहार को ही साधुगण ग्रहण करते हैं।"

पुनः शत्रुघ्न ने निवेदन किया—

"हे भगवन् ! आप भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने वाले हैं। आप अभी कुछ दिन और यहीं मथुरा में ठहरिये। आपके प्रभाव से ही यहाँ महामारी की शांति हुई है....।"

पुनः शत्रुघ्न चिंता करने लगा—

"ऐसे महामुनियों को विधिवत् आहार दान देकर मैं कब संतुष्ट होऊँगा ?" शत्रुघ्न को नतमस्तक देखकर उन मुनिराज ने पुनः आगे आने वाले काल का वर्णन करते हुए उपदेश दिया—

"हे राजन् ! जब अनुक्रम से तीर्थंकरों का काल व्यतीत हो जायेगा—पंचम काल आ जाएगा तब यहाँ धर्म कर्म से रहित अत्यन्त भयंकर समय आ जाएगा। दुष्ट पाखण्डी लोगों द्वारा यह परम पावन जैन शासन उस तरह तिरोहित हो जायेगा कि जिस तरह धूलि के छोटे-छोटे कणों द्वारा सूर्य का बिम्ब ढक जाता है। यह संसार चोरों के समान कुकर्मी, क्रूर, दुष्ट, पाखण्डी लोगों से व्याप्त होगा। पुत्र, माता-पिता के प्रति और माता-पिता पुत्रों के प्रति स्नेह रहित होंगे। उस कलिकाल में राजा लोग चोरों के समान धन के अपहर्ता होंगे। कितने ही मनुष्य यद्यपि सुखी होंगे फिर भी उनके मन में पाप होगा, वे दुर्गति में ले जाने वाली ऐसी विकथाओं से एक-दूसरे को गोहित करते हुए प्रवृत्ति करेंगे।

हे शत्रुघ्न! कषायबहुल समय के आने पर देवागमन आदि समस्त अतिशय नष्ट हो जायेंगे। तीव्र मिथ्यात्व से युक्त मनुष्य व्रतरूप गुणों से सहित एवं दिगम्बर मुद्रा के धारक मुनियों को देखकर ग्लानि करेंगे। अप्रशस्त को प्रशस्त मानते हुए कितने ही दुर्बुद्धि लोग भय पक्ष में उस तरह जा पड़ेंगे जिस तरह के पतंगे अग्नि में जा पड़ते हैं। कितने ही मूढ़ मनुष्य हंसी करते हुए शान्तचित्त मुनियों को तिरस्कृत करके मूढ़ मनुष्यों को आहार देवेंगे। जिस प्रकार शिलातल पर रखा हुआ बीज यद्यपि सदा सींचा जाय तो भी उसमें फल नहीं लग सकता है वैसे ही शील रहित मनुष्यों के लिए दिया हुआ दान भी निरर्थक होता है। 'जो गृहस्थ मुनियों की अवज्ञा कर गृहस्थ के लिए आहार देते हैं वे मूर्ख चंदन को छोड़कर बहेड़ा ग्रहण करते हैं।

हे शत्रुघ्न! इस प्रकार दुषमता के कारण निकृष्ट काल को आने वाला जानकर तुम आत्मा के लिए हितकर शुभ और स्थायी ऐसा कार्य करो। तुम नामी पुरुष हो अतः निर्ग्रन्थ मुनियों को आहार देने का निश्चय करो यही तुम्हारी धन-संपदा का सार है। हे राजन् ! आगे आने वाले काल में थके हुए मुनियों के लिए आहार देना अपने गृहदान के समान एक बड़ा भारी आश्रय होगा इसलिए हे वत्स! तुम ये दान देकर इस समय गृहस्थ के शीलव्रत का नियम धारण करो और जीवन को सार्थक बनाओ। मथुरा के समस्त लोग समीचीन धर्म को धारण करें। दया और वात्सल्य भाव से सम्पन्न तथा जिनशासन की भावना से युक्त होवें। घर-घर में जिनप्रतिमाएं स्थापित की जावें, उनकी पूजाएं हों, अभिषेक हों और विधिपूर्वक प्रजा का पालन किया जाये।

हे शत्रुघ्न! इस नगरी की चारों दिशाओं में सप्तर्षियों की प्रतिमाएं स्थापित करो, उसी से सब प्रकार की शांति होगी। आज से लेकर जिस घर में जिनप्रतिमा नहीं होगी उस घर को मारी उसी तरह खा जायेगी कि जिस तरह व्याघ्री अनाथ मृग को खा जाती है। जिसके घर में अंगूठा प्रमाण भी जिनप्रतिमा होगी उसके घर में गरुड़ से डरी हुई सर्पिणी के समान मारी का प्रवेश नहीं होगा।"

महामुनि के इस उपदेश को सुनकर हर्ष से युक्त हो राजा शत्रुघ्न ने कहा—

"आपने जैसी आज्ञा दी है वैसा ही हम लोग करेंगे" इत्यादि। इसके बाद वे महामना सातों मुनि आकाश में उड़कर विहार कर गये। वे सप्तर्षि निर्वाण क्षेत्रों की वंदना करके अयोध्या में सीता के घर उतरे। अत्यधिक हर्ष को धारण करने वाली एवं श्रद्धा आदि गुणों से सुशोभित सीता ने उन्हें विधिपूर्वक उत्तम आहार दिया। जानकी के नवधाभक्ति से दिये गये सर्वगुणसम्पन्न आहार को ग्रहण कर उसे शुभाशीर्वाद देकर वे मुनि आकाश मार्ग से चले गये।

अनन्तर शत्रुघ्न ने नगर के भीतर और बाहर सर्वत्र जिनेंद्र भगवान की प्रतिमाएं विराजमान करायीं तथा ईतियों को दूर

करने वाली सप्तर्षियों की प्रतिमाएं भी चारों दिशाओं में विराजमान करायीं। उस समय वहाँ पर सर्वप्रकार से सुभिक्ष, क्षेम और शांति का साम्राज्य हो गया। तब राजा शत्रुघ्न निर्विघ्नरूप से राज्य का संचालन करते हुए और प्रजा का पुत्रवत् पालन करते हुए सुखपूर्वक मथुरा नगरी में रहने लगे।

3.7 सीता निर्वासन-पुत्र मिलन—

श्रीरामचन्द्र अपने सिंहासन पर विराजमान हैं। सखियों सहित सीता वहाँ आकर विनयपूर्वक नमस्कार कर यथोचित आसन पर बैठ जाती हैं पुनः निवेदन करती हैं—

"हे नाथ! रात्रि के पिछले प्रहर में आज मैंने दो स्वप्न देखे हैं सो उनका फल आपके श्रीमुख से सुनना चाहती हूँ।"

"कहिए प्रिये! वो स्वप्न कौन-कौन से हैं ?" ऐसा राम पूछते हैं।

"प्रथम ही मैंने दो अष्टापद अपने मुख में प्रविष्ट होते देखे हैं। हे नाथ! पुनः मैंने देखा है कि मैं पुष्पक विमान के शिखर से नीचे गिर पड़ी हूँ।"

तब राम कहते हैं—

"हे प्रिये! अष्टापद युगल को देखने से तुम शीघ्र ही युगल पुत्र को प्राप्त करोगी.....।" पुनः राम किंचित् विराम लेते हैं कि सीता संदिग्ध हो पूछती हैं—

"स्वामिन् ! द्वितीय स्वप्न का फल.....।"

"सुन्दरि! यद्यपि पुष्पक विमान से गिरना अच्छा नहीं है फिर भी चिंता की बात नहीं है क्योंकि शांति कर्म तथा दान करने से पाप ग्रह शांति को प्राप्त हो जाते हैं।"

सीता हर्ष एवं विषाद को धारण करती हुई वहाँ से आ जाती हैं और धर्मकार्य में तत्पर हो जाती हैं।

इधर बसंत ऋतु सर्वत्र अपना प्रभाव फैला रही है। कुछ समय बाद सीता को गर्भ के भार से भ्रांत देख रामचन्द्र पूछते हैं—

"हे कांते! तुम्हें क्या अच्छा लगता है ? सो कहो मैं अभी तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा। तुम ऐसी म्लानमुख क्यों हो रही हो ?"

सीता कहती है—

"हे नाथ! मैं पृथ्वीतल पर स्थित अनेक चैत्यालयों के दर्शन करना चाहती हूँ। पंच वर्णमय रत्नों की प्रतिमाओं की वंदना करके रत्न और सुवर्णमयी पुष्पों से उनकी पूजा करना चाहती हूँ। हे देव! इसके सिवाय और मेरी कुछ भी इच्छा नहीं है।"

इतना सुनते ही रामचन्द्र हर्षितमना द्वारपालिनी को आदेश दे देते हैं—

"हे कल्याणि! अविलम्ब ही अयोध्या के जिन मंदिरों को एवं निर्वाण क्षेत्रों के जिन मंदिरों को नाना उपकरणों से विभूषित करो और उत्तम पूजन सामग्री तैयार कराओ।"

पुनः श्रीराम सीता के साथ उत्तम हाथी पर सवार हो समस्त परिजनों को साथ लेकर बड़े वैभव के साथ उद्यान में जाते हैं। वहाँ पर सरोवर में चिरकाल तक क्रीड़ा कर अपने हाथों से सुन्दर फूल तोड़कर और दिव्य सामग्री लेकर सीता के साथ मिलकर जिनेन्द्रदेव के बिम्बों की महापूजा करते हैं। आठ हजार रानियों से घिरे राम सर्वत्र पुण्य तीर्थों की वंदना कराते हुए और सीता के साथ जिन पूजा को करते हुए सीता का दोहला पूर्ण करते हैं।

कुछ दिन बाद सीता की दाईं आँख फड़कने से वह चिंतातुर हो उठती हैं। तब गुणमाला आदि रानियाँ उसे शांति विधान आदि कार्यों के लिए प्रेरणा देती हैं। सीता कोषाध्यक्ष को बुलाकर कहती हैं—

"हे भद्र! आज से प्रत्येक जिनालय में महामहिम पूजन शुरू करा दो और किमिच्छक दान देना प्रारंभ कर दो।"

"जो आज्ञा महारानी जी" ऐसा कहकर वह भद्रकलश कोषाध्यक्ष दूध, दही आदि से श्री जिनदेव का महाभिषेक

प्रारंभ करा देता है और दान देना भी शुरू कर देता है।

इधर सीता दान आदि क्रियाओं में आसक्त हैं। उधर द्वारपाल से आज्ञा लेकर अयोध्या के कुछ प्रमुख लोग राज-दरबार में आते हैं। यद्यपि ये लोग रामचन्द्र के तेज के सामने कुछ भी कहने में असमर्थ हो जाते हैं फिर भी बार-बार राम द्वारा सान्त्वना दी जाने पर जैसे-तैसे एक विजय नामक मुखिया हाथ जोड़कर निवेदन करता है—

3.7.1 प्रजा द्वारा सीता के शील पर प्रश्नचिन्ह लगाना—

"हे नाथ! हे पुरुषोत्तम! मेरी कहने की इच्छा व शक्ति न होते हुए भी मैं लाचार हो निवेदन कर रहा हूँ। हे राम! इस समय समस्त प्रजा मर्यादा से रहित हो रही है। तरुण पुरुष किसी की स्त्री का हरण कर लेते हैं पुनः उसके पति उसे वापस लाकर घर में रख लेते हैं और आपका उदाहरण सामने रखते हैं। स्वामिन् ! जिधर देखो उधर एक ही चर्चा सुनने में आती है कि सर्वशास्त्रज्ञ महाविद्वान् महाराजा श्री रामचन्द्र रावण के द्वारा हरी गई सीता को वापस कैसे ले आये ? हे देव! यदि आपके राज्य में यह एक दोष न होता तो यह राज्य इन्द्र के साम्राज्य को भी निलंबित कर देता।"

इतना सुनते ही राम अवाक् रह जाते हैं—

'ओह! यह दारुण संकट कैसा ?....."

रामचन्द्र प्रजा को सान्त्वना देकर विदा करते हैं और आप स्वयं लक्ष्मण आदि प्रधान पुरुषों को बुला लेते हैं और कहते हैं—

"भाई! सीता के प्रति जनता अपवाद की चर्चा कर रही है। ओह!.....एक ओर लोकनिंदा और दूसरी ओर निकाचित स्नेह । भाई! मैं इस समय गहरे संकट में आ फंसा हूँ।"

लक्ष्मण इतना सुनते ही क्रोध से तमतमा उठते हैं—

"अरे! महासती सीता के बारे में कौन अपनी जिह्वा खोल सकता है ? मैं उसकी जिह्वा के सौ-सौ टुकड़े कर दूँगा। सीता के प्रति द्वेष करने वालों को मैं आज ही यमराज के मुख में पहुँचा दूँगा।"

रामचन्द्र कहते हैं—

"हे सौम्य! शांत होओ और मेरी बात सुनो! मैं सीता के स्नेह में अपने उज्ज्वल रघुवंश को मलिन नहीं कर सकता हूँ अतः सीता का त्याग करना ही श्रेयस्कर है।"

"हे राम! लोकापवाद के भय से आप पवित्र शीलशिरोमणि सीता को न छोड़िये।"

"लक्ष्मण! मैंने जो निर्णय ले लिया वही होगा।"

"भाई! आप यह क्या कह रहे हो ?"

3.7.2 श्रीराम का सीता को वन में छोड़ने का आदेश—

इसी बीच राम कृतांतवक्त्र सेनापति को बुलाकर आदेश दे देते हैं—

"सेनापते! तुम शीघ्र ही निर्वाण क्षेत्र की वंदना के बहाने सीता को कहीं घोर महाअटवी में छोड़कर आ जाओ।"

'जो आज्ञा स्वामिन्!" इतना कहकर सेनापति चल देता है।

अनेक रानियों और सखियों की प्रार्थना को ठुकरा कर सीता यही कहती है—

"बहनों! पतिदेव की यही आज्ञा है कि मैं अकेली ही तीर्थवंदना के लिए जाऊँ अतः तुम सब क्षमा करो और वापस जाओ।"

सिद्धों को नमस्कार कर सीता रथ में बैठ जाती हैं और रथ द्रुतगति से चल पड़ता है। मार्ग में कुछ क्षेत्रों की वंदना कराकर सेनापति निर्जन वन में रथ लेकर पहुँचता है और वहाँ पर उतर कर आँखों से अविरल अश्रु धारा की वर्षा करते हुए कहता है—

"हे स्वामिनि! चूँकि आप रावण द्वारा हरी गई थीं इस कारण लोग आपका अवर्णवाद कर रहे हैं। यह बात रामचन्द्र को विदित हो चुकी है अतः अपकीर्ति के डर से उन्होंने दोहलापूर्ति के बहाने तुम्हें यहाँ निर्जन वन में छोड़ आने को मुझे आदेश दिया है।

इतना सुनते ही सीता अकस्मात् शोक से मूर्च्छित हो जाती है। होश आने पर कहती है-

"हे सेनापते! तुम मुझे कुछ पूछने के लिए एक बार श्रीराम का दर्शन करा दो।"

"हे देवि! मुझे बस इतनी ही आज्ञा है। अब मैं कुछ भी करने में असमर्थ हूँ। हाय! इस किंकरता को धिक्कार हो! सौ-सौ बार धिक्कार हो जो कि मुझे आज यह अधर्म कार्य करने का अवसर आया है।"

पुनः रोते हुए टूटे-फूटे अक्षरों में सीता कहती है—

"हे सेनापते! तुम जाकर श्रीराम से मेरा एक समाचार अवश्य कह देना कि जैसे आपने लोकापवाद के डर से मुझे छोड़ दिया है वैसे ही सम्यग्दर्शनरूपी रत्न को, जैन धर्म को न छोड़ देना।"

3.7.3 सीता का घोर अटवी में करुण क्रन्दन एवं राजा वज्रजंघ का आगमन—

इधर सेनापति नमस्कार कर चला जाता है। उधर सीता करुण क्रंदन करते हुए विलाप करती है—

"हे देव! आपने मुझे धोखा क्यों दिया ?

अरे दुर्दैव! तुझे मेरी दशा पर दया नहीं आई ? ओह! मैंने पूर्वजन्म में क्या पाप किया था ? क्या किसी मुनि को झूठा दोष लगाया था ?.....हाय मातः! यह क्या हुआ ? मैं कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ? किसकी शरण लूँ ? हे नाथ! आप कैसे निष्ठुर हो गये ? ऐसा ही करना था तो आपने युद्ध में असंख्य प्राणियों का संहार कर मेरी रक्षा क्यों की थी ?.....अरे भक्त लक्ष्मण! हे मात अपराजिते! हे भाई भामंडल! हे पुत्र हनुमान! तुम सब आज ऐसे कैसे हो गये हो ? ओह! विधाता तू कितना निष्ठुर है..... ?"

उधर कृतांतवक्त्र के समाचार से रामचन्द्र एक बार आहत हो उठते हैं, मूर्च्छित हो जाते हैं पुनः सचेत हो कुछ संतोष को धारण करते हुए अपने राज कार्य में लग जाते हैं।

अकस्मात् राजा वज्रजंघ के कुछ लोग सीता के सामने आकर पूछते हैं—

"हे देवि! आप कौन हो ? और यहाँ ऐसी अवस्था में क्यों बैठी हो ?"

उन्हें देखते ही सीता घबराकर उन्हें अपने आभूषण देने लगती है। इसी बीच राजा वज्रजंघ आ जाते हैं और पूछते हैं—

"हे भगिनि! तुम कौन हो ? किस निर्दयी ने तुम्हें यह वन दिखाया है ? डरो मत, कहो, कहो। मैं तुम्हारा भाई हूँ।"

सीता अश्रु रोककर कहती है—

"हे भाई! मैं राजा जनक की पुत्री, भामंडल की बहन, राजा दशरथ की पुत्रवधू और श्रीरामचन्द्र की रानी सीता हूँ।"

पुनः धीरे-धीरे वह दशरथ की दीक्षा से लेकर अपने दोहदपूर्ति तक सारे समाचार सुना देती है। राजा वज्रजंघ कहते हैं—

"बहन! संसार में कर्मों की ऐसी ही विचित्र गति है अतः धैर्य धारण करो और मेरे साथ चलो, तुम मेरी धर्म बहन हो।"

"हाँ! तुम मेरे भाई हो, सच में तुम पूर्वभव में मेरे भाई रहे होंगे अन्यथा इस निर्जन वन में मेरे सहायक कैसे बनते ?"

3.7.4 सीता का राजा वज्रजंघ के साथ पुण्डरीकपुर आगमन एवं पुत्रजन्म—

वज्रजंघ सीता को साथ लेकर पुण्डरीकपुर में आ जाते हैं। कुछ ही दिनों में श्रावणमास की पूर्णिमा के दिन सीता युगल पुत्रों को जन्म देती है। उनके नाम अनंगलवण और मदनाँकुश रखे जाते हैं। वे बालक दूज के चन्द्रमा की तरह कला, गुण और शरीर से बढ़ते हुए सीता के शोक को भुला देते हैं। एक समय 'सिद्धार्थ' नामक क्षुल्लक राजा वज्रजंघ के यहाँ आते हैं। वे इन दोनों बालकों को समस्त शास्त्र और शस्त्र कला में निष्णात कर देते हैं। वे क्षुल्लक प्रतिदिन तीनों

कालों में मेरुपर्वत की वंदना करते रहते हैं। दोनों भाई लवण और अंकुश सूर्य के तेज और प्रताप को भी लज्जित करते हुए यौवन अवस्था में प्रवेश करते हैं।

3.7.5 लवण एवं मदनांकुश का विवाह—

एक बार पृथिवीपुर के राजा पृथु के दरबार में दूत प्रवेश करता है और आज्ञा पाकर निवेदन करता है—

"महाराज"! राजा वज्रजंघ ने सीता के पुत्र लवण को अपनी पुत्री शशिचूला देना निश्चित किया है अब वे अंकुश के लिए आपकी पुत्री कनकमाला को चाहते हैं, क्योंकि वे दोनों का विवाह एक साथ.....।"

बीच में ही बात काटकर राजा पृथु कहते हैं—

"अरे दूत! चुप रह। वर के नव गुण कहे हैं—कुल, शील, धन, रूप, समानता, बल, अवस्था, देश और विद्या। इनमें से सर्वप्रथम कुल गुण ही प्रधान है और जिसमें वह नहीं है उसे अपनी कन्या देना भला कैसे संभव है ?"

दूत वापस जाकर राजा वज्रजंघ को सर्व समाचार दे देता है। राजा वज्रजंघ पृथिवीपुर पर चढ़ाई करके उसे घेर लेते हैं। समाचार विदित होते ही लव-कुश भी आ जाते हैं और युद्ध में ललकार कर कहते हैं-

"अरे पृथु! ठहर, क्यों भागता है ? आज हम दोनों तुझे युद्ध में ही अपने कुल का परिचय करायेंगे।"

पृथु वापस मुड़कर क्षमा याचना करते हुए उन दोनों की प्रशंसा करते हैं और सम्मान के साथ नगर में प्रवेश कराते हैं।

अनंतर राजा पृथु की पुत्री और तमाम सेना प्राप्त कर ये वीर अन्य तमाम देशों को जीतने के लिए निकल पड़ते हैं। कुछ दिनों बाद दिग्विजय करके आते हुए वीर पुत्रों को देखकर माता सीता हर्ष से फूल जाती हैं। इधर वज्रजंघ भी अपनी पुत्रियों का विवाह वीर लवण के साथ सम्पन्न कर देते हैं।

3.8 लव-कुश को नारद द्वारा श्रीराम का वर्णन सुनकर उत्सुकता—

रत्नजटित सिंहासन पर लव-कुश विराजमान हैं। नारद प्रवेश करते हैं, देखते ही दोनों वीर उठकर खड़े होकर विनय सहित घुटने टेक कर उन्हें नमस्कार कर उच्च आसन प्रदान करते हैं। प्रसन्न मुद्रा में स्थित नारद कहते हैं—

"राजा राम और लक्ष्मण का जैसा वैभव है सर्वथा वैसा ही वैभव आप दोनों को शीघ्र ही प्राप्त हो।"

वे वीर पूछते हैं—

"भगवन्! ये राम-लक्ष्मण कौन हैं ? वे किस कुल में उत्पन्न हुए हैं ?"

आश्चर्यमय मुद्रा को करते हुए कुछ क्षण स्तब्ध रहकर नारद कहते हैं—

"अहो! मनुष्य भुजाओं से मेरु को उठा सकता है, समुद्र को तैर सकता है किन्तु इन दोनों के गुणों का वर्णन नहीं कर सकता है। यह सारा संसार अनंतकाल तक अनंत जिह्वाओं के द्वारा भी उनके गुणों को कहने में समर्थ नहीं है। फिर भी मैं उसका नाममात्र ही तुम्हें बता देता हूँ। सुनो, अयोध्या के इक्ष्वाकुवंश के चन्द्रमा दशरथ के पुत्र श्री राम और लक्ष्मण हैं।...दशरथ की दीक्षा के बाद भरत का राज्याभिषेक होता है और राम-लक्ष्मण, सीता वन को चले जाते हैं। वहाँ रावण सीता को हर ले जाता है पुनः रामचन्द्र, हनुमान, सुग्रीव आदि के साथ रावण को मार कर सीता वापस ले आते हैं। अयोध्या में आकर पुनः राज्य-संचालन करते हैं।

श्रीराम के पास सुदर्शन चक्र है तथा और भी अनेक रत्न हैं जिन सबकी एक-एक हजार देव सदा रक्षा करते रहते हैं। उन्होंने प्रजा के हित के लिए सीता का परित्याग कर दिया है ऐसे राम को इस संसार में भला कौन नहीं जानता है ?"

यह सब सुनकर अंकुश पूछता है—

"हे ऋषे! राम ने सीता किस कारण छोड़ी सो तो कहो, मैं जानना चाहता हूँ।"

नारद एक क्षण आकुल हो उठते हैं पुनः अश्रुपूर्ण नेत्र होकर कहते हैं—

"जो जिनवाणी के समान पवित्र हैं ऐसी सीता का पता नहीं किस जन्म के पाप का उदय हो आया कि जनता के मुख से उसका अपवाद सुन मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने गर्भवती अवस्था में ही उसे वन में भेज दिया। ओह!...पता नहीं आज वह जीवित है या नहीं ?....."

इतना कहते हुए नारद का कंठ रुंध जाता है और वो आगे बोल नहीं पाते हैं। पुनः हँसते हुए अंकुश कहते हैं—

"हे ब्रह्मचारिन् ! भयंकर वन में सीता को छोड़ते हुए राम ने कुल के अनुरूप कार्य नहीं किया। अहो! लोकापवाद के निराकरण के अनेक उपाय हो सकते हैं पुनः उन्होंने सीता को ऐसा कष्ट क्यों दिया ?" लवण कुमार पूछते हैं—

"हे मुने! कहो अयोध्या यहाँ से कितनी दूर है।"

"अयोध्या यहाँ से 60 योजन दूर है।"

"ठीक है, हम राम-लक्ष्मण को जीतने के लिए प्रस्थान करेंगे।"

3.8.1 लव-कुश के युद्ध हेतु अयोध्या प्रस्थान के लिए कहने पर सीता ने सारा वृतान्त बताया—

लव-कुश राजा वज्रजंघ से कहकर सिंधु, कलिंग आदि देश में दूत भेजकर राजाओं को बुलाकर प्रस्थान की भेरी बजवा देते हैं। राम के प्रति चढ़ाई सुन सीता रोने लगती है। यह देख सिद्धार्थ क्षुल्लक कहते हैं—

"नारद ऋषे! आपने यह क्या किया ? ओह! आपने कुटुम्ब में ही भेद डाल दिया।" नारद कहने लगे—

"मैंने तो मात्र राम-लक्ष्मण की चर्चा की थी।....फिर भी डरो मत, कुछ भी बुरा नहीं होगा।"

दोनों वीर माता को रोती हुई देखकर पूछते हैं—

"हे अम्ब! क्यों रो रही हो ? अविलम्ब कहो, किसने तुम्हें शोक उत्पन्न कराया है ? कौन यमराज का ग्रास बनना चाहता है ?"

सीता धैर्य का अवलम्बन लेकर कहती है—

"पुत्रों! आज मुझे तुम्हारे पिता का स्मरण हो आया है इसलिए अश्रु आ गये हैं।"

आश्चर्यचकित हो दोनों बालक पूछते हैं—

"मातः! हमारे पिता कौन हैं ? और वे कहाँ हैं ?"

तब सीता सोचती है अब रहस्य छिपाने का समय नहीं है और वह स्पष्टतया कहती है—

"प्यारे बेटे! ये राम ही तुम्हारे पिता हैं और वह सीता मैं ही हूँ। राजा वज्रजंघ भामंडल के समान मेरा बंधु हुआ है और मेरे गर्भ से तुम दोनों वीर जन्मे हो। आज तुम्हारी रणभेरी सुन कर मैं घबरा रही हूँ। बेटे! क्या मैं पति की अमंगलवार्ता सुनूँगी ? या तुम्हारी ? या देवर की ?....."

सर्व वृत्तांत सुनकर लव-कुश के हर्ष का पार नहीं रहता है। वे कहने लगते हैं—

"अहो! तीन खण्ड के स्वामी बलभद्र श्रीरामचन्द्र के हम सुपुत्र हैं।" पुनः माता से कहते हैं—

"मातः! मैं वन में छोड़ी गई हूँ" तुम ऐसा विषाद अब मत करो। तुम शीघ्र ही राम-लक्ष्मण का अहंकार खण्डित देखो।"

सीता विह्वल हो कहती है—

"प्यारे पुत्रों! पिता के साथ विरोध करना ठीक नहीं है अतः तुम दोनों बहुत ही विनय के साथ जाकर उनका दर्शन करो, यही बात न्यायसंगत है।"

दोनों वीर कहते हैं—

"हे मातः! आज वे हमारे शत्रुस्थान को प्राप्त हैं उन्होंने अकारण ही आपका तिरस्कार किया है अतः हम उनसे यह दीन वचन नहीं कह सकते हैं कि हम आपके पुत्र हैं। अब तो संग्राम में ही परिचय होगा। संग्राम में ही हम लोगों को मरण

भी इष्ट है किन्तु माता के अपमान को सहन कर जीवित रहना हमें इष्ट नहीं है।"

3.8.2 लव-कुश का युद्ध हेतु प्रस्थान एवं श्रीराम लक्ष्मण से युद्ध—

सीता और सिद्धार्थ उन पुत्रों को तरह-तरह से समझा रहे हैं किन्तु वे युद्ध के लिए कमर कस चुके हैं। सिद्धों की पूजा कर माता को सान्त्वना देते हुए नमस्कार करते हैं—

"बेटे! जिनेन्द्रदेव सर्वथा तुम्हारी रक्षा करें और परस्पर में मंगलक्षेम होवे।"

माता के शुभाशीष को प्राप्त कर वे प्रस्थान कर देते हैं। इधर सिद्धार्थ और नारद शीघ्र ही भामण्डल को खबर भेज देते हैं। राजा जनक के साथ भामण्डल वहाँ आते हैं। कंठ फाड़-फाड़कर रोती हुई सीता को सान्त्वना देकर विमान में बिठाकर युद्ध स्थल में आते हैं। आकाशमार्ग में विमान को ठहरा कर दोनों का संग्राम देख रहे हैं। हनुमान को भेद मालूम होते ही वह भी लव-कुश की सेना में आ जाता है।

आपस में दिव्य शस्त्रों द्वारा घोर युद्ध चल रहा है। राम के साथ लवण कुमार और लक्ष्मण के साथ अंकुश भिड़े हुए हैं। एक दूसरे को ललकार रहे हैं। रामचन्द्र कभी पराजित होते हैं तो लज्जित हो जाते हैं, हँसकर पुनः शस्त्र प्रहार करते हैं। इधर लव-कुश जानते हैं कि ये मेरे पिता और चाचा हैं अतः संभल कर प्रहार करते हैं किन्तु राम-लक्ष्मण को विदित न होने से वे शत्रु मानकर ही प्रहार कर रहे हैं—

राम-लक्ष्मण सोच रहे हैं—

"क्या कारण है ? कि जो मेरे अस्त्र-शस्त्र निष्फल ही होते जा रहे हैं और शरीर में भी शिथिलता आ रही है ?"

"क्या कहूँ भाई ? मेरी भी यही स्थिति है कुछ समझ में नहीं आता है कि क्या करना है ?"

पुनः कुछ सोचकर युद्ध का अंत करने के लिए लक्ष्मण चक्ररत्न का स्मरण करते हैं और उसे घुमाकर अंकुश के ऊपर छोड़ देते हैं। वह अंकुश के पास पहुँचकर निष्प्रभ हो जाता है पुनः वापस लक्ष्मण के हस्ततल में आ जाता है। कई बार चक्ररत्न का वार होने पर भी जब वह निष्फल हो जाता है तब इधर अंकुश कुमार अपने धनुष दण्ड को ऐसा घुमाते हैं कि वह चक्र की शंका उत्पन्न कर देता है। राम-लक्ष्मण कहने लगते हैं—

"क्या बात है ? केवली भगवान् के वचन असत्य हो जायेंगे क्या ? जान पड़ता है कि ये दोनों दूसरे ही बलभद्र और नारायण उत्पन्न हुए हैं।"

[illegible] क्षुल्लक का युद्धस्थल पर आगमन एवं पिता-पुत्र मिलन—

"हे देव! नारायण तो तुम्हीं हो, जिनशासन की कहा बात [illegible] सिद्धार्थ क्षुल्लक वहाँ आकर कहते हैं—

[illegible] भाई! ये दोनों कुमार सीता के लव-कुश नाम के दो पुत्र हैं कि जिनके गर्भ में रहते हुए उसे वन में छोड़ दिया गया था।"

इतना सुनते ही लक्ष्मण के हाथ से शस्त्र और कवच गिर जाते हैं और राम तो धड़ाम से पृथ्वी तल पर गिर मूर्च्छित हो जाते हैं। शीतोपचार से सचेत होते ही राम-लक्ष्मण पुत्रों से मिलने के लिए आगे बढ़ते हैं। उधर लव-कुश भी रथ से उतर कर पिता के सम्मुख बढ़ते हैं। दोनों ही वीर पिता के चरणों में गिर नमस्कार करते हैं और श्रीराम अपनी भुजाओं से उन्हें उठाकर हृदय से लगा लेते हैं। तत्पश्चात् लक्ष्मण भी उनका आलिंगन करते हैं। भामण्डल भी उन्हें छाती से चिपकाकर मस्तक पर हाथ फिराते हैं। वहीं युद्धस्थल में ही पिता-पुत्र के मिलन की प्रसन्नता में मंगलबाजों की ध्वनि होने लगती है। पिता-पुत्र का मिलन होते ही सीता संतुष्टचित्त हुई अपनी पुत्रवधुओं के साथ पुण्डरीकपुर चली जाती है। रामचन्द्र दोनों पुत्रों और भाई के साथ अपने पुष्पक विमान में बैठकर अयोध्या में प्रवेश करते हैं। उस समय के दृश्य को देखने के लिए वहाँ की प्रजा, महिलाएं और बालक-बालिकाएं तो पागलवत् चेष्टा करते ही हैं आश्चर्य यह कि वृद्ध लोग भी धक्का-मुक्की को सहन करते हुए प्राणों की परवाह न करके उनके दर्शनों के लिए पागल हो जाते हैं।

3.8.4 रामचन्द्र का सीता एवं पुत्रों सहित अयोध्या में प्रवेश, अयोध्या में उत्सव का वातावरण—

कोई महिला आँख का अंजन ललाट में लगाकर दौड़ आती है तो कोई दुपट्टी को पहन कर और लहँगा को ओढ़कर चल देती है। कोई अपने बच्चे को छोड़कर किसी अन्य के बालक को ही लेकर चल पड़ती है, तो कोई पति को आधा भोजन परोस कर ही भाग आती है। हल्ला-गुल्ला से उत्पन्न हुआ शब्द भूतल और आकाश मंडल को एक कर देता है।

"अरे वृद्धे! हट, हट, मुझे भी देखने दे। तू यहाँ से चली जा अन्यथा गिरकर मर जायेगी।"

"अरे, रे, रे! मातः! मैं गिर गई, कोई मुझे सहारा दे दो।"

"सरको, सरको, जरा दूर हटो, मुझे भी देखने दो।"

"हाँ, हाँ देखो, जो ये रामचन्द्र जी के अगल-बगल में बैठे हैं वे ही सीता के पुत्र लव-कुश हैं।"

"बहन! कौन तो लव है और कौन कुश है ? दोनों तो एक सरीखे हैं।"

"बहन! देखो ना, इन दोनों का मुख कमल श्रीरामचन्द्र जैसा ही है।"

"हाँ बहन देखो, इतना भयंकर युद्ध करने के बाद भी दोनों अक्षत शरीर हैं। बड़े पुण्यशाली हैं ये।"

"ओहो! कितने सुन्दर हैं ये बालक।"

"कहीं इन्हें नजर न लग जाये, अतः इनके ऊपर ये सरसों के दाने बिखेर दे।"

"अरी माँ! तू यहाँ भीड़ में क्यों आ गई ? क्या मरना है ?"

"अरी बेटी! मुझे भी जरा देख लेने दे।"

"हाँ, हाँ ले आजा, मैंने तो दर्शन कर लिये।"

"अरी सखी! मैं एक बार इन दोनों का चेहरा और देख लूँ।"

"अरी पगली! तू तो बहुत देर से देख रही है। अब दूसरों को भी दर्शन कर लेने दे।"

रामचन्द्र-महल में पहुँचकर स्नान आदि से निवृत्त हो दोनों पुत्रों के साथ भोजन करते हैं। पुनः राजा वज्रजंघ को बुलाकर सम्मानपूर्वक कहते हैं—

"आप मेरे लिए भामण्डल के समान हैं। अहो! संकट में सती सीता के भाई बनकर आपने हमारा बहुत बड़ा उपकार किया है कि जिससे इन पुत्रों के मुख कमल को मैं देख सका हूँ।"

अयोध्या में सर्वत्र खुशियाँ मनाई जा रही हैं। मंगलवाद्य, तोरण, बंदनवार और [illegible] शोभा को धारण कर रही है।

3.9 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-रावण को किसने मारा ?

(क) राम ☐
(ख) लक्ष्मण ☐
(ग) सुग्रीव ☐

प्रश्न 2-रावण की कितनी रानियाँ थीं ?

(क) 16 हजार ☐
(ख) 9 हजार ☐
(ग) 18 हजार ☐

प्रश्न 3-मंदोदरी ने किन आर्यिका से दीक्षा ली ?

(क) पृथिवीमती ☐
(ख) शशिकांता ☐
(ग) इनमें से कोई नहीं ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-रावण की मृत्यु के बाद वहाँ कौन से मुनि आते हैं उनके साथ और कितने मुनि थे तथा वे कहाँ ठहर जाते हैं ?

प्रश्न 2-रावण के कितने भाई थे ? नाम बताइए एवं रावण की पट्टरानी का नाम भी बताइए ?

प्रश्न 3-अयोध्या में राम के वैभव का वर्णन कीजिए ?

प्रश्न 4-त्रैलोक्यमंडन हाथी के पूर्व भवों के बारे में देशभूषण-कुलभूषण मुनिराज क्या कहते हैं ? बताइये ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-राजा मधु कौन था ? एवं उसका समाधिमरण किस प्रकार हुआ ?

पाठ-4 – सीता की अग्नि परीक्षा एवं दीक्षा

4.1 सुग्रीव आदि का श्रीरामचन्द्र से सीता को अयोध्या लाने का निवेदन एवं सीता का अयोध्या आगमन–

श्री रामचन्द्र अपने सिंहासन पर आरूढ़ हैं। सुग्रीव, हनुमान, विभीषण आदि आकर नमस्कार कर निवेदन करते हैं—

"प्रभो! सीता अन्य देश में स्थित है उसे यहाँ लाने की आज्ञा दीजिए।" रामचन्द्र गर्म निःश्वास लेकर कहते हैं—

"बंधुओं! यद्यपि मैं उसके विशुद्ध शील को जानता हूँ फिर भी लोकापवाद से त्यक्त हुई सीता का मुख मैं कैसे देख सकूँगा ?

हाँ, यदि वह अपने सतीत्व का विश्वास जनता को करा सके तो आप ला सकते हैं।"

राम की आज्ञा पाते ही हनुमान आदि पुंडरीकपुर पहुँचकर सीता के महल में प्रवेश करते हैं। पुष्पांजलि बिखेर कर सीता को प्रणाम कर वार्तालाप करते हैं। सीता रो पड़ती हैं और कहती हैं—

"दुर्जनों के वचन रूपी दावानल से जले हुए मेरे अंग इस समय क्षीरसागर के जल से भी शांत नहीं हो रहे हैं।"

"हे मनस्विनि! हे भगवति! आप शोक छोड़ो और मन को प्रकृतिस्थ करो। हम लोगों ने ऐसा कह रखा है कि भरत क्षेत्र में जो भी सीता की निंदा करे उसे मार डाला जाये और जो सीता के गुणों का कीर्तन करे उसके घर रत्न वर्षा की जाये। हे देवि! कृषक भी धान्य राशि में आपकी स्थापना करते हैं उनका कहना है कि इससे धान्य अधिक पैदा होता है।"

पुनः हनुमान कहते हैं—

"हे वैदेहि! यह पुष्पक विमान श्रीराम ने भेजा है अतः अब पति की आज्ञा का पालन करो, उठो और शीघ्र ही अयोध्या चलो।"

सीता, भाई, पुत्र और पुत्रवधू सहित अयोध्या के लिए प्रस्थान कर देती हैं। अयोध्या में प्रवेश करते ही जय-जयकार और प्रशंसा को सुनते हुए वे राजभवन में प्रवेश करती हैं। श्रीराम को नमस्कार कर पास में खड़ी हो जाती हैं। उस समय राम सोचते हैं—

"अहो! यह कैसी धृष्टता है कि जो वन में छोड़ी जाने पर भी आज यहाँ आकर मेरे सन्मुख खड़ी है। यह बड़ी निर्लज्ज है।" पुनः कहते हैं—

"हे सीते! सामने क्यों खड़ी है ? दूर हट, मैं तुझे देखने को समर्थ नहीं हूँ। तू रावण के भवन में कई मास तक रही फिर भी तुझे ले आया, क्या यह सब मेरे लिए उचित था ?"

"हे राम! आपके सदृश निष्ठुर दूसरा कोई नहीं है। जिस प्रकार कोई साधारण मनुष्य उत्तम विद्या का तिरस्कार करता है। वैसे ही आप मेरा तिरस्कार कर रहे हो। हे कुटिल हृदय! दोहला के बहाने वन में भेजकर मुझ गर्भिणी का छोड़ना क्या तुम्हें उचित था ? यदि मैं वहाँ कुमरण को प्राप्त होती तो इससे तुम्हें क्या लाभ मिलता ? केवल मेरी दुर्गति ही तो होती ? यदि मेरे प्रति आपका किंचित् भी सद्भाव था तो मुझे आर्यिकाओं की वसतिका के पास क्यों नहीं छुड़वाया था ? वास्तव में अनाथ और अत्यन्त दुःखी को एक जिनशासन ही परम शरण है। हे देव! अधिक कहने से क्या ? इस दशा में भी आप प्रसन्न होइए, मुझे आज्ञा दीजिए मैं क्या करूँ ?...."

इतना कहकर सीता रो पड़ती है। तब राम शांतचित्त हो कहते हैं—

"हे देवि! मैं तुम्हारे निर्दोष शील को जानता हूं फिर भी तुम लोकापवाद को प्राप्त हुई हो अतः इस कुटिलचित्त प्रजा को विश्वास दिलाओ।"

4.1.1 सीता का अग्नि में प्रवेश—

"ठीक है, मैं पाँच प्रकार की दिव्य शपथों में से आप जो कहिए उसे देने के लिए तैयार हूँ। हे राम! मैं कालकूट विष को पी सकती हूँ, मैं तुला पर चढ़ सकती हूँ अथवा अग्नि में प्रवेश कर सकती हूँ।"

कुछ क्षण राम विचार कर कहते हैं—

"हाँ, ठीक है, अग्नि में प्रवेश करो।"

सीता प्रसन्न हो कहती हैं—

"ठीक है, मैं अग्नि में प्रवेश करूँगी।"

इतना सुनते ही हनुमान, विभीषण, लव-कुश आदि काँप उठते हैं। लव कहता है—

"ओह! माता ने मृत्यु स्वीकार कर ली है।" कुश कहता है—"भाई! जो गति माता की होगी वही अपनी होगी।"

उस समय सिद्धार्थ क्षुल्लक अपनी भुजा ऊपर उठाकर श्रीराम से कहते हैं—

"हे राम! मेरु पाताल में प्रवेश कर सकता है, समुद्र सूख सकते हैं किन्तु सीता के शील में कुछ भी चंचलता नहीं आ सकती है। मैं विद्याबल से समृद्ध हूँ तीनों काल में मेरु की वंदना करके आता हूँ। पाँचों मेरुओं के समस्त शाश्वत जिन प्रतिमाओं की मैंने वंदना की है। हे रामचन्द्र! मैं जोर देकर कहता हूँ कि सीता के शील में किंचित् भी कमी हो तो वह मेरी वंदना निष्फल हो जाये। मैंने वस्त्रखंड धारण कर कई हजार वर्ष तक तपश्चरण किया है सो मैं उस तप की शपथ पूर्वक कहता हूँ कि ये दोनों कुमार तुम्हारे ही पुत्र हैं। इसलिए हे बुद्धिमन् राम! इस भयंकर अग्नि में सीता को प्रवेश न कराइये।"

क्षुल्लक की बात सुनकर आकाश में स्थित विद्याधर और भूमिगोचरी राजा लोग जोर-जोर से आवाज लगाते हुए कहने लगे—

"बहुत अच्छा कहा, बहुत अच्छा कहा, हे देव! प्रसन्न होओ, प्रसन्न होओ, हे नाथ! हे राम! हे राम! सीता महासती, महासती है आप मन में भी अग्नि का विचार मत करो।"

उस समय तीव्र शोक से सभी लोग जोर-जोर से रोने लगते हैं—

तब राम सबकी उपेक्षा करते हुए कहते हैं—

"हे मानवों! यदि इस समय आप लोग दया करने में तत्पर हैं तो पहले अपवाद क्यों किया था ?"

उसी समय राम किंकरों को आज्ञा दे देते हैं। सेवकगण दो पुरुष प्रमाण गहरी और तीन सौ हाथ प्रमाण चौड़ी चौकोर बावड़ी खोद कर उसमें अगुरु, चंदन आदि की बड़ी-बड़ी लकड़ियाँ लेकर भर देते हैं और अग्नि प्रज्ज्वलित कर देते हैं। अग्नि की उठती हुई ज्वालाओं को देखकर सारी अयोध्यापुरी ही अश्रुओं की वर्षा से दुर्दिन उपस्थित कर देती है।

श्रीराम अग्नि की लपटों को देखकर व्याकुल हो उठते हैं और सोचने लगते हैं—

"ओह! मैंने यह क्या कर डाला ? यह मालती के पुष्प सदृश कोमलांगी अग्नि का स्पर्श होते ही मृत्यु को प्राप्त हो जायेगी। हाय! पुनः गुणों की पुंज शीलशिरोमणि इस कांता का मुख कमल मैं कैसे देख सकूँगा ? इसके वियोग में मैं अब कैसे जीवित रह सकूँगा ? निश्चिन्तहृदया सीता ने भी ऐसे मरना कैसे स्वीकृत कर लिया है ? ओह!....वह क्षुल्लक भी अब चुपचाप है अतः इसे रोकने के लिए अब मैं क्या बहाना करूँ ?....." पुनः सोचते हैं—

"अथवा जिनका जैसा मरण निश्चित है वैसा ही होगा। उसे अन्यथा करने में कौन समर्थ है ?" पुनः उठती हुई ज्वालाओं की भीषण गर्मी को देखते हुए सोच रहे हैं—

"अरे! दुष्ट रावण ने इसे लंका में मृत्यु के घाट क्यों नहीं उतार दिया था ?.....जब वन में छोड़ी गई थी तभी इसे किसी हिंसक पशु ने क्यों नहीं खा लिया था ?....अब मैं इसकी ऐसी दशा कैसे देख सकूँगा ?....."

राम चिंतातुर हो रहे हैं। लक्ष्मण, हनुमान आदि अश्रु की बूँदें गिरा रहे हैं। लव-कुश मूर्च्छित हो-होकर गिर रहे हैं किन्तु सीता किसी की परवाह न कर वहाँ आती हैं और प्रसन्नमना हुई खड़ी हो जाती हैं। क्षण भर के लिए कायोत्सर्ग करती हैं पुनः श्री जिनेन्द्रदेव की स्तुति करती हैं—

"ऋषभ आदि चौबीस तीर्थंकरों को मेरा नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, श्री मुनिसुव्रतनाथ को बारम्बार

नमस्कार हो, सर्वजन हितैषी, प्राणिवत्सल आचार्य, उपाध्याय और साधुओं को मेरा मन-वचन-काय से बारम्बार नमस्कार हो।"

पुनः श्री रामचन्द्र को नमस्कार करके कहती हैं—

"हे अग्निदेवते! राम के सिवाय यदि स्वप्न में भी मैंने किसी अन्य पुरुष को मन से भी चाहा हो तो तू मुझे भस्मसात् कर दे अन्यथा तू शीतल हो जा।"

इतना कहकर वह उस अग्निकुंड में कूद पड़ती है। इसी बीच सर्वत्र हाहाकार मच जाता है।

"अरे रे रे! क्या हुआ ? क्या हुआ ? हे जिनशासन देवते।".....इसी बीच वहीं अयोध्या के महेंद्रोदय उद्यान में सकलभूषण केवली के केवलज्ञान उत्सव को मनाने के लिए इन्द्रगण आ रहे थे। इस दृश्य को देखते ही इन्द्र ने मेषकेतु देव को कहा कि—

"जाओ, जाओ! शीघ्र ही शील का माहात्म्य दिखाकर सीता की रक्षा करो।"

4.1.2 शील का माहात्म्य, अग्नि बनी सरोवर—

वह देव निमिष मात्र में उस अग्नि की बावड़ी को जल से लबालब भर देता है। जल बावड़ी से ऊपर आकर चारों तरफ फैल जाता है। लोग डूबने लगते हैं। उधर सीता जल के मध्य सहस्रदल कमल के ऊपर सिंहासन में विराजमान हैं। जल बढ़ता ही चला जा रहा है। लोग जोर-जोर से आवाज लगाते हैं—

"हे देवि! रक्षा करो, रक्षा करो। हे मान्ये! हे सरस्वती! हे महाकल्याणि! हे लक्ष्मी! हे सर्वप्राणिहितैषिणि! रक्षा करो। हे महा पतिव्रते! हे मुनि मानस निर्मले! दया करो, दया करो!

वह जलरूपी वधू जब अपने तरंगरूपी हाथों से श्रीराम के चरण युगल का स्पर्श कर लेती है तब वह उसी क्षण सौम्य दशा को प्राप्त हो जाती है। तब जल को रुका हुआ देख सभी जनता सुखी हो जाती है। उस बावड़ी में चारों तरफ कमल खिल रहे हैं। सीता के दोनों तरफ देवियाँ चंवर ढोर रही हैं। महिलाएँ सीता के शील की प्रशंसा करते हुए और तरह-तरह से आशीर्वाद देते हुए नहीं अघाती हैं। देवतागण दुंदुभि बाजे बजा रहे हैं, पुष्प वर्षा रहे हैं। किन्नरियाँ नृत्य कर रही हैं और मधुर गीत गा रही हैं। आकाश से, भूतल से सब ओर से एक ही ध्वनि आ रही है—

"हे जनकनंदिनी, हे शीलशिरोमणि! तुम्हारी जय हो, जय हो। हे बलभद्र श्रीराम की पट्टरानी! तुम्हारी जय हो, जय हो।"

4.1.3 श्रीराम द्वारा सीता से क्षमायाचना एवं सीता की दीक्षा—

माता के स्नेह से खिंचे हुए लव-कुश जल में तैरते हुए वहाँ आकर सीता को प्रणाम करते हैं। वह बेटों के मस्तक पर हाथ फिराकर अनेक आशीर्वाद देती हैं पुनः दोनों पुत्र सीता के आजू-बाजू में खड़े हो जाते हैं। उसी समय मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम बहुत भारी अनुराग से युक्त हो सीता के समीप आते हैं और कहते हैं—

"हे देवि! प्रसन्न होओ, तुम सभी लोक में पूजित कल्याणवती हो। हे सति! मेरा सब दोष क्षमा करो, पुनः आगे फिर कभी भी मैं ऐसा अपराध नहीं करूँगा। हे प्राणवल्लभे! तुम आठ हजार रानियों की भी परमेश्वरी हो, और तो क्या, अब मुझ पर भी तुम अनुशासन करो। हे कान्ते! जो-जो स्थान तुम्हें प्रिय हों मुझे आज्ञा देवो, मैं तुम्हारे साथ वहाँ-वहाँ विचरण करते हुए इच्छानुसार क्रीड़ा करूँगा। हे प्रशंसनीय मनस्विनि! मैं इस समय दोषसागर में निमग्न हूँ अतः तुम्हारे समीप आया हूँ सो क्रोध का परित्याग करो और प्रसन्न होओ।"

तब सीता कहती हैं—

"हे नाथ! आप इस तरह विषाद क्यों कर रहे हैं ? मैं किसी पर भी कुपित नहीं हूँ। इसमें न तुम्हारा ही कुछ दोष था न देश के अन्य लोगों का। यह तो मेरे पूर्व संचित कर्म का ही विपाक था जो मैंने भोगा है। हे बलदेव! मैंने तुम्हारे प्रसाद से देवों के समान अनुपम भोग भोगे हैं इसलिए अब उनकी इच्छा नहीं है। अब तो मैं वहीं कार्य करूँगी कि जिससे पुनः

मुझे स्त्री पर्याय प्राप्त न हो। अब मैं समस्त दु:खों का क्षय करने के लिए जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करूँगी.....।"

इतना कहते हुए सीता कोमल हाथों से अपने काले-काले केश उखाड़कर राम के सम्मुख डाल देती हैं। उन केशों को देख रामचन्द्र धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं और मूर्च्छित हो जाते हैं। जब तक रामचन्द्र सचेत हों तब तक सीता शीघ्र ही उद्यान में जाकर सकलभूषण केवली के यहाँ पृथ्वीमती आर्यिका के पास दीक्षा ले लेती हैं।

इधर रामचन्द्र शीतोपचार से जब होश में आते हैं तब वे मोह और शोक में पागल हो बकने लगते हैं—

"ओह! मेरी प्राणवल्लभा सीता कहाँ गई ? यदि उसे दीक्षा ही दिलाना था तो देवों ने ऐसा उसका प्रातिहार्य क्यों किया ? मैं देखता हूँ उसे कौन ले जाता है ? मैं देवों को भी अदेव कर दूँगा।"

उस समय लक्ष्मण उन्हें संभाल कर अनेक उपाय से सांत्वना दे रहे हैं। पुन: सभी लोग महेन्द्रोदय उद्यान में पहुँचते हैं। वहाँ सर्वभूषण केवली के समवसरण में प्रवेश कर शांत हो जाते हैं। वंदना, पूजा, स्तुति करके सीता को भी नमस्कार कर सब अपने-अपने कोठे में बैठ जाते हैं। तब 'अभयनिनाद' नामक महामुनि भगवान् से प्रश्न करते हैं—

"हे भगवन् ! संसार में यह जीव क्यों भ्रमण कर रहा है ?"

"हे भव्यजीवों! संसार का मूल कारण मोह ही है जब तक यह जीव इसके वश में है तभी तक संसार है।"

4.1.4 कृतांतवक्त्र सेनापति की दीक्षा—

इत्यादि प्रकार से दिव्य उपदेश सुनकर सभी लोग अपने-अपने भव-भवान्तर पूछते हैं। अनन्तर कृतांतवक्त्र सेनापति श्रीराम से कहता है—

'हे नाथ! अब मैं इस अनादि संसार से निकलना चाहता हूँ अत: मुझे दीक्षा के लिए आज्ञा प्रदान कीजिए।'

रामचन्द्र अनेक उपायों से भी जब उसे नहीं रोक पाते हैं तब कहते हैं—

"भद्र! यदि तुम इस जन्म से निर्वाण प्राप्त न कर सको और देव होवो तो जब कभी मैं संकट में होऊँ तो मुझे सम्बोधन अवश्य करना। यदि तुम मेरा किंचित् भी उपकार मानते हो तो यह प्रतिज्ञा करो।"

"जैसी आपकी आज्ञा, मुझे यह सहर्ष स्वीकृत है।"

इतना कहने के बाद राम से आज्ञा प्राप्त कर वह सेनापति दिगम्बर मुनि हो जाता है। केवली भगवान् का विहार हो जाता है। तत्पश्चात् रामचन्द्र यथाक्रम से आर्यिकाओं की वंदना करते हुए सीता के समीप पहुँचते हैं तब उनका हृदय फटने लगता है वे बोलते हैं—

"ओह! मेरी भुजाओं का आलिंगन प्राप्त करने वाली यह सीता इस कठोर आर्यिका व्रत को कैसे पालेगी ? मेघ की गर्जना से भी डरकर जो मुझे चिपट जाती थी वह वनों में सिंह, व्याघ्र के भयंकर शब्द कैसे सुनेगी ? नीरस आहार कैसे करेगी ? और कंकरीली पृथ्वी पर कैसे सोयेगी ? मैंने यह क्या किया ? विवेक शून्य हो लोकापवाद के डर से मैंने ऐसी सती सीता को कैसे खो दिया ?"

जैसे-तैसे अश्रु रोककर स्वाभाविक दृष्टि से सीता के पास जाकर भक्ति और स्नेह से युक्त हो 'वंदामि' कहकर नमस्कार करते हैं और कहते हैं—

"हे भगवति! तुम धन्य हो, तुमने संसार समुद्र से पार होने के लिए जिन मार्ग का आश्रय ले लिया है। एक मैं हूँ जो मोह में फँसा हूँ। हे शान्ते! गार्हस्थ्य जीवन में मेरे द्वारा ज्ञात-अज्ञात में जो भी अपराध हुआ हो उसे क्षमा करो। हे मनस्विनि! इस समय मेरे विषादयुक्त मन को भी आप आनन्दित कर रही हैं, आप मेरे द्वारा भी पूज्यता को प्राप्त हो गई हैं।"

लक्ष्मण, लव-कुश आदि भी नमस्कार करते हैं। वियोग के दु:ख से व्याकुल हुए पुत्रों को आगे कर श्रीराम वापस अयोध्या में प्रवेश कर रहे हैं। उस समय प्रजा के लोग अनेक प्रकार से वार्तालाप कर रहे हैं—

"हे भाई! सीता के बिना राम शोभा नहीं पा रहे हैं।"

"अरे! राम ने सीता को कैसे गंवा दिया ?"

"ओह! सीता ने यह क्या किया ? उसका ऐसा कठोर हृदय कैसे हो गया।"

"अरे! राम को ऐसी कठोर परीक्षा लेना उचित था क्या ?"

"बहन! सर्वप्रथम राम को गर्भिणी हालत में उसे वन में नहीं भेजना था।"

"हाँ बहन! उसी समय इन्होंने यह 'अग्नि परीक्षा' क्यों नहीं ले ली थी ?"

"इसी का नाम संसार है। अरे! जब सीता को पूर्व संचित कर्म भोगना ही था तो राम को भी उस समय ऐसी बुद्धि कैसे आती ? क्या तुमने नहीं सुना ? केवली भगवान् ने बताया है कि इस सीता के जीव ने पूर्व भव में किसी मुनि-आर्यिका को झूठा दोष लगाया था पुनः प्रायश्चित्त भी किया था किन्तु गुरुनिंदा का पाप बिना भोगे नहीं छूटता है।"

"हाँ, हाँ, बहन! इसलिए सती सीता को इस पर्याय में अपवाद का दुःख सहना पड़ा।"

"ओह! देखो! अपने दूध से पुष्ट किये इन लव-कुश को छोड़ कर सीता ने कैसे दीक्षा ले ली ?"

"बहन! उसने बहुत ही अच्छा किया है स्त्री पर्याय से छूटने का एक यही उपाय है।"

सीता घोर तपश्चरण करते हुए अपने जीवन के बासठ वर्ष व्यतीत कर देती हैं। अंत में तेतीस दिन की सल्लेखना लेकर मरण करके स्त्री पर्याय को छेदकर अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र हो जाती हैं। वहाँ पर वह इन्द्र आज भी दिव्य सुखों का अनुभव कर रहा है।

4.2 सौधर्म स्वर्ग में श्रीराम की चर्चा—

देवों की सभा लगी हुई है। सौधर्म इन्द्र अपने सिंहासन पर आरूढ़ हैं। अर्हंतदेव की भक्ति का उपदेश दे रहे हैं। उपदेश के अनन्तर इन्द्र चिंतानिमग्न हो सोच रहे हैं—

"अहो! यहाँ की आयु पूर्ण कर मैं मनुष्य पर्याय कब प्राप्त करूँगा ? तप के द्वारा कर्मों को नष्ट कर जिनदेव की गति को कब प्राप्त करूँगा ?"

यह सुन एक देव बोलता है—

"जब तक यह जीव स्वर्ग में रहता है तभी तक उसके ऐसे भाव होते हैं किन्तु जब मनुष्य पर्याय को पा लेते हैं तो भोगों में निमग्न हो सब कुछ भूल जाते हैं। यदि विश्वास नहीं है तो ब्रह्मलोक से च्युत हुए श्रीरामचन्द्र को क्यों नहीं देख लेते ?"

तब इन्द्र कहते हैं—

"सच में सभी बंधनों में स्नेह का बंधन अत्यन्त दृढ़ है। जो हाथ-पैरों से बँधा है वह तो मोक्ष को प्राप्त कर सकता है किन्तु स्नेह बंधन से बँधा हुआ प्राणी मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता। लक्ष्मण, राम में इतना अनुरक्त है कि वह प्राण देकर भी उनका कार्य करना चाहता है और पल भर भी जिसके दूर होने पर राम बेचैन हो उठते हैं। अहो! उन दोनों का स्नेह अपूर्व ही है।"

4.2.1 रत्नमूल और मृगचूल देवों द्वारा राम-लक्ष्मण की परीक्षा, लक्ष्मण की मृत्यु एवं श्रीराम का लक्ष्मण के प्रति तीव्र स्नेह-

सभा विसर्जित हो जाती है। रत्नचूल और मृगचूल नाम के दो देव इन दोनों के स्नेह की परीक्षा के लिए अयोध्या आ जाते हैं। राम के भवन में दिव्य माया से रुदन मचा देते हैं और विक्रिया से बनाये हुए मंत्री, पुरोहित आदि को लक्ष्मण के पास भेज देते हैं, वे वहाँ पहुँच कर कहते हैं—

"हे नाथ! राम की मृत्यु हो गई।"

इतना सुनते ही लक्ष्मण के मुख से निकलता है—

"हाय! यह क्या....." इस अर्ध वाक्य के उच्चारण के साथ ही साथ वे सिंहासन पर बैठे ही बैठे प्राणरहित हो जाते हैं। सहसा लक्ष्मण की मृत्यु देख दोनों देव आश्चर्य और विषाद से युक्त हो चुपचाप अपने स्थान को चले जाते हैं। उधर लक्ष्मण की स्त्रियाँ आकर इस दुर्घटना से छाती पीट-पीट कर रोने लगती हैं। राम को समाचार मिलते ही वे वहाँ आ जाते हैं। वे लक्ष्मण को निश्चेष्ट देख रहे हैं यद्यपि लक्ष्मण में मृतक के चिह्न दिख रहे हैं फिर भी राम स्नेह से परिपूर्ण हो उन्हें जीवित ही समझ रहे हैं। उनका बार-बार आलिंगन करते हुए कहते हैं—

"हे भाई! क्या कारण है ? तुम क्यों ऐसे हो रहे हो, बोलो-बोलो, मेरे से वार्तालाप करो, बोलो तुम्हें किसने सताया है ?"

लक्ष्मण की ऐसी दशा देख राम बार-बार मूर्च्छित हो जाते हैं। वैद्यों के द्वारा परीक्षा हो जाने पर भी वे उसे मृतक नहीं मान रहे हैं। मोह और शोक में पागल हो रोते हैं, विलाप करते हैं और तो क्या उस मृत शरीर को नहलाते हैं, वस्त्र पहनाते हैं और भोजन खिलाने की कोशिश करते हैं। इस दृश्य को देख अति दुःखी हो लव-कुश अनेक उपाय से पिता को समझाने का पुरुषार्थ करते हैं। अंत में असफल हो जाते हैं तब विरक्तमना हुए पिता को नमस्कार कर वन में जाकर अमृतस्वर महामुनि के समीप दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं।

राम पुत्रों की दीक्षा का समाचार सुनकर अतीव दुःखी हुए लक्ष्मण से कहते हैं—

"हे लक्ष्मण! जल्दी उठो, चलो चलें, जब तक लव-कुश दीक्षा नहीं ले लेते हैं उन्हें समझाकर वापस ले आवें।...."

"हे भाई! मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ?" कुछ क्षण बाद कहते हैं—

"देख! अब मैं अकेला हूँ तू मुझे जल्दी से अपने मन की बात बता दे।"

समाचार को प्राप्त करते ही विभीषण आदि राजा आकर समझाते हैं—

"प्रभो! यह मृतक शरीर है इसे छोड़ो, इसका दाह संस्कार करो।"

राम कहते हैं—

"अरे दुष्टों! तुम मेरे प्यारे भाई को मरा समझ रहे हो ? जावो, जावो।" पुनः आप स्वयं भाई को कंधे पर लेकर वन में चले जाते हैं। सभी विद्याधर किंकर्तव्यविमूढ़ हैं कि क्या करना चाहिए ? श्रीराम की इस पागल जैसी स्थिति में एक दिन कम छह महीने व्यतीत हो जाते हैं। तब अकस्मात् आसन के कम्पित होने से दो देव स्वर्ग से वहाँ आते हैं और वे विपरीत क्रियायें प्रारंभ करते हैं। एक देव मनुष्य के वेष में सूखे वृक्ष को सींच रहा है, दूसरा दो मृतक बैलों के कंधों पर हल रखकर पत्थर पर बीज बोने का प्रयत्न करने लगता है, पुनः एक मनुष्य मटकी में जल डालकर मथने लगता है तो दूसरा घानी में रेत डालकर पेलना शुरू कर देता है। तब राम कहते हैं—

"अरे मूर्खों! इस सूखे ठूँठ को क्यों सींच रहे हो ? अहो! इन मृतक बैलों पर हल रखने से क्या होगा ? पत्थर पर बीज उगेंगे क्या ? कहीं पानी से मक्खन निकलता है ? अरे बालक, बालू से कहीं तेल निकलता है ?" तब वे कहते हैं—

"हे नाथ! आप भी तो मृतक कलेवर को लिए घूम रहे हो।" राम कुपित होकर कहते हैं—

"अरे, अरे! तुम पुरुषोत्तम लक्ष्मण को मृतक क्यों कह रहे हो ?"

राम आगे बढ़ जाते हैं तब एक देव अपने कंधे पर मृतक शरीर को लेकर उनके आगे-आगे हो लेता है। तब पुनः राम कहते हैं—

"अरे रे! आप इस मुर्दे को कंधे पर क्यों रखे हुए हैं ?"

तब वह वृद्ध कहता है—

"आज आपको देखकर हम लोगों को बहुत ही प्रेम हो रहा है क्योंकि समान में ही प्रेम होता है। स्वामिन्! हम सब

पिशाचों के आप सर्वप्रथम मनोनीत महाराजा हैं।"

4.2.2 श्रीराम का मोहभंग एवं लक्ष्मण का दाहसंस्कार-

इन वचनों के निमित्त से राम का मोह शिथिल हो जाता है और वे सोचने लगते हैं—

"ओह! कहाँ मैं विद्वत्शिरोमणि राम ? और कहाँ मेरी यह चेष्टा ? धिक्कार हो इस मोह को!"

राम के मोह को शिथिल हुआ देख दोनों देव अपने सुन्दर रूप में हो जाते हैं। तब राम पूछते हैं—

"हे महानुभावों! आप कौन हैं ?" दोनों परिचय देते हैं—

"हे नाथ! हम जटायु पक्षी के जीव हैं और यह कृतांतवक्त्र सेनापति का जीव है। हे देव! इतने दिन से आप पर विपत्ति आई थी किन्तु हम अज्ञानियों को पता ही नहीं था। हे राम! जब आपकी विपत्ति का अन्त आ गया तब आपके कर्मोदय ने मुझे इस ओर ध्यान दिलाया है।"

"अहो भद्र पुरुषों! तुम दोनों ने इस समय मेरा बहुत बड़ा उपकार किया है।"

अनन्तर राम सर्व परिजनों के साथ सरयू नदी के किनारे लक्ष्मण का दाह संस्कार कर देते हैं।

4.3 श्रीराम की दीक्षा एवं अवधिज्ञान की प्राप्ति—

राजसभा में बैठे हुए श्रीराम शत्रुघ्न से राज्य संभालने को कहते हैं किन्तु जब वह दीक्षा के भाव व्यक्त करता है तब अनंगलवण के पुत्र अनन्तलवण का राज्याभिषेक कर देते हैं।

इसी बीच अर्हदास सेठ प्रवेश करते हैं। राम पूछते हैं-

"भद्र! मुनि संघ में कुशल है ना ?"

"हे नाथ! आपके इस कष्ट से पृथ्वीतल पर मुनि भी परम व्यथा को प्राप्त हुए हैं और आपके स्नेह से खिंचकर श्री सुव्रताचार्य गुरु स्वयं यहाँ पधारे हैं।"

राम हर्ष से रोमांचित हो मुनि के समीप पहुँचते हैं उनकी प्रदक्षिणा देकर वंदना करते हैं, स्तुति पूजा करते हैं पुनः कहते हैं—

'हे भगवन्! मुझे संसार समुद्र से पार करने वाली निर्ग्रंथ दीक्षा प्रदान कीजिए।"

4.3.1 श्रीराम के रूप सौन्दर्य से प्रजा की नाना चेष्टाएँ एवं मुनि रामचन्द्र का वन में आहार लेने का नियम-

गुरु की आज्ञा पाकर जब राम वस्त्रालंकार त्याग कर केशलोंच करते हैं, उस समय देवगण रत्नवृष्टि आदि पंचाश्चर्य करने लगते हैं। विभीषण, सुग्रीव आदि भी दीक्षा ले लेते हैं। उस समय कुछ अधिक सोलह हजार राजा मुनि हो जाते हैं और सत्ताईस हजार प्रमुख स्त्रियाँ 'श्रीमती' आर्यिका के पास साध्वी हो जाती हैं।

गुरु की आज्ञा लेकर राम एकाकी विहार करते हुए वन में जाकर प्रतिमायोग धारण कर लेते हैं। रात्रि में ही उन्हें अवधिज्ञान प्रगट हो जाता है। पाँच दिन के उपवास के बाद योगी श्रीराम पारणा के लिए नंदस्थली नगरी में आते हैं। उनके रूप सौन्दर्य को देखते ही लोग पागल के समान हो जाते हैं। शहर की गलियों में बेशुमार भीड़ हो जाती है। श्रावक-श्राविकायें पड़गाहन करने में तत्पर हो उच्च स्वर से बोलते हैं—

"हे स्वामिन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ।

"हे मुनीन्द्र! जय हो, जय हो, यहाँ आइये, आइये, ठहरिये, ठहरिये।"

महिलाएं तरह-तरह की वस्तुएं मँगाने लगती हैं—

"अरी सखी! गन्ना ले आ"

"अरी वह सुवर्ण की झारी लाओ।"

"अरी चतुरे! खीर ले आ! अच्छा, मिश्री और ले आ।"

इत्यादि प्रकार से इतना हल्ला हो जाता है कि हाथी घोड़े भी अपने-अपने बंधन को तोड़कर उपद्रव मचाते हुए इधर-उधर भागने लगते हैं। इतना कोलाहल देख राजा प्रतिनंदी अपने कर्मचारियों को भेजता है। वे आकर पड़गाहन करने वालों को तितर-बितर करके मुनि से कहते हैं—

"प्रभो! राजा के यहाँ पधारिये, वहाँ उत्तम भोजन कीजिए।"

मुनिराज अन्तराय समझकर वन में वापस चले जाते हैं और पुनः पाँच उपवास के बाद ऐसा वृत्तपरिसंख्यान लेते हैं कि—

"यदि कोई वन में ही पड़गाहेगा तो आहार करूँगा अन्यथा नहीं।"

अकस्मात् शत्रु द्वारा हरे जाने पर राजा प्रतिनंदी वन में ही रानी के साथ भोजन विधि करने को तैयार होते हैं कि सामने से श्रीराम मुनि को देखकर भक्ति से पड़गाहन करके नवधा भक्ति से आहार कराते हैं। देवों के द्वारा पंचाश्चर्य वृष्टि होने लगती है। राम को अक्षीण महानस ऋद्धि भी हो गई थी अतः उस दिन राजा के यहाँ अन्न अक्षय हो जाता है। श्रीरामचन्द्र महामुनि वन में ही आहार का नियम लेते रहते हैं। देवांगनाएं उनकी पूजा करती रहती हैं।

कई एक वर्ष बाद श्रीराम कोटिशिला पर पहुँचकर रात्रि में प्रतिमायोग से स्थित हो ध्यान में लीन हो जाते हैं।

4.4 श्रीरामचन्द्र-सीता आदि की भवावली—

राजा विभीषण ने सकलभूषण केवली को नमस्कार कर पूछा—

"भगवन्! श्रीराम ने पूर्व भवों में कौन सा पुण्य किया था ? सती सीता के शील में लोकापवाद क्यों हुआ ? रावण से लक्ष्मण का वैर कब से था ? इत्यादि। मैं आपके दिव्यवचनों से इन सभी के पूर्वभवों को सुनना चाहता हूँ।"

तब केवली भगवान की दिव्यध्वनि खिरी जिसे कि सभी ने श्रवण किया।

"इस संसार में कई भवों से राम-लक्ष्मण का रावण के साथ वैर चला आ रहा है। उसे सुनो, इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में क्षेत्र नाम का एक नगर था। वहाँ पर नयनदत्त वैश्य की सुनंदा पत्नी के दो पुत्र थे, धनदत्त और वसुदत्त। वहीं यज्ञबलि नाम का एक ब्राह्मण था वह वसुदत्त का मित्र था। इसी नगर में सागरदत्त वणिक् की पत्नी रत्नप्रभा से गुणवती नाम की एक पुत्री हुई थी और गुणवान नाम का एक पुत्र था। इसी नगर में एक श्रीकांत वणिक् था।

गुणवती का उसके पिता और भाई धनदत्त से विवाह करना चाहते थे किन्तु उसकी माँ श्रीकांत को धनाढ्य समझकर उसे देना चाहती थी। तब धनदत्त के भाई वसुदत्त ने क्रोध के वश हो अपने मित्र यज्ञबलि के उपदेश व सहयोग से श्रीकांत के घर जाकर उस पर शस्त्र प्रहार किया, उसने भी वसुदत्त पर शस्त्र प्रहार किया, दोनों एक-दूसरे को मारकर मर गये। इधर धनदत्त को गुणवती न मिलने से वह घर से निकलकर अनेक देशों में भ्रमण करता रहा। गुणवती ने भी धनदत्त के साथ ही विवाह करना चाहा था किन्तु उसके साथ विवाह न हो पाने से वह दुःखी हुई। मिथ्यात्व के निमित्त जैन शासन से और दिगम्बर गुरुओं से द्वेष रखती थी।

आयु के समाप्त होने पर यह गुणवती आर्तध्यान से मरकर वहीं वन में हरिणि हुई। उसी वन में ये वसुदत्त और श्रीकांत मरकर हरिण हुए थे। पूर्व संस्कार के निमित्त से यहाँ भी ये दोनों इसी हरिणी के लिए आपस में एक-दूसरे को मारकर मरे और सूकर हो गये। पुनः ये दोनों हाथी, भैंसा, बैल, वानर, चीता, भेड़िया और मृग हुए। सभी पर्यायों में ये परस्पर में द्वेष रखते हुए एक-दूसरे को मारते और मरते रहे।

इधर वह धनदत्त वैश्य पुत्री गुणवती को न प्राप्त कर दुःखी हुआ। देश-देश में घूम रहा था। एक दिन मार्ग में थका

हुआ वह सूर्यास्त के बाद मुनियों के आश्रम में पहुँच गया। वह प्यासा था अत: वह मुनियों से कमंडलु का पानी पीने के लिए मांगने लगा। तभी एक दिगम्बर मुनि ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—

"हे भद्र! रात्रि में पानी तो क्या अमृत पीना भी उचित नहीं है। जब नेत्रों से दिखाई नहीं देता है ऐसे समय में सूक्ष्म जन्तुओं का संचार बहुल हो जाता है इसलिए तू रात्रि में भोजन मत कर.....।"

इत्यादि प्रकार से मुनिराज के मुख से धर्मोपदेश श्रवण कर वह धनदत्त प्यास से उत्पन्न आकुलता को भूल गया और उसका चित्त दया से आर्द्र हो गया। वह अल्पशक्ति अनुभव कर महाव्रती तो नहीं बन सका किन्तु अणुव्रती श्रावक बन गया। अनन्तर आयु की समाप्ति में मरकर सौधर्म स्वर्ग में उत्तम देव हो गया। वहाँ पुण्योदय से प्राप्त देवांगनाओं के मध्य दिव्य सुखों को भोगने लगा।

4.4.1 पद्मरुचि सेठ द्वारा बैल को णमोकार मंत्र सुनाने से वह वृषभध्वज राजकुमार बना—

वहाँ से च्युत होकर वह धनदत्त का जीव महापुर नगर के जैनधर्म निष्ट, मेरु सेठ की धारिणी भार्या से "पद्मरुचि" नाम का पुत्र हुआ। यह पद्मरुचि युवावस्था में एक बार घोड़े पर चढ़कर गोकुल की ओर जा रहा था वहाँ मार्ग में एक बूढ़े बैल को पृथ्वी पर पड़े हुए देखा। वह उठने-चलने में समर्थ नहीं था अत: मृत्यु की घड़ियां गिन रहा था। पद्मरुचि श्रावक ने घोड़े से उतरकर उसके पास बैठकर उसे आदरपूर्वक कुछ उपदेश सुनाया पुन: उसके कान में णमोकार मंत्र सुनाता रहा। मंत्र सुनते-सुनते उस बैल के प्राण निकल गये।

मंत्र के प्रभाव से वह बैल का जीव उसी नगर के राजा छत्रच्छाय की रानी श्रीदत्ता के गर्भ में आ गया और नौ महीने बाद उसके जन्मते ही राजा ने पुत्ररत्न के हर्ष से बहुत ही उत्सव किया पुन: उसका नाम "वृषभध्वज" रख दिया। इस राजकुमार को बचपन में जातिस्मरण हो गया कि—

"मैं पूर्वभव में बैल था। वृद्धावस्था में गली में पड़ा-पड़ा दु:ख भोग रहा था। एक श्रावक ने मुझे पंच नमस्कार मंत्र सुनाया था जिसके प्रभाव से मैं राजपुत्र हो गया हूँ।"

4.4.2 जातिस्मरण को प्राप्त राजकुमार वृषभध्वज पद्मरुचि की खोजकर अभिन्न मित्र बन गए—

अत: वह णमोकार मंत्र का सदा स्मरण किया करता था। एक दिन घूमते हुए उसी स्थान पर पहुँचा जहाँ पूर्व में बैल का मरण हुआ था। उस राजकुमार ने आस-पास में घूमते हुए अपने पूर्व पर्याय के बैल अवस्था में बोझा ढोने, भूखे-प्यासे घूमने, पड़े रहने आदि के सभी स्थान पहचान लिए। वह हाथी से उतरकर दुखित हो बहुत देर तक बैल के मरने की भूमि को देखता रहा और सोचता रहा।

"मेरे समाधिमरण के दाता वे श्रावक महापुरुष कौन हैं ?" पुन: उनको खोजने का उसने एक उपाय सोचा। उसने उसी स्थान पर कैलाशपर्वत के शिखर के समान उन्नत एक जिनमंदिर बनवाया उसमें अनेक चित्र बनवा दिये, उसी मंदिर के द्वार पर एक जगह उसने बैल को पंच नमस्कार मंत्र सुनाते हुए पुरुष का चित्र भी बनवा दिया और मंदिर के द्वार पर उसकी परीक्षा के लिए चतुर कर्मचारी नियुक्त कर दिये।

एक दिन जिनमंदिर की वंदना के लिए पद्मरुचि श्रावक वहाँ आ गया तब वह उस बैल के चित्र को आश्चर्ययुक्त हो एकटक देखता रहा। तभी द्वार पर नियुक्त कर्मचारियों ने यह समाचार राजपुत्र को पहुँचा दिया। वृषभध्वज राजकुमार तत्क्षण ही हाथी पर बैठकर वहाँ आ गये और चित्रपट को तल्लीनता से देखते हुए पद्मरुचि के चरणों में साष्टांग नमस्कार किया।

पद्मरुचि ने उस चित्र का परिचय देते हुए बताया कि—

"यह बैल दु:खी हुआ सिसक रहा था तब मैंने इसे महामंत्र सुनाया था.....।"

इतना सुनते ही राजपुत्र ने कहा—

"स्वामिन्! वह बैल का जीव मैं ही हूँ। मुझे जातिस्मरण के हो जाने पर भी मेरे उपकारी कौन हैं ? जब मैं यह पता नहीं लगा सका तभी मैंने यह मंदिर बनवाकर यह चित्रपट मात्र आपको खोजने के लिए ही बनवाया था.....। सो आज आप जैसे परमोपकारी को पाकर मैं धन्य हो गया हूँ।" तुमने मेरा जो भला किया है वह न माता कर सकती है न पिता कर सकते हैं, न सगे भाई और न परिवार के अन्य लोग ही कर सकते हैं और तो क्या देवगण भी वैसा उपकार नहीं कर सकते हैं। तुमने जो मुझे महामंत्र सुनाकर पशुयोनि से मनुष्य पर्याय में पहुँचाया है उसका मूल्य यद्यपि मैं नहीं चुका सकता फिर भी मेरी आप में परमभक्ति है, सो हे नाथ! मुझे आज्ञा दो मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? हे स्वामिन् ! आप यह मेरा समस्त राज्य ले लो और मैं अब आपका दास बनकर आपकी जीवन भर सेवा करता रहूँगा।" तब पद्मरुचि ने कहा—

"हे महापुरुष! यह महामंत्र का ही प्रभाव है मैं तो इसमें निमित्त मात्र हूँ।....."

उस मंदिर में दोनों का आपस में इतना प्रेम हो गया कि दोनों अभिन्न मित्र बन गये। दोनों ने मिलकर राज्य संचालन किया उन दोनों का संयोग चिर संयोग हो गया जो कि आगे मोक्ष जाने तक रहा है। आगे चलकर ये पद्मरुचि तो श्रीरामचन्द्र हुए हैं और वृषभध्वज सुग्रीव हुए हैं दोनों एक साथ मांगीतुंगी से मोक्ष गये हैं।

4.4.3 अनेक भवों तक चली दोनों की मित्रता—

उस समय वे दोनों मित्र सम्यक्त्व और अणुव्रत से सहित थे। उन्होंने मिलकर पृथ्वी पर अनेक जिनमंदिर बनवाये और बहुत सी रत्नमयी जिनप्रतिमाएं विराजमान करायीं। सैकड़ों स्तूपों से पृथ्वी को अलंकृत किया। अन्त में समाधि से मरण कर वृषभध्वज ईशान स्वर्ग में देव हुआ। इधर पद्मरुचि भी समाधिमरण से मरकर उसी ईशान स्वर्ग में वैमानिक देव हो गया।

कालांतर में यह पद्मरुचि का जीव देव वहाँ से चयकर विदेह क्षेत्र के विजयार्ध के राजा विद्याधर नंदीश्वर की कनकाभा रानी से नयनानंद नाम का पुत्र हुआ। यहाँ भी मुनिदीक्षा लेकर तपश्चरण के प्रभाव से मरणकर माहेन्द्र स्वर्ग में देव हो गया। वहाँ से चयकर क्षेमपुरी नगरी में राजा विपुलवाहन की रानी पद्मावती के श्रीचन्द्र नाम का पुत्र हुआ। यहाँ भी ये समाधिगुप्त मुनि से जैनेश्वरी दीक्षा लेकर महान तप अनुष्ठान करके ब्रह्मस्वर्ग में इन्द्र हो गये।

श्री सकलभूषण केवली कहते हैं—"हे विभीषण! इस ब्रह्मेंद्र की विभूति का वर्णन बृहस्पति सौ वर्ष में भी नहीं कह सकता है। अनंतर ये ब्रह्मेन्द्र वहाँ से चयकर राजा दशरथ की रानी कौशल्या—अपराजिता की पवित्र कुक्षि से श्रीरामचन्द्र नाम के बलभद्र हुए हैं।

4.4.4 सीता और रावण के भव-भवान्तर—

अब सीता और रावण आदि के भवों का खुलासा करते हैं—

मृणालकुंड नगर में विजयसेन राजा का पुत्र वज्रकंबु था, इसके शंभु नाम का पुत्र हुआ। इस राजा के पुरोहित का नाम श्रीभूति था। वह "गुणवती" कन्या का जीव मुनिनिंदा के पाप से हथिनि हुई थी वहाँ एक बार नदी के किनारे कीचड़ में फँस गई और मरणासन्न स्थिति में सूं-सूं कर रही थी तभी एक दयालु विद्याधर ने उसे णमोकार मंत्र सुना दिया। जिसके प्रभाव से वह वहाँ से मरकर इधर पुरोहित की पत्नी सरस्वती से "वेदवती" नाम की पुत्री हो गई। एक बार दिगम्बर मुनि की हंसी करते हुए पिता के द्वारा समझाये जाने पर वह श्राविका हो गई।

यह अतिशय रूपवती थी अतः कई एक राजकुमार इसे चाहते थे, इनमें भी शंभु राजकुमार खासकर इससे विवाह करना चाहता था किन्तु पुरोहित श्रीभूति ने यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि मिथ्यादृष्टि राजा चाहे कुबेर ही क्यों न हो उसे मैं अपनी पुत्री नहीं दूँगा। इससे कुपित हो शंभु ने रात्रि में सोते हुए पुरोहित को मार डाला। यह मरकर जैनधर्म के प्रसाद से देव हो गया।

वेदवती ने भी पिता के अभिप्राय अनुसार शंभु के साथ विवाह करने से इंकार कर दिया। तब एक दिन काम से संतप्त हो शंभु ने वेदवती से बलात् ही मैथुन सेवन किया। जिससे वह अत्यन्त कुपित हो बोली—"अरे नीच! तूने मेरे पिता को मारा है पुनः जबरन मेरे शील को भंग किया है अतः "मैं अगले भव में तेरे वध के लिए ही उत्पन्न होऊँगी।" ऐसा निदान बंध कर लिया। अनंतर इस बाला ने हरिकांता आर्यिका के पास जाकर आर्यिका दीक्षा लेकर घोरातिघोर तपश्चरण किया।

4.4.5 वेदवती द्वारा मुनि के ऊपर गलत आरोप लगाने से सीता की पर्याय में लोकापवाद उठाना पड़ा-

आर्यिका होने से पहले एक बार इस वेदवती ने उद्यान में सुदर्शन मुनि को देखा था वहाँ उन मुनि की सुदर्शना बहन आर्यिका अवस्था में उनके पास बैठी थी वे मुनि और उसे कुछ उपदेश दे रहे थे। इस वेदवती ने गाँव में आकर लोगों से कहा—"ये मुनि एक सुन्दर महिला से वार्तालाप कर रहे थे अतः वे निर्दोष कैसे हो सकते हैं ? इत्यादि।"

कुछ लोगों ने इसकी बात पर विश्वास नहीं किया और कुछ लोग विश्वास करने लगे। जब इस अपवाद का श्री मुनिराज को पता चला तब उन्होंने नियम ले लिया कि "जब तक मेरा अपवाद दूर नहीं होगा मैं आहार नहीं करूँगा।" तभी वनदेवता ने वेदवती को फटकारा जिससे उसने सभी से कहना शुरू किया कि "मैंने यह झूठा आरोप लगाया था।" पुनः उसने मुनि से भी क्षमा कराकर अन्य जनों को भी विश्वास दिलाया।

इस प्रकार वेदवती ने जो बहन-भाई की निंदा की थी उसी के फलस्वरूप सीता की पर्याय में उसे लोकापवाद का कष्ट उठाना पड़ा है। आचार्य कहते हैं कि—"यदि सच्चा दोष भी देखा हो तो भी जिनमतावलंबी को नहीं कहना चाहिए और कोई दूसरा कहता हो तो उसे सब प्रकार से रोकना चाहिए। फिर जो लोक में विद्वेष फैलाने वाले ऐसे जैनशासन संबंधी दोषों को कहता है वह दुःख पाकर चिरकाल तक संसार में भटकता रहता है। किये हुए दोष को प्रयत्नपूर्वक छिपाना यह सम्यग्दर्शनरूपी रत्न का बड़ा भारी गुण है। अज्ञान या मत्सरभाव से भी जो किसी के मिथ्या दोष को प्रकाशित करता है वह मनुष्य जिनधर्म के बिल्कुल ही बहिर्भूत है।"

4.4.6 वेदवती का जीव कालान्तर में सीता बना—

वेदवती समाधिमरण के प्रभाव से ब्रह्मस्वर्ग में देवी हुई। वहाँ से चयकर राजा जनक की रानी विदेहा से सीता नाम की पुत्री हुई है। गुणवती की पर्याय में जो गुणवान भाई था वही कुंडलमंडित होकर स्वर्ग गया था, वहाँ से च्युत हो यह भी विदेहा के गर्भ में एक साथ आ गया और ये दोनों युगलिया भाई-बहन हुए हैं भाई का नाम भामंडल है।

धनदत्त का भाई वसुदत्त ही लक्ष्मण हुआ है और उसका मित्र यज्ञबलि ही तू विभीषण हुआ है। जो वृषभध्वज राजकुमार था वही यह सुग्रीव हुआ है। श्रीकांत का जीव ही शंभु हुआ था पुनः वेदवती को न प्राप्त कर मिथ्यात्व से संसार में भ्रमण करता हुआ कदाचित् वह कुशध्वज ब्राह्मण की पत्नी सावित्री से प्रभासकुंद पुत्र हुआ वहाँ विचित्रसेन मुनि के समीप दिगंबरी दीक्षा धारण कर खूब तपश्चरण किया। एक बार सम्मेद शिखर की वंदना के लिए गया था। वहाँ आकाश में कनकप्रभ विद्याधर की विभूति देखकर निदान कर लिया, कि—"यदि मेरे तपश्चरण में कुछ माहात्म्य है तो मैं भी आगे ऐसा ही विद्याधर का वैभव प्राप्त करूँ।"

श्री गौतम स्वामी कहते हैं—"अहो! इस मूर्खता को धिक्कार हो! देखो, उसने त्रिलोकीमूल्य रत्न को शाक की एक मुट्ठी में बेच दिया।"

4.4.7 शंभु राजकुमार का जीव कालान्तर में रावण बना—

यह प्रभासकुंद मुनि अंत में समाधिमरण से मरकर सानत्कुमार स्वर्ग में देव हो गया वहाँ से च्युत हो लंका नगरी के राजा रत्नश्रवा की रानी कैकसी से यह "दशानन" पुत्र हुआ है। इसने बालिमुनि पर उपसर्ग करने के लिए जब कैलाशपर्वत उठाने की चेष्टा की तब उन मुनि की ऋद्धि के प्रभाव से कैलाश पर्वत के नीचे दबने से रोने लगा था तभी

से इसका "रावण" यह नाम प्रसिद्ध हो गया था।

गुणवती के निमित्त से जो वसुदत्त ने श्रीकांत को मारा था तभी से इन दोनों का वैर चला आ रहा था यही कारण है कि लक्ष्मण के द्वारा यह रावण मारा गया है।

इस प्रकार सकलभूषण केवली का उपदेश सुनकर सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये। अनेक भव्य जीव रावण और लक्ष्मण के परस्पर के कई जन्मों के वैर को सुनकर परस्पर में निर्वैर हो गये। मुनिगण संसार से भयभीत हो गये और कितने ही राजा लोग प्रतिबद्ध हो दीक्षा ग्रहण कर साधु हो गये।

"अहो! सम्यक्त्व का प्रभाव अचिन्त्य है। आगे रावण और लक्ष्मण के जीव, सीता के जीव चक्रवर्ती के पुत्र होकर सगे भाई-भाई होंगे।

4.5 सीता के जीव ने स्नेहवश श्रीराम मुनिराज का ध्यान भंग करने का प्रयास किया—

सीता का जीव प्रतीन्द्र अपने अवधिज्ञान से उन्हें देखकर स्नेह से आर्द्र हो वहाँ आता है और सोचता है कि "मैं इन्हें ध्यान से विचलित कर दूं तो ये मोक्ष न जाकर स्वर्ग में आ जावेंगे। यहाँ पर हमारे से मित्रता को प्राप्त होंगे। चिरकाल तक हम दोनों मेरु, नन्दीश्वर आदि की वंदना कर पुनः मर्त्यलोक में जन्म लेकर एक साथ निर्वाण प्राप्त करेंगे।' ऐसा सोचकर वहाँ आकर अपना सीता का रूप बनाकर उन्हें विचलित करने के लिए अनेक उपाय करता है, अनेक स्त्रियों को बनाकर उनके द्वारा गीत, नृत्य, हाव-भाव का प्रदर्शन कराते हुए ध्यान में विघ्न डालना चाहता है किन्तु महामना राम सुमेरु के समान अचल हैं।

4.5.1 श्रीराम को केवलज्ञान की प्राप्ति एवं समवसरण रचना—

वे ध्यान के प्रभाव से घातिया कर्मों का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त कर लेते हैं तब स्वर्ग में सौधर्म इन्द्र आदि के आसन कम्पित होते ही सब एक साथ वहाँ आ जाते हैं। आकाश में अधर समवसरण की रचना हो जाती है। श्रीराम केवली भगवान् उसमें कमलासन पर अन्तरिक्ष में विराजमान हैं। चारण ऋद्धिधारी मुनि आदि सभा में आ जाते हैं। बारह कोठों में सब यथा योग्य बैठ जाते हैं। उस समय यह सीता का जीव प्रतीन्द्र भी बार-बार नमस्कार कर प्रभु से अपने अपराध क्षमा करता हुआ प्रार्थना करता है—

'हे नाथ! मुझ दुर्बुद्धि के द्वारा किया हुआ दोष क्षमा कीजिए, प्रसन्न होइये और मुझे भी कर्मों का अन्त प्रदान कीजिए।"

मुनिराज की दिव्यध्वनि खिरती है—

"हे सुरेन्द्र! राग छोड़ो, वैराग्य से ही मुक्ति होती है और रागी मनुष्य संसार में डूब जाता है। जिस प्रकार कंठ में शिला को बांधकर नदी नहीं तिरी जा सकती है उसी प्रकार राग-स्नेह से संसार नहीं पार किया जा सकता है। जो गुरुओं के कहे अनुसार प्रवृत्ति करता है वही संसार का अंत कर सकता है।"

4.5.2 दशरथ आदि के भव-भवान्तर—

दिव्य उपदेश को सुनकर प्रतीन्द्र पूछता है—

"भगवन् ! दशरथ आदि भव्य जीव कहाँ गये हैं ? सभी मुझे बताओ।"

दिव्य वाणी खिरती है—

"हे सुरेन्द्र! दशरथ आनत स्वर्ग में देव हुए हैं। कौशल्या आदि माताएं, जनक और कनक आनत स्वर्ग में ही देव हुए हैं। लव-कुश निर्वाण को प्राप्त करेंगे, भरत भी मोक्ष पधारेंगे और तुम्हारा भाई भामंडल उत्तरकुरु भोगभूमि में आर्य हुआ है। हनुमान, सुग्रीव आदि भी इसी भव में मोक्ष जायेंगे।

"हे नाथ! मुझे निर्वाण की प्राप्ति कब होगी ?"

"सीतेन्द्र! रावण और लक्ष्मण जब विदेह क्षेत्र मे भाई-भाई होंगे पुनः देव होकर राजपुत्र होंगे पुनः स्वर्ग जायेंगे। तू स्वर्ग से आकर भरतक्षेत्र में चक्ररत्न नाम का चक्रवर्ती होगा तब रावण-लक्ष्मण के जीव वहाँ से आकर इन्द्ररथ और मेघरथ नाम के तुम्हारे पुत्र होंगे। रावण का जीव तीर्थंकर होगा तब तुम अनुदिश से आकर "उनके प्रथम गणधर होवोगे और निर्वाण को प्राप्त करोगे।" पुष्कर द्वीप के विदेहक्षेत्र में लक्ष्मण का जीव तीर्थंकर और चक्रवर्ती होकर निर्वाण को प्राप्त करेगा। मैं भी आज से सात वर्ष के बाद निर्वाण धाम को प्राप्त करूंगा।"

4.5.3 अच्युतेन्द्र ने नरक में जाकर रावण के जीव को सम्यक्त्व ग्रहण कराया—

आगामी भवों को सुनकर सीतेन्द्र बहुत ही प्रसन्न हो जाता है। वह पुनः तृतीय नरक में जाकर रावण के जीव को देखता है। शंबूक असुरकुमार देव हुआ था सो वहाँ रावण को लड़ा रहा है। सीतेन्द्र कहता है—

"रे रे पापी शंबूक! तू यह क्या कर रहा है ? अरे देख! वैर का फल कितना कटु होता है ? अब तो अधर्म को छोड़ और धर्म की शरण ले।" पुनः नारकियों को सम्बोधन करते हुए कहता है-

"अरे नारकियों! धर्म के बिना तुम लोग यहाँ आये हो अतः अब पाप से डरो। जिनेन्द्रदेव के द्वारा कथित सम्यक्त्व को ग्रहण करो।"

रावण का जीव पूछता है—

"आप कौन हैं ?" सीतेन्द्र कहता है—

"मैं सीता का जीव प्रतीन्द्र हूँ। तुम्हें मैं यहाँ से निकालकर अभी ऊपर ले चलता हूँ।"

यह कहकर जैसे ही इन्द्र उन्हें उठाता है वह नवनीत के समान पिघल जाता है पुनः उसका शरीर बन जाता है। जब लाखों उपाय के बाद भी वह इन्द्र उसे ऊपर लाने के लिए समर्थ नहीं होता है तब कहता है—

"हे भव्य! अब यहाँ पर तुम सम्यक्त्व रत्न को ग्रहण करो वही तुम्हें उत्तम गति में ले जाने में समर्थ है। हम तो क्या साक्षात् जिनेन्द्र भी तुम्हें यहाँ से आयु पूरी हुए बगैर अन्यत्र ले जाने के लिए समर्थ नहीं हैं।"

वह नारकी सम्यक्त्व ग्रहण कर लेता है और कहता है—

"हे देवेन्द्र! जाओ जाओ, तुम स्वर्गों के सुख का अनुभव करो। अब हमें श्री जिनेन्द्रदेव की ही शरण है जब हम यहाँ से निकलेंगे तब जिनदेव कथित धर्म को ही धारण करेंगे।"

उस समय सीतेन्द्र केवली भगवान् द्वारा कहे गये आगामी भवों को उन्हें सुना देता है और कहता है—

"हे रावण! जो स्त्री मुझे नहीं चाहेगी मैं उसका बलात् उपभोग नहीं करूँगा इस प्रतिज्ञा के निभाने से तूने मेरे साथ बलात्कार नहीं किया था इसी स्नेह से मैं आज यहाँ आकर तेरा हित करने में तत्पर हुआ हूँ।"

पुनः-पुनः उसे सम्बोधन कर वह देवेन्द्र अपने स्थान को चला जाता है।

4.5.4 मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र से श्रीराम ने प्राप्त किया मोक्ष—

राम की आयु सत्रह हजार वर्ष की थी और शरीर की ऊँचाई 64 हाथ प्रमाण थी। मुनि होने के बाद पच्चीस वर्ष पूर्ण होने पर वे योगों का निरोध करते हैं और अघातिया कर्मों का भी अंत करके शाश्वत सिद्धक्षेत्र को प्राप्त कर लेते हैं। वहाँ पर वे अनंत-अनंत काल तक परमानंदमय अव्याबाध सुख का अनुभव करते रहेंगे। भगवान् श्रीरामचन्द्र इस संसार में अब कभी भी पुनर्भव धारण नहीं करेंगे। ऐसे महामना श्रीरामचन्द्र का मर्यादाशील आदर्श जीवन सभी को मर्यादा पालन करने रूप आदर्श जीवन की चिरकाल तक प्रेरणा देता रहेगा।

4.6 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-"भाई! जो गति माता की होगी वह अपनी होगी" ये शब्द किसने कहे ?

(क) लक्ष्मण ☐
(ख) कुश ☐
(ग) सुग्रीव ☐

प्रश्न 2-उन क्षुल्लक का नाम बताइए जो राम को सीता की परीक्षा लेने के लिए मना करते हैं ?

(क) सिद्धार्थ ☐
(ख) अनंतवीर्य ☐
(ग) इनमें से कोई नहीं ☐

प्रश्न 3-राम के उस सेनापति का नाम बताओ, जो सीता को वन में छोड़कर आया ?

(क) विभीषण ☐
(ख) सुग्रीव ☐
(ग) कृतांतवक्त्र ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-सीता ने अपने शीलव्रत की परीक्षा देने के लिए राम को कौन-कौन सी शपथ बताई ? उनमें से राम ने क्या करने की आज्ञा दी ?

प्रश्न 2-जब सीता ने अग्नि में प्रवेश किया तो देवों ने क्या-क्या किया ?

प्रश्न 3-सती सीता को इस पर्याय में अपवाद का दु:ख क्यों सहना पड़ा ? उन्होंने पूर्व भव में क्या किया था ?

प्रश्न 4-राम एवं लव-कुश किन मुनि से दीक्षा लेते हैं ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-"लक्ष्मण राम में इतना अनुरक्त है कि वह प्राण देकर भी उनका कार्य करना चाहता है" इस बात की परीक्षा इन्द्र किस प्रकार लेता है ? वर्णन कीजिए ?

इकाई–2 जिनदर्शन प्रतिज्ञा का चमत्कार

इस इकाई में मुख्यरूप से निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया गया है—

(1) कैसे किया प्रतिज्ञा पालन सती मनोवती ने

(2) नियम के निंदक बने भिखारी

(3) मनोवती एवं बुद्धसेन का परिवार के साथ मिलन

पाठ-1–कैसे किया प्रतिज्ञा पालन सती मनोवती ने

1.1 बल्लभपुर में सर्वत्र मनोवती और बुद्धिसेन के विवाह की चर्चा—

सेठ हेमदत्त के घर की सजावट किसी राजमहल से कम नहीं दिख रही है, कहीं पर मोतियों की झालरें लटक रही हैं, कहीं पर मखमल के चंदोये बंधे हैं। दरवाजों-दरवाजों पर सुन्दर-सुन्दर रत्नों से जड़े हुए तोरण बंधे हुए हैं। कहीं पर रंग-बिरंगी काँच के झरोखे से छन-छन कर आती हुई सूर्य की किरणें इन्द्रधनुष की आभा बिखेर रही हैं तो कहीं पर रेशमी पर्दे आकाशगंगा के समान लहरा रहे हैं। घर और बाहर का भाग चारों तरफ से नगर के नर-नारियों से खचाखच भरा हुआ है। सेठानी हेमश्री आज खुशी से फूली नहीं समा रही हैं, सो ठीक ही है उसके लाडले सातवें पुत्र बुद्धिसेन की शादी होकर घर में अतिशय रूपवती बहू आई हुई है। आज सेठजी के यहाँ जीमनवार है। बल्लभपुर शहर के सभी स्त्री-पुरुष प्रसन्नमुख दिख रहे हैं, कोई जीमकर जा रहे हैं और कोई आ रहे हैं। गली-गली में धूम मची हुई है। सभी के मुख पर एक ही चर्चा है कि भाई! हेमदत्त सेठ का आखिरी संबंध बहुत अच्छा हुआ है, उन्हें बहुत अच्छे समधी मिले हैं। हस्तिनापुर के सेठ महारथ बावन करोड़ दीनारों के धनी हैं, उनकी सुपुत्री मनोवती बहुत ही सुशील कन्या है। उसने भी पूर्वजन्म में महान् पुण्य अर्जित किया होगा जो उसे ऐसा घर और वर मिला है, क्या सुन्दर अनुरूप जोड़ी है ? कोई महिला चर्चा कर रही है, अरी बहन! अपने सेठ हेमदत्त भी छप्पन करोड़ दीनारों के मालिक हैं। इनके बड़े-बड़े व्यापार हैं, ये बड़े नामी जौहरी हैं। सुना है कि इनके नये समधी भी बहुत विख्यात जौहरी हैं। वे भी तो बल्लभपुर शहर में बहुत ही विख्यात पुरुष हैं। दूसरी बोल उठती है—बहन! सम्पत्ति का क्या देखना, बस लड़के को लड़की अनुकूल चाहिए और लड़की को पति अनुकूल चाहिए जिससे उन दोनों का दांपत्य जीवन सुख से चले। फिर यदि पैसा भाग्य में है तो लड़का अपने आप अपने पुरुषार्थ से कमाकर धनी बन जाता है और भाग्य में नहीं है तो कई पीढ़ियों का कमाया हुआ धन भी पता नहीं चलता कि किधर चला जाता है। मैं तो मेरी कन्या के लिए यही सोचा करती हूँ कि इसे पति धर्मात्मा मिले। तीसरी बोलने लगती है—सच है बहन, मेरी लड़की का पति दुर्व्यसनी है, सारी बाप की कमाई की पचासों करोड़ सम्पत्ति बरबाद कर दी। मेरी लड़की के गहने जेवर भी बेच कर खा गया। क्या करूँ, मैं तो बहुत दुःखी हूँ। तभी एक महिला बोलने लगती है—हाँ सच है बहन! इस मनोवती ने तो खूब ही पुण्य किया होगा, तभी इसे सर्वगुणसम्पन्न पति मिला है। इस प्रकार से शहर में तरह-तरह की मधुर चर्चायें चल रही हैं।

1.1.1 मनोवती ने लिया मौन-

सेठ हेमदत्त अपनी बैठक में आनन्द से बैठे अपने रिश्तेदारों से मनोविनोद कर रहे हैं। अकस्मात् सेठानी जी पहुँचती हैं तो सभी इधर-उधर हो जाते हैं। सेठानी उदासमुख हुई यथोचित स्थान पर बैठ जाती हैं। सेठ जी सेठानी को चिंतित उदास मुख देखकर आश्चर्य से पूछते हैं—कहिये, क्या बात है ? अपने यहाँ आज तो चारों तरफ मंगल ही मंगल हो रहा है, खुशी का कोई पार नहीं है, फिर इस समय आपका मुख उदास क्यों दिख रहा है ? अरे! घर में कामकाज करने वाले तो बहुत लोग हैं और फिर दास-दासियाँ आपके इशारे पर दौड़ रहे हैं फिर भला आप इतना क्यों थक गयीं ? सेठानी विनम्रता से उत्तर देती हैं कि मैं कामकाज से नहीं थक गई किन्तु मेरी चिन्ता का कुछ कारण दूसरा ही है।

"सो क्या है ?"

"नई बहू तो मौन लिए बैठी है कुछ बोलती ही नहीं है।"

"तो क्या हो गया ? इसकी चिन्ता तुम्हें क्यों हो गई ? (हँसने लगते हैं)"

"अभी तक घर की किसी भी महिला ने खाना नहीं खाया है और आप कहते हैं कि चिन्ता क्यों हो गई ?"

सेठ जी आश्चर्यचकित होकर पूछते हैं—

"क्यों ? खाना नहीं खाने का क्या कारण है ?"

"जब सब जीमन निपट चुका, तब हमने सभी आगत मेहमानों को भी जिमा दिया, आप लोग सभी जीमकर आ गये। तब मैं बहू के पास गई और बोली कि बहू! चलो भोजन करो, मुझे खड़े-खड़े घंटों हो गये किन्तु वह कुछ बोलती ही नहीं है।"

"अरे! यह रंग में भंग कहाँ से आ गया है ?"

सेठजी एक मिनट कुछ सोचते हैं पुनः सेठानी को समझाते हुए कहते हैं—

"आप चिन्ता न करें। मेरी समझ में नयी बहू संकोच कर रही होगी, छोड़ो, आप सभी लोग भोजन कर लो फिर देखा जायेगा।"

1.1.2 हस्तिनापुर में खबर होते ही माता-पिता को चिन्ता हुई—

सेठानी वापस चली आती हैं, सब लोग भोजन कर लेते हैं। मनोवती निश्चिंत और प्रसन्नचित्त अपने मन में णमोकार मंत्र का जाप कर रही है। दूसरे दिन भी यही स्थिति रहती है। तब सेठजी कहते हैं देखो! आज अपने सभी परिवार के लोग भी भोजन नहीं करेंगे, तभी भेद खुलेगा अन्यथा नहीं। फिर भी मनोवती मौन है, मन में महामंत्र का जाप चल रहा है। जब पूरे परिवार ने अन्न-जल नहीं लिया और फिर भी बहू ने मौन नहीं छोड़ा, तब सेठजी ने तुरंत ही हस्तिनापुर खबर भेज दी। सेठ महारथ और सेठानी महासेना एकदम घबरा उठे। हाय! मेरी पुत्री पर यह क्या मुसीबत आई ? और तत्क्षण ही अपने पुत्र मनोज कुमार को बल्लभपुर के लिए रवाना कर दिया और आप चिंतित हो सोचने लगे—

महासेना माता बोलती हैं कि—

"विदा करते समय मैंने मनोवती को कितनी शिक्षाएं दी थीं कि बेटी! अब तू जहाँ जा रही है, वही तेरा घर है। तेरी सासू हेमश्री ही तेरी माता हैं और तेरे ससुर हेमदत्त ही तेरे पिता हैं। तू उन्हें कुछ दिन में इतना आकर्षित कर लेना कि वे तेरे विषय में यह पुत्रवधू है या पुत्री ? ऐसा भेद ही न कर सकें ?"

महारथ सेठ भी कहते हैं—

"मैंने भी तो यही शिक्षा दी थी कि बड़ों की आज्ञा पालना और छोटों पर प्यार रखना, जिससे घर में वातावरण सदैव सुखद स्वर्ग जैसा रहेगा।"

"अपनी कन्या पर मुझे विश्वास है कि उससे कोई भी गलती नहीं हो सकती है। फिर भी पता नहीं क्या कारण है जो कि वह तीन दिन से भूखी है ?"

माता रो पड़ती है तभी सेठ जी सान्त्वना देते हुए कहते हैं—

"आप इतनी समझदार होकर यह बच्चों जैसे कार्य क्यों कर रही हो ? शांति रखो, मनोज गया है। वह आयेगा तो सारी बात स्पष्ट हो जायेगी। व्यर्थ ही मन में नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प करके मन को क्यों खिन्न कर रही हो ?"

"सच है, पुत्रियों के पीछे सदैव दुःख ही दुःख रहते हैं। युवती हुई तो ब्याह की चिन्ता ? ब्याह हो जाये तो उसको विदा करते समय कलेजा फटता है, उसको याद कर-करके रोना आता रहता है और यदि उसे ससुराल में सुख न मिला तो फिर रातदिन घुलन ही घुलन रहती है।"

"व्यर्थ ही इतना संताप क्यों करती हो ? तुम्हें क्या पता, सारी हस्तिनापुरी नगरी के लोग इस घर और वर की

सराहना कर रहे हैं और फिर ससुराल की अनुकूलता तुम कैसे नहीं समझ रही हो ? देखो! उस आदमी ने तो यह भी बताया था कि कल के दिन सेठजी स्वयं निराहार रहे हैं और सारे परिवार ने भी भूख हड़ताल कर दी है कि जिससे बहूरानी कुछ बोलें और भोजन करें किन्तु वह फिर भी मौन है।"

इतना सुनकर सेठानी चुप हो जाती हैं और सेठजी बाहर चले जाते हैं।

1.1.3 मनोवती ने भाई को अपनी दर्शन प्रतिज्ञा के विषय में बताया—

मनोजकुमार बल्लभपुर पहुँचकर सेठजी के घर पर पहुँचते हैं। सब लोग स्वागत करते हैं। पुनः पहले यही बोलते हैं—भाई! आपकी बहन ने तीन उपवास कर लिये, आज चौथा दिन है। क्या कोई व्रत चल रहा है ? या अन्य कोई कारण है ? पहले इस बात का निर्णय करो, पीछे कोई अन्य बात होगी। मनोज बहन से मिलता है और बोलता है—

"बहन! तुमने यह क्या किया ? यहाँ के मंगलमयी वातावरण को अमंगलीक क्यों बना दिया ? तुमने भोजन क्यों नहीं किया ?"

"भ्रात! मैंने महामुनि के निकट ऐसी प्रतिज्ञा ली थी कि जब मैं जिनमंदिर में जिनेन्द्रदेव के समक्ष गजमोती चढ़ाऊँगी, तब भोजन करूँगी। सो भाई! यहाँ पर कहीं मुझे गजमोती तो दिखते नहीं हैं अतः तुम कुछ नहीं बोलना, बस जल्दी से मुझे घर लिवा ले चलो, मैं वहीं गजमोती के पुंज चढ़ाकर जिनदर्शन करके भोजन करूँगी।"

मनोज सेठ हेमदत्त से मिलकर निवेदन करते हैं कि आप अभी इसे मेरे साथ भेज दीजिए। घर पहुँच कर भोजन करेगी। आप कोई चिन्ता न करें। लड़की भोली है। संकोच कर रही है। तब सेठ जी ने कहा आपकी यह बात कुछ महत्त्व नहीं रखती है। जो कारण है, सो आपको स्पष्ट करना ही पड़ेगा। फिर यहीं पर भोजन करने के बाद मैं तुम्हारे साथ विदा कर दूँगा। तब मनोज कुमार ने सारी स्थिति स्पष्ट कर दी। सेठ जी सुनकर हँस पड़े और तत्क्षण ही अन्दर पहुँचकर बहू को पुत्री के समान समझाते हुए बोले—बेटी मनोवती! तूने व्यर्थ ही संकोच क्यों किया ? मुझे क्यों नहीं बताया ? और इतना कहते ही तुरंत भंडारी को बुलाकर भंडार खुलवा दिया।

1.1.4 मनोवती ने गजमोती चढ़ाकर भोजन किया, सभी ने उसके धैर्य की प्रशंसा की—

हीरे-मोती-माणिक और रत्नों के ढेरों की जगमगाहट से देखने वालों की आँखें चकाचौंध हो गईं। उनका प्रकाश घर भर में फैल गया, मानों सेठजी का पुण्य ही अपना उद्योत फैला रहा है।

मनोवती ने सास-श्वसुर की आज्ञा से स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहन कर गजमोतियों के पुंज डिब्बी में रखे और जिनमंदिर पहुँच गई। अतीव भाव-भक्ति से श्री जिनेन्द्रदेव के दर्शन करके अपने जीवन को कृतार्थ माना और प्रभु के सन्मुख गजमोतियों के पुंज चढ़ा दिये। घर आकर भोजन किया। अनन्तर मनोज कुमार के आग्रह से सेठजी ने बहू की पीहर के लिए विदाई कर दी। सभी ने उसके धैर्य की सराहना की। देखो! बहू बहुत ही सुलक्षणा है। अपने नियम के निर्वाह में अटल है। धैर्य के साथ तीन उपवास कर गई, रोने-धोने का काम नहीं, घबराने का भी काम नहीं, प्रसन्न मुख ही रही। यह एक होनहार स्त्रीरत्न है।

1.2 गजमोती देख आश्चर्यचकित हुआ माली—

मालिन अपने पतिदेव से कह रही है। देखो न! कितने बेशकीमती मोती हैं। माली की आँखें मोतियों की जगमगाहट से उन पर नहीं टिक रही हैं। वह स्तब्ध रह जाता है। ओहो! बहुत बड़े आश्चर्य की बात है। मेरे यहाँ न जाने कितनी पीढ़ियों से इसी मंदिर जी की सेवा का काम चल रहा है, मेरे पुरखों ने कभी भी ऐसा बढ़िया मोती आँखों से भी नहीं देखा था। आज इस बल्लभपुर में कौन ऐसा पुण्यवान् आया है जो इन मोतियों को चढ़ा गया है ? क्या मंदिर जी में देवता लोग तो नहीं आये हैं ? हमने बहुत बार अपने बाबा के मुख से सुना था कि जैन मंदिर जी में कभी-कभी देवता लोग दर्शन को आया करते हैं। हो सकता है उन्होंने ऐसे दिव्य मोतियों के पुँज चढ़ाए हों ? कुछ भी हो, देखो चुन्नू की माँ! इन्हें अपने घर

में नहीं रखना है। मालूम है तुम्हें! अगर राजा को पता चल जायेगा कि एक माली के घर इतनी उत्तम वस्तु है तो वह मुझे चोर समझकर मेरी सारी संपत्ति लुटवा लेगा और मुझे देश से भी निकाल देगा।

1.2.1 माली ने गजमोती को हार में गूंथकर राजा को भेंट किया—

भाई! यह बढ़िया माल अपने घर में कैसे रखा जा सकता है ? इसलिए तुम बगीचे से बढ़िया चमेली के फूल ले आओ और उन फूलों के साथ में इनकी माला बनाकर राजमहल में ले जाना। तुम्हें इनाम भी अच्छा मिलेगा ! समझ गई ना.....बस चतुराई से काम करना।

मालिन बहुत ही सुन्दर हार गूंथकर राजमहल में पहुँच जाती है और महाराजा साहब की छोटी महारानी के गले में पहना देती है। रानी विभोर हो उठती हैं और उसे बहुत सी सुवर्ण की मुहरें इनाम में दे देती हैं। उधर बल्लभपुर नरेश मरुदत्त महाराज को रनवास से कुछ सूचना मिलते ही वे अकस्मात् राजदरबार से चलकर बड़ी महारानी मनोरमा जी के महल में पधारते हैं और महारानी की अतीव विक्षिप्त मन:स्थिति को देखकर अवाक् रह जाते हैं—

"प्रिये! राजवल्लभे! अकस्मात् ही तुम्हारी चिन्ता का क्या कारण है ? कहो शीघ्र ही स्पष्ट कहो!.....किसकी मृत्यु नजदीक आई है कि जिसने तुम्हारे मन को व्यथित किया है ? क्या उसे नहीं मालूम कि मेरा शासन कितना कठोर है ?"

महारानी जैसे-तैसे अपने धैर्य को संभालकर आँसू पोंछते हुए बोलती हैं—

"महाराज! अब मैं इस घर में जीवित नहीं रह सकती। ओह!.....मेरा इतना अपमान!.....आपका मेरे प्रति सब दिखावटी प्रेम है, आपको तो अपनी कुसुमा रानी पर ही सच्चा प्रेम है और यही कारण है कि आज यह दुर्दिन मुझे देखने को मिला। बस अब मुझे आपका किंचित् भी प्रेम नहीं चाहिए। मुझे तो बस एकमात्र विष चाहिए।"

महाराज का सारा शरीर निश्चेष्ट जैसा हो जाता है। वे एकटक महारानी को देखते ही रह जाते हैं पुन: सान्त्वना देते हुए कहते हैं—

"प्राणवल्लभे! तुमने आज मेरे प्रति यह अन्यथा कल्पना कैसे बना ली है ? क्या मैंने कभी तुम्हारी उपेक्षा की है ? अथवा तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट दिया है ? कहो तो सही आखिर बात क्या है ? मेरे हृदय को इस तरह क्यों व्यथित कर रही हो ?"

"बस, बस! अब आप अपनी इन चिकनी-चुपड़ी बातों को रहने दीजिए। अब तो जो होना था, सो हो ही गया। अब मुझे इस संसार में रहकर ऐसा अपमान नहीं झेलना है।"

"देवि! बिना कुछ कहे आखिर मैं कोई केवलज्ञानी तो नहीं हूँ, तुम अपने अपमान को बताओ तो सही! फिर देखो उसका सही प्रतिकार होता है या नहीं ? एक बार मुझे प्रेम की परीक्षा में उत्तीर्ण होने का अवसर तो दो ? बोलो, किसने तुम्हारा अपमान किया है ?

"नाथ! इस नगर में मेरा क्या सम्मान है ? आप ही बताइये! जब जाति की मालिन भी मेरा अपमान कर सकती है तो इससे बढ़कर दु:ख की बात मेरे लिए अब और कौन सी हो सकती है ?"

महाराज अतीव आश्चर्य के साथ आगे की पूरी बात समझने की इच्छा व्यक्त करते हैं—

"अरे! मालिन!.....उसने क्या अपमान किया है ?"

"वह आज एक सुन्दर हार बनाकर लाई थी जिसमें एक-एक चमेली की कली के बीच में बहुत ही ऊँची जाति के सुन्दर-सुन्दर गजमोती गुंथे हुए थे। उसने वह हार.....आपकी प्राणप्यारी महारानी कुसुमाजी को पहना दिया। यदि आप उसका सम्मान अधिक न करते होते तो मालिन का भला ऐसा अतिसाहस क्यों होता ?"

राजा मरुदत्त सारी स्थिति को स्पष्ट समझ लेते हैं और एक बार तो उस मालिन के प्रति क्रोध से आगबबूला हो उठते हैं। दूसरे ही क्षण अपने को एक तुच्छ महिला के प्रति क्रोध करना कर्तव्य नहीं है, ऐसा सोचकर अपने क्षत्रियोचित धर्म

को लक्ष्य में रखते हुए रानी को सान्त्वना देते हैं—

"महादेवि! बस!.....इतनी तुच्छ सी बात को लेकर आपको इतना विषाद! ओह!.....वल्लभे! उसके लिए तो मालिन ने फूल सहित मोतियों का हार बनाया है और तुम्हारे लिए बस एकमात्र गजमोतियों का ही हार बनवाऊँगा। उठो, मुखप्रक्षालित करो और विषाद का सर्वथा त्याग कर यह भाव भी मन से निकाल दो कि मेरे हृदय में तुम्हारे सम्मान में किंचित्मात्र भी कमी है। देखो! तुम इतनी समझदार स्त्रीरत्न होकर इन क्षुद्र बातों में नाना प्रकार के विकल्पों को क्यों कर रही हो ?"

महाराज स्वयं महारानी का हाथ पकड़कर उठाकर मुख प्रक्षालित कराते हैं और वातावरण शान्त हो जाता है।

1.3 महाराजा मरुदत्त ने दिया सभी जौहरियों को राजदरबार में आने का आदेश—

दूसरे दिन महाराज मरुदत्त रत्नों से जटित सिंहासन पर विराजमान हैं। दूसरी तरफ मंत्री, आमात्यगण बैठे हुए हैं और सामने एक तरफ सभासद लोग उपस्थित हैं। वातावरण प्रसन्न है, समय देखकर राजा ने मंत्री से कहा—

"मंत्रिन्! बल्लभपुर शहर के सभी जौहरियों को बुलाना है।"

"जो आज्ञा महाराज!"

मंत्री ने शीघ्र ही कर्मचारियों को बुलाकर आदेश दिया कि जाओ! शहर के सभी जौहरियों को राजदरबार में उपस्थित होने के लिए सूचना करो। कर्मचारियों ने तत्काल ही सरकार की आज्ञा शिरोधार्य करके प्रत्येक जौहरी की दुकान-दुकान पर पहुँच कर उन्हें महाराज का आदेश सुना दिया कि महाराज ने आप सबको याद किया है। तब सभी जौहरी सेठ आपस में मिलकर विचार-विमर्श करने लगे, क्या कारण है जो आज महाराज ने हम सबको ही अकस्मात् बुलाया है ? अवश्य ही कुछ न कुछ रहस्य होना चाहिए ? जो भी हो, अन्त में सबों ने यही निर्णय किया कि अपन सब लोग एक साथ चलें और कोई भी बात हो, उसका उत्तर भी एक तरह का ही होना चाहिए। सब दरबार में उपस्थित होते हैं। महाराज भी सबका विशेष रूप से सम्मान करते हैं और सभा में बैठने का आदेश देते हैं। कुछ क्षण कुशल समाचार के अनन्तर महाराज मंद-मंद मुस्कान से सभासदों को अभिषिक्त करते हुए के समान ही बोलते हैं—

"आप लोग जौहरी हैं अतः गजमोती पैदा कर दीजिए और जो कीमत लगे सो हमसे लीजिए।"

सभी सेठगण एक क्षण आपस में एक-दूसरे का मुख देखने लगते हैं, पुनः उन्हें जब उस समूह में कोई भी इस कार्य के लिए सक्षम नहीं दिखता है तब वे एक स्वर में कहते हैं—

"महाराज! यह काम तो हम लोगों में से कोई भी नहीं कर सकता है। गजमोती पैदा करना बहुत कठिन काम नहीं असंभव ही है।"

"देखो! कुछ क्षण और सोच लो, सभी लोग अपने-अपने को तोल लो, फिर बोलो।"

1.3.1 सभी जौहरियों ने किया गजमोती होने की आनाकानी-

कुछ देर बाद भी सभी जौहरी यही उत्तर देते हैं कि हम लोगों में से किसी के यहाँ भी गजमोती नहीं हैं और न ही हम लोग कहीं से ला सकते हैं। उन्हीं में हेमदत्त सेठ भी थे उन्होंने भी ना कर दिया। पुनः सभी लोग महाराज से निवेदन करते हैं—

"महाराज! और कुछ आज्ञा दीजिए कि जिसका हम लोग पालन कर सकें।"

"बस! हमें इस समय गजमोतियों की आवश्यकता थी। आप किसी के पास नहीं हैं सो ठीक! लेकिन ध्यान रखना, आज से लेकर आगे भविष्य में भी कुछ दिन बाद भी, छह महीने या वर्ष बाद भी यदि किसी के यहाँ गजमोतियों का पता चल गया तो समझ लेना हाँ!.....बस!.....उसकी खैर नहीं है। उसको इतना कड़ा दंड दिया जायेगा कि उसकी खाल खींचकर उसमें भूसा भर दूँगा।"

उस समय महाराज मरुदत्त का चेहरा एकदम लाल सुर्ख हो रहा था और अधर ओंठ फड़क रहा था। फिर भी जैसे-तैसे महाराज ने अपने क्रोध को शांत किया और मन मसोस कर रह गये। वे आखिर कर भी क्या सकते थे ? मंत्रीगण

धीरे-धीरे क्षुब्ध वातावरण को शांत कर देते हैं और अन्य विषय की चर्चा छेड़ देते हैं। अनन्तर कुछ देर बाद सभा विसर्जित कर दी जाती है और सभी अपने-अपने घर आ जाते हैं।

1.3.2 सेठ हेमदत्त की चिन्ता का कारण बना मनोवती का गजमोती चढ़ाना—

सेठ हेमदत्त भी अपने घर पहुँचते हैं और अत्यन्त चिंता समुद्र में डूब जाते हैं। सोचते हैं, हाय! हाय यह क्या हुआ ? हाय! मेरे मुख से हाँ क्यों नहीं निकला ? मैंने भी सबके साथ में न क्यों कर दिया ? मेरा कौन से कर्म का उदय आ गया ? क्या मेरी जिन्दगी अब शेष नहीं है ? ओह! चार-छह महीने बाद पुनः बहू आयेगी। वह गजमोती चढ़ायेगी। वह तो किसी भी हालत में नहीं मानेगी चूँकि उसका नियम है। जब उसने पहली बार में आकर तीन उपवास कर डाले तो पुनः उसे कैसे रोका जा सकता है ? अब क्या होगा ?.....उसी समय सेठ जी अपनी बैठक में बैठ जाते हैं और तत्क्षण ही अपने बड़े छहों पुत्रों को बुला लेते हैं तथा किवाड़ बंद करके एकांत में मीटिंग करते हैं।

"बेटे धनदत्त! इस विषय पर तुम्हारा क्या अभिमत है ? कहो, यह तो बहुत बड़ा धर्मसंकट आया हुआ है। अब मेरी तो कुछ बुद्धि काम नहीं करती है। बोलो बेटा! अब क्या करना होगा ?"

"पूज्य पिता! आप इतने चिंतित क्यों हो रहे हैं ? अरे! जब आपके हाथ में पूरी सत्ता है, हम सब आपके आदेश को पूर्णतया पालन करते आ रहे हैं और करते रहेंगे, आपका कोई पुत्र भी ऐसा नहीं है जो कि आपकी आज्ञा में मीन-मेख निकाल सके। पूज्यपाद! आप तो जो उचित समझिये सो आदेश दीजिए।"

"मैं तो किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहा हूँ। बहू तो घर में आयेगी ही और गजमोती चढ़ायेगी ही। फिर क्या होगा..... ?"

"पिताजी! क्या बहू का घर में आना जरूरी ही है ?"

सेठ हेमदत्त एकदम चौंक उठते हैं-

"ऐं! बेटा! तुम यह क्या कह रहे हो ? क्या बहू छोड़ दी जायेगी ?"

"नहीं, नहीं, पिताजी!.....मैंने यह तो नहीं कहा कि बहू को छोड़ देना होगा या बुद्धिसेन की दूसरी शादी करनी होगी।"

"तो तुम्हारा क्या अभिप्राय है ? कहो सो सही!"

"तात! मेरी समझ में तो यही आता है कि आप ऐसी दुर्घटना के प्रसंग में बुद्धिसेन को ही घर से निकाल दीजिए। न होगा बाँस न बजेगी बांसुरी। जब बुद्धिसेन ही घर में नहीं होगा तो बहू कैसे घर में आयेगी ?"

धनदत्त अपने पाँचों भाइयों का मुख देखने लगते हैं और सभी संकेत से स्वीकृति देकर उसी की बात का समर्थन कर देते हैं—

"ओहो! पिताजी! आपकी चिंता को समाप्त करने का और अपने ऊपर आने वाले संकट को दूर करने का भाई साहब ने कितना बढ़िया उपाय सोचा है। बस, बस, यही बात हम सबको जँच रही है। आपको यही आदेश दे देना चाहिए और बहुत ही जल्दी करना चाहिए। इसमें आपको कुछ भी आगा-पीछा नहीं सोचना चाहिए।"

सेठजी अपना माथा धुनने लगते हैं और उनकी आँखों से टपाटप आँसू टपकने लगते हैं—

"हाय हाय! यह क्या हो गया ? बेटा! मेरे से ऐसा कार्य असंभव है। मैं इस निरपराधी सुकोमल सुकुमार बुद्धिसेन को कैसे घर से निकाल दूँ ? भला उसने किसी का क्या बिगाड़ा है ?"

सभी एक साथ बोल उठते हैं—

"तो ठीक है पिताजी! वह आपका लाडला है तो आप उसे न निकालिये। हम छहों भाई अपनी भार्याओं के साथ निकल जायेंगे। कोई चिंता की बात नहीं है, आप शान्ति की श्वांस लीजिए। पिताजी! आपके अश्रु हम लोग देख नहीं सकते हैं, न तो जीवन में हमने कभी आपकी आँखों में पानी देखा था और न ही अब देखने का प्रसंग लाना चाहते हैं। बस आप धैर्य धारण करें। हम लोगों का यह अन्तिम निर्णय है।"

सेठजी एकदम विह्वल हो उठते हैं और पुत्रों को पकड़कर अपने वक्षस्थल से लगा लेते हैं—

"प्यारे पुत्रों! तुम लोग यह क्या बोल रहे हो ? क्या तुम लोगों के चले जाने के बाद हमारी आँखों का पानी रुक जायेगा ? क्या तुम्हारी माता अपने प्राण धारण रख सकेगी ? उसकी क्या स्थिति होगी और मेरी क्या गति होगी ? तुम लोगों को भला कुछ तो सोचना चाहिए।"

धनदत्त, सोमदत्त आदि पुत्र पिता के वक्ष से अपने को अलग करते हैं और पुनः दीर्घ निःश्वास लेकर कुछ क्षण बाद बोलते हैं—

"पिताजी! इस समय आपके सामने अपने वंश की रक्षा का, अपनी सम्पत्ति की रक्षा का एक ही उपाय है कि या तो आप उस एक बुद्धिसेन को अपनी आँखों से ओझल करें या तो हम छहों को ? इसके सिवाय अपने कुल की या अपने धन की रक्षा के लिए आपके पास कोई भी चारा नहीं है। आप स्वयं सोचें।"

1.3.3 सेठ हेमदत्त ने पुत्र बुद्धिसेन को पत्र द्वारा दिया घर से निकलने का आदेश—

सेठजी कुछ क्षण तक नाना ऊहापोहों में अपने आपको भूल जाते हैं पुनः सावधान हो अपने मोह को संवृत कर बुद्धिसेन को निकालने की बात सोचते हैं। पुत्रों के कहे अनुसार हाथ में कागज और लेखनी लेकर उसे घर से निकल जाने का आदेश लिखना चाहते हैं परन्तु कलम उनकी जहाँ की तहाँ स्थित है। वे मन ही मन विचार कर रहे हैं.....कहाँ से यह बहू आई जो कि डाकिन बन गई, हाय! वह तो मेरी आँखों के तारे को ही मुझसे जुदा कर रही है। कहाँ की इसकी प्रतिज्ञा है कि गजमोती चढ़ाना ? यह भी कोई नियम है ? बड़ी शहंशाह की पुत्री बनी है। ऐसा मालूम पड़ता है कि इसे अपने पिता की सम्पत्ति का बहुत बड़ा गर्व था कि जिससे इसने ऐसा नियम ले रखा है, बड़ी धर्मात्मा बनी हुई है।.....

सेठजी के मन में उस मनोवती के प्रति और उसकी प्रतिज्ञा के प्रति नाना प्रकार की अवहेलना के भाव उठ रहे हैं। वे पुनः एक बार अपने बड़े पुत्र धनदत्त की तरफ देखकर बोल उठते हैं—

"बेटा! अपने को यह कैसी पुत्रवधू मिल गई ? और कैसी निराली इसकी प्रतिज्ञा है ? जो कि आज हम सबको संकट में डालने के लिए कारण बन रही है। यह भी कोई नियम है कि रोज ही गजमोतियों के पुंज चढ़ाना और फिर भोजन करना। क्या चावल के पुंजों से, नाना तरह के फलों से, फूलों से और अनेक प्रकार के सरस व्यंजन पकवान से, अष्ट द्रव्य के भरे हुए थालों से पूजा नहीं होती ? भगवान् संतुष्ट नहीं होते ? इसे क्या सूझी जो इसने ऐसी प्रतिज्ञा ले ली ?"

"सचमुच में बात यही है। प्रतिज्ञा लेने का भी कोई तरीका होता है चाहे जो कुछ ले लिया। भला उसे यह भी तो सोचना चाहिए था कि जब मैं ससुराल जाऊँगी तो क्या होगा ? जब उसे यहाँ गजमोती न मिलते तो ? यदि घर में या अपने शहर में ही गजमोती न होते तो ?.....क्या होता ? कब तक भूखी रहती ? वास्तव में लड़की निरी मूर्ख दिखती है और पापिनी भी। जभी तो उसके घर में पैर रखते ही ऐसी समस्या आकर खड़ी हो गई है। यह क्या घर को निहाल करेगी ? यह तो सभी को मृत्यु के मुख में पहुँचाने के लिए साक्षात् कोई महामारी ही है या कोई चुड़ैल ही है जो कि बहू के रूप में आ गई है। इसका काम बहुत जल्दी खत्म करना होगा नहीं तो पता नहीं और भी क्या-क्या आपदाएं आ जावें ?"

सेठजी बहू की प्रतिज्ञा की निन्दा तो कर डालते हैं किन्तु पुनः उसके भोले चेहरे को स्मरण में लाकर विह्वल हो उठते हैं। ओहो! वह कितनी भोली कन्या थी! साक्षात् देवी का ही तो रूप! क्या तो उसके नियम की दृढ़ता! ओह! यह मेरा छोटा पुत्र मुझसे एक मिनट को भी दूर हो तो कलेजा फटने लगता था और अब मैं इसे निकालकर घर में कैसे रहूँगा ? हेमश्री के मन में क्या बीतेगी ? अभी तो उसे कुछ पता नहीं है और यदि उसे पता चल जायेगा तो शायद उसको घर से निकालना शक्य नहीं होगा फिर क्या होगा ? क्या सचमुच में ये छहों बेटे चले जायेंगे ? क्या ये सुपुत्र मेरी छाती पर वज्रप्रहार कर देंगे ?.....सेठजी इन्हीं चिन्ताओं में डूबते-उतराते हुए हाथ में लेखनी लिये हैं। लिखना चाहते हैं किन्तु

उनकी आँखों से वर्षा ऋतु के समान झड़ी लग जाती है। उन्हें कागज दिखता ही नहीं है। इसी बीच में धनदत्त ने पिता के हाथ से कागज और कलम छीन लिया और बोला—"पिताजी! लाइये, आपका आदेश मैं लिख देता हूँ।"

सेठजी बिलख-बिलख कर रोने लगते हैं और मन ही मन बहू की प्रतिज्ञा को कोसते हैं। धनदत्त पत्र लिखता है—

"प्रिय बुद्धिसेन! यदि तुम्हें पूज्य पिताजी के वचन मान्य हैं तो इस घर की देहली के अन्दर पैर नहीं रखना, वापस उल्टे पैर इस देश से बाहर चले जाना। आपके लिए यह पिता का आदेश है।"

1.3.4 बुद्धिसेन ने पिता की आज्ञा का पालन किया—

धनदत्त ने धाय को आवाज देकर बुलाया और उसे वह कागज देकर कहा। जाओ! तुम दरवाजे पर बैठ जाओ! जब बुद्धिसेन आयेगा उसे यह कागज दे देना। कह देना कि पहले यह पत्र पढ़े और फिर अन्दर प्रवेश करे। धाय जाकर बैठ जाती है और बुद्धिसेन दुकान से घर आते हैं। धाय के हाथ से पत्र पाकर उसे पढ़ने लगते हैं। उसकी आँखों के सामने अंधेरा छा जाता है। वह एक बार सोचते हैं कि मैं नींद में तो नहीं हूँ ? क्या ऐसा भी हो सकता है ? मैंने भला क्या अपराध किया ? पिताजी ने बचपन से लेकर आज तक मुझे कभी भी फटकारा तक नहीं, स्वप्न में भी गुस्सा नहीं किया और आज एकदम ऐसा क्रोध उन्हें मुझ पर क्यों आया कि जो देश से निकाल रहे हैं ? आखिर रहस्य क्या है ? उन्होंने मुझे कुछ दोष क्यों नहीं बताया ?.....कुछ देर तक स्तब्ध खड़ा रहता है पुनः सोचता है अहो! छहों भाई कुशल व्यवसायी हो चुके हैं इसलिए मुझे घर से निकाल रहे हैं अथवा.....मेरे ही कुछ अशुभ कर्म का उदय आ गया है इसमें किसी का क्या दोष ? अब मुझे तो इस पत्र ने पिता से मिलने की, उनके चरण छूने की या माता से आशीर्वाद लेने की भी तो गुंजाइश नहीं दी है। अब मेरा कर्तव्य क्या है ? मैं भूखा- प्यासा ऐसे ही किंकर्त्तव्यविमूढ़ हुआ यहाँ से शीघ्र ही चला जाऊँ और आज ही इस शहर की सरहद के बाहर हो जाऊँ। बस! बस! मेरा यही कर्तव्य है। क्या कुलीन मनुष्य कभी संकटों से घबराते हैं ? क्या वे ऐसे समय में अपनी बुद्धि का, अपने भाग्य का सहारा नहीं लेते हैं ?..... अब मैं भी अपने दैव की परीक्षा करूँ। आखिर देखूँ तो सही कि मैंने पूर्वजन्म में क्या-क्या किया है ?.....

1.3.5 पुत्रवियोग में माता हेमश्री धैर्यरहित हो उठी—

बुद्धिसेन उल्टे पैरों वापस लौट जाते हैं और इधर जब बहुत समय व्यतीत हो जाता है तब माता हेमश्री पुत्र के घर न आने से चिंतित हो उठती हैं। जैसे-तैसे करके उसे भी अंत में यह सारी रामायण सुना दी जाती है और वह पुत्र के वियोग में पागल हो उठती हैं। तत्क्षण मूर्च्छित हो जाती हैं। बहुयें उनको शीघ्र परिचर्या करके होश में लाती हैं। सेठजी स्वयं आकर पहले तो वे आप ही पुत्रवियोग से शून्यहृदय होते हुए रोने लगते हैं पुनः जैसे-तैसे अपने धैर्य को समेट कर शान्ति से बैठकर हेमश्री को सान्त्वना देते हैं।

"प्रिये! आप अब शोक दूर करो, जो होना था वह हो गया। अब यदि अपने भाग्य में होगा तो फिर इस जीवन में अपने को उसका मुख दिखेगा अन्यथा इन्हीं पुत्रों को देखकर संतप्त मन को शांत करो। वेदना मुझे भी है और अत्यधिक है परन्तु दैव के आगे किसी की कुछ भी नहीं चलती है।"

"स्वामिन्! आप जो भी कहते हैं सो सच है किन्तु मेरे साथ आपने इतना बड़ा धोखा क्यों किया ? आपने मुझसे पहले बात क्यों नहीं की ? मैं एक बार तो अपने प्यारे बेटे का ललाट चूम लेती। मैं एक बार उसे अपनी छाती से लगा लेती, फिर आप निकाल देते।"

"देवि! समस्या उस समय ऐसी ही थी कि यदि मैं जरा भी ढील कर देता तो ये छहों बेटे जाने को तैयार थे.....बस अब तुम धैर्य धारण करो।"

हेमश्री फूट-फूटकर रोती है। सेठ हेमदत्त बार-बार उसके आँसू पोछते हैं और दिलासा देते हैं। इसी बीच में धनदत्त आदि पुत्रों ने भी आकर माँ से कहा—

"माता! यदि तुम्हें बुद्धिसेन ही प्यारा है तो यह लो, हम लोग जाते हैं और उसे वापस भेजते हैं।"

"पुत्रों! तुम ऐसा क्यों बक रहे हो ? मेरे लिए तो जैसे वह, वैसे ही तुम सब। मैंने तो जैसे तुम्हें नव-नव महीने पेट में धारण किया, जन्म दिया और लाड़-प्यार किया, वैसे ही तो उसको नव महीने उदर में रखा और जन्म दिया है किन्तु तुम्हीं बताओ अब मैं कैसे धैर्य धरूँ ? मेरा तो कलेजा फटा जा रहा है। हाय! हाय! मैं कैसे अपने प्राण धारण करूँ ?"

हेमश्री पुनः बेहोश हो जाती है और सभी पुत्र रो पड़ते हैं—

हाय! हाय! यह क्या हुआ ? हम लोग भी कैसे भाई का वियोग सहन करेंगे ? जब उसकी बाल चेष्टाएं हमारे सामने खेलेंगी तो हम उसका मुख कैसे देख सकेंगे ? वह सुकोमल शरीर बुद्धिसेन कहाँ जायेगा ? कहाँ भटकेगा ? क्या खायेगा ? क्या पियेगा ? कहाँ सोयेगा ? अपनी जिंदगी कैसे बितायेगा ? उसे भी जब माँ-बाप की, भाइयों की याद आयेगी तो क्या करेगा ?.....

कुछ क्षण के लिए घर में शोकसमुद्र उमड़ पड़ता है पुनः धीरे-धीरे कर्म सिद्धान्त को सोच-सोचकर सब एक-दूसरे को समझाते हैं। माता! प्रत्येक प्राणी अपने कर्म के अधीन है। फिर वह तो पुरुष है, विवेकशील है, कुशल है, जहाँ कहीं भी जायेगा कुछ न कुछ व्यवसाय करके अपनी गृहस्थी बना लेगा। अब छोड़ो उसकी चिंता। सभी जीव अपने-अपने भाग्य के अधीन हैं। कोई भी किसी का करने-धरने वाला नहीं है। अपने प्राणों की रक्षा का, धन की रक्षा का बहुत बड़ा प्रश्न सामने उपस्थित होने से ही ऐसा कठोर निर्णय लेना पड़ा है पिताजी को। क्या किया जाये ? अन्य कोई चारा भी तो नहीं था। इसी तरह से सभी एक-दूसरे को समझाते हुए संतोष की सांस लेते हैं फिर भी कुछ दिनों तक बुद्धिसेन की याद सबको सताती रहती है और मन मसोस कर तथा मनोवती की प्रतिज्ञा को कोसकर रह जाया करते हैं, दिन निकलते जा रहे हैं।.....

1.4 बुद्धिसेन ने अवंती देश की सीमा पार की—

मन में विचार तरंगें तरंगित हो रही हैं और पैर उन्हीं तरंगों के सहारे आगे बढ़ते जा रहे हैं। मानों वे विचारलहरों के समान चलना ही जानते हैं, रुकना नहीं। सचमुच में दैव की लीला बड़ी विचित्र है, एक क्षण में क्या से क्या हो गया ? और बल्लभपुर की यह वायु भी तो मेरे अनुकूल चल रही है, हो सकता है कि यह बहुत शीघ्र ही मुझे शहर की सीमा के बाहर निकालना चाह रही हो अथवा.....हो सकता है कि यह मेरे पथ में सहचारिणी बन रही हो अथवा हो सकता है कि यह मेरे वियोग से संतप्त होकर ही मेरे पीछे-पीछे भागी चली आ रही हो कौन जाने ? कुछ भी हो, पीछे से चलती हुई वायु तो मुझे जल्दी-जल्दी चलने की ही प्रेरणा दे रही है यदि यही वायु आगे होकर बहती तो मुझे मार्ग में चलने में बाधा अवश्य डाल देती।

शहर से बाहर कुछ दूर निकल जाने के बाद सुन्दर-सुन्दर बगीचे दिखते हैं। मानों वे कुमार से कहते हैं कि ठहरो-ठहरो! एक रात्रि हमारे यहाँ विश्राम कर लो किन्तु विश्राम का क्या काम ? चलना है बस चलते ही रहना है नींद का काम नहीं, ठहरने का नाम नहीं। बुद्धिसेन जब अवंती देश की हद को पार कर जाते हैं तो आगे बढ़ते हैं। सामने अहीर की बस्ती है, चारों तरफ गायों के झुंड के झुंड दिख रहे हैं। प्रत्यूष बेला हो चली है। मन्द सुगन्ध हवा बह रही है। किसान हल लेकर खेतों की ओर चले जा रहे हैं, ग्वाल लोग गायों के थन से दूध निकाल रहे हैं। बछड़े माँ का दूध पी-पीकर रंभा रहे हैं। ग्वालिन अपने सिर पर दही के घड़े को रखे हुए निकली और वह बुद्धिसेन के सामने आ खड़ी हुई। वह युवक को सिर से पैर तक बार-बार देखती है और सोचती है यह तो कोई राजकुमार है या देवकुमार या कोई जौहरियों का पुत्र है ? कौन है ? यह पैदल ही क्यों चला जा रहा है ? इसको कहाँ जाना है ? इसका गन्तव्य कहाँ है ? आखिर को वह पूछ बैठती है—

"भाई! आप कौन हैं ? और कहाँ जा रहे हैं ?"

1.4.5 गाँव के पाटिल ने किया कुमार का आदर-सत्कार—

कुमार बुद्धिसेन के पैर रुक जाते हैं उनकी विचार तरंगें वहीं पर टकराकर ठहर जाती हैं। वे स्वयं सोचते हैं—मैं कहाँ आ गया ? यह गाँव कौन सा है ? अब मुझे किधर जाना है ? कहाँ जाना है ? और क्या करना है ? रात्रि भर चलते-

चलते थका हुआ शरीर है, पैर भी जवाब देने लगे। तब कुमार वहीं पर एक वृक्ष के नीचे बैठ जाते हैं और उस ग्वालिन की तरफ देखकर उसके प्रश्न को सुना-अनसुना कर देते हैं। फिर भी वह महिला कहने लगी—आप बहुत थके हैं। आज इसी गांव में आराम कीजिए। मालिक! यह गाँव आपका ही है। पुनः वह आगे बढ़ जाती है। सामने बगीचों में मयूर नाच रहे हैं। एक मयूर आकर बुद्धिसेन के सामने भी अपने पूरे पंखों को फैलाकर नाचने लगा। ओहो! आज से एक सप्ताह पहले जब मैं हस्तिनापुर शहर में दूल्हा बनकर ब्याहने गया था बारात में हजारों जौहरी थे। रथों की, हाथियों की, घोड़ों की, पालकियों की कोई गणना नहीं थी। उस समय मेरा भी मन मयूर ऐसे ही नाच रहा था और आज चिन्तारूपी रत्नाकर में गोते लगा रहा है। उसी समय गाँव के प्रसिद्ध पटेल ने देखा कि यह कोई युवक राजकुल का हो या उत्तम वैश्यकुल का, निश्चित ही यह पुण्यपुरुष है किन्तु भाग्य ने ही शायद इसे धोखा दिया है। चलो कुछ भी हो, अपने गाँव में आये मेहमान की खातिरदारी करना अपना परम कर्तव्य है। वह कुमार को अपने साथ ले जाकर आतिथ्य सत्कार करता है।

कुमार मन में सोच रहे हैं कि मेरी शादी हुए कुल सात-आठ दिन हुए हैं। मेरी धर्मपत्नी मनोवती पतिव्रता महिला है। यदि उसे यह समाचार मिलेगा कि मेरे पति को घर से निकाल दिया और वे कहीं चले गये हैं तो उसके मन पर क्या बीतेगी ? अकस्मात् दुःखी होकर यदि वह आत्मघात कर ले तो क्या होगा ?" मेरा कर्तव्य है कि कहीं व्यापार के लिए जाने के पहले हस्तिनापुर जाकर उसे सारी घटना सुना दूँ और सान्त्वना देकर अन्यत्र कहीं दूर देश में जाकर उत्तम व्यवसाय करके पुनः उसे वहीं पर लिवा लाऊँगा.....।"

"पटेलजी! हस्तिनापुर का मार्ग किधर से जाता है ?"

पटेलजी सही रास्ते का दिग्दर्शन कराते हुए—

"बन्धु! मार्ग तो इधर से जाता है। आप कुछ दिन यहाँ ठहरें तो अच्छा है।"

"मुझे जल्दी ही हस्तिनापुर पहुँचना है।"

1.4.2 बुद्धिसेन ने हस्तिनापुरी की ओर प्रयाण किया—

बुद्धिसेन निकल पड़ते हैं और एक-एक फर्लांग पर बैठ-बैठकर जैसे-तैसे कुछ दिनों में रास्ता पारकर हस्तिनापुर के बाहर बगीचे में आ जाते हैं। सूर्य अस्ताचल को जा रहा है और अपनी मधुर लालिमा से दिशाओं को अपना अनुराग भरा प्यार समर्पित कर रात्रि भर के लिए विदाई ले ली है। प्रातः फिर वापस आने का आश्वासन भी दे गया है। इसी बीच में बुद्धिसेन भी हद से ज्यादा थके हुए थे। उनकी विचार सरणि भी तरणि के समान अस्ताचल को ढूंढने लगी। वे सोच रहे हैं कि अभी-अभी कुछ दिन ही हुए कि मैं यहाँ ब्याहने आया था तो कितना परिकर समूह साथ में था। राजशाही ठाठ से क्या कुछ कम ठाठ था ? और आज मैं अकेला इस दुरवस्था से इस शहर में प्रवेश करूँ ? ससुराल वाले क्या समझेंगे ? क्या कहेंगे ? क्या सोचेंगे ? अपने माता-पिता का कितना बड़ा अपमान होगा ?..... सोचते-सोचते कुमार विह्वल हो उठते हैं और अपने घर की इज्जत का, अपनी इज्जत का सबसे बड़ा सवाल सामने आकर उन्हें वापस चलने को बाध्य कर देता है। आखिर तो वह अन्तिम निर्णय में आ जाते हैं कि यहाँ से वापस जाकर धन कमाकर अपनी इज्जत की सुरक्षा रखते हुए ही यहाँ आना ऐसे नहीं। किन्तु श्रम सहचर के रूप में उन्हें जैसे-तैसे रात्रि भर वहीं बगीचे में सोने की सलाह देता है। लाचार होकर बुद्धिसेन को मानना ही पड़ता है।

1.4.3 बगीचे में जंवाईराज को देखकर मालिन ने दी सेठजी को सूचना—

उषा देवी कुमार को शुभ सूचना देने के लिए आना चाहती थी कि उसके पहले मालिन वहाँ आ जाती है और चमेली, बेला, जुही आदि के सुन्दर-सुन्दर खिले हुए फूलों को चुन-चुन कर अपने टोकरे में रखती चली जाती है। वे फूल भी प्रसन्न होकर आपस में हँस रहे हैं क्योंकि उन्हें तो जिनेन्द्रदेव के सम्मुख पहुँचने का सौभाग्य मिलने वाला है। धीरे-धीरे मालिन उषा के अनुराग (लालिमा) के साथ-साथ बुद्धिसेन के पास पहुँच जाती है। बड़े गौर से निहारती है।

ओहो! यह तो मेरे ही सेठजी का जंवाई है, अभी-अभी दस पन्द्रह दिन तो हुए ही हैं जब यह ब्याहने आया था.....। वह शीघ्र ही वहाँ से चल पड़ती है और आकर सेठ महारथ से कहती है।

"सेठजी! आपके जंवाई साहब आपके बगीचे में पधार गये हैं आप जल्दी जावो।"

"ऐं! क्या, क्या ? बुद्धिसेन जी आये हैं ?"

"हाँ, हाँ, सरकार, हाँ! वे ही हैं।"

ओहो! इस संसार में लक्ष्मी का कोई भरोसा नहीं है। अभी पन्द्रह दिन ही तो हुए हैं। क्या बात हुई ? या तो चोरों ने धन लूट लिया होगा या राजा ने धन छीन लिया होगा, या तो और कोई संकट आया होगा। कुछ भी हो, कोटिध्वज के सुपुत्र मेरे जंवाई बुद्धिसेन कुमार हैं। उन्हें जल्दी से घर ले आना है। ऐसा सोचकर सेठजी तत्क्षण ही बगीचे में पहुँचकर उसका हाथ पकड़कर हिलाकर जगाते हैं और बड़े प्रेम से अपने वक्षस्थल से चिपका लेते हैं। घर में लिवा लाकर स्नान-भोजन आदि कराते हैं तथा घर में सभी महिलाओं को कड़ी सूचना दे देते हैं कि कोई भी स्त्री इनसे आने का कारण न पूछे।

फिर महिलाओं में कानाफूसी दिन भर चलती ही रहती है। आखिर को बिना बुलाये ससुराल आने का क्या कारण है ? पैदल ही क्यों आये ? अकेले ही क्यों आये ?.....

"बहन! ऐसा करो कि इनसे अपने में से यदि कोई पूछ लेगा, तब तो सेठजी बहुत ही क्रुद्ध होंगे अतः मनोवती को ही इनके पास भेज दो, वही सब कारण समझ लेगी और इससे सेठजी को भी गुस्सा नहीं आएगा।

"हाँ, हाँ! बहन, आपने बहुत बढ़िया उपाय सोच निकाला, चलो चलें, अपन पहले सेठानी जी को तो मना लें।"

"हूं, वे तो इस बात पर सहज ही राजी हो जावेंगी।"

"तो बस, उन्हीं की आज्ञा से आज रात्रि में मनोवती को कुंवर जी के पास भेज देवो, सारी स्थिति का स्पष्टीकरण हो जायेगा।

"ठीक, बहुत ठीक।"

1.4.4 मनोवती ने बुद्धिसेन से इस प्रकार आने का कारण पूछा—

रात्रि में मनोवती पतिदेव के निकट पहुँचती है, उन्हें प्रणाम करके शारीरिक कुशल क्षेम पूछती है और विनय से पास में बैठ जाती है। बुद्धिसेन भी पहले सामान्यतया 'सब ठीक है' ऐसा उत्तर देते हैं और कुछ क्षण को चुप हो जाते हैं। मनोवती पुनः धीरे-धीरे संकोच छोड़कर पति के सम्मुख हाथ जोड़कर पूछती है—

"प्राणनाथ! आज अकस्मात् आपका शुभागमन कैसे हुआ ?.....कृपया मुझे बताकर मेरे मन को हल्का कीजिए।"

"प्रिये! कर्मों की गति बड़ी विचित्र है, अब घर में मेरे छहों भाई अच्छे कुशल व्यवसायी हो गये हैं अतः शायद उन्हें मेरी आवश्यकता नहीं महसूस हुई होगी, हो सकता है इसी कारण से पिता ने मुझे देश से निकाल दिया हो। सही कारण क्या है सो मुझे भी मालूम नहीं है ? हाँ, मेरा ऐसा अनुमान है हो सकता है कि यह गलत भी हो ? अन्य ही कुछ कारण हो ?"

मनोवती को पतिदेव के मुख से देश निर्वासन का समाचार सुनकर इतना दुख नहीं हुआ कि जितना दुःख पति के मुखकमल की उदासीनता से हुआ, उसका हृदय एकदम विदीर्ण हो उठा। वह कुछ क्षण स्तब्ध सी रही। पति के मुख की तरफ एकटक देखती रही। अनंतर उसने साहस बटोरकर कहा—

"स्वामिन्! आपके सामने तो मेरे में कुछ भी बुद्धि नहीं है फिर भी मैं अपनी तुच्छ बुद्धि से ही कुछ निवेदन करना चाहती हूँ यदि आपकी आज्ञा हो तो कुछ शब्द कहूँ ?"

बुद्धिसेन उसके शब्दों को सुनने की उत्सुकता से ही सम्मति देते हुए गंभीर मुद्रा में हो जाते हैं और मनोवती कहना प्रारंभ करती है—

"देव! आप पुरुष हैं, आपको चिंता किस बात की ? अपने पुरुषार्थ के बल पर मनुष्य जब बड़े-बड़े कार्य कर सकता है, तब अपना गार्हस्थ्य जीवन बनाना क्या कोई बड़ी बात है ? आप बिल्कुल निश्चिन्त होइये और अपने पुरुषार्थ से अपने सुखद भविष्य का निर्माण कीजिए।"

"सो तो मेरा निर्णय ही है,मैं तो केवल यहाँ तुम्हें सूचित करने मात्र ही आया हूँ। अब मैं कहीं दूर देश में जाकर धन अर्जन करके वापस आकर तुम्हें ले जाऊँगा, तब तक तुम यहीं पीहर में सुख से रहो।"

1.4.5 पति के दूर देश जाने की बात सुन आहत मनोवती ने स्वयं भी साथ जाने का निर्णय लिया-

इस बात को सुनते ही मनोवती का साहसी हृदय भी आहत हो गया। वह विह्वल हो उठी, आश्चर्य भरी दृष्टि से पति के मुख को देखते हुए बोलती है—

"आप यह क्या कह रहे हैं ? यह अघटित बात सर्वथा असंभव है। आप यहीं हस्तिनापुर में रहिए। मेरे पिता जी के यहाँ सम्पत्ति की कोई कमी नहीं है। उनसे कुछ धन लेकर आप व्यापार कीजिए।"

"प्रिये! यह संभव नहीं है। मैं ससुराल में रहकर अपने माता-पिता के नाम को नहीं लजाना चाहता, मैं ससुर से धन लेकर व्यापार करके अपनी ऊन्नति नहीं करना चाहता, मैं अन्यत्र कहीं जाकर धनार्जन करूँगा। यहाँ किसी भी हालत में नहीं रुकुँगा।"

"आपका इतना कोमल शरीर है कि तीन-चार दिन में तो क्या स्थिति हुई है ? आप धूप और छाया के कष्टों को परदेश में कैसे सहन करेंगे ? स्वामिन्! मेरे तुच्छ निवेदन को स्वीकार कीजिए और यहीं पर व्यापार करने की सोचिये।"

"प्रियतमे! केवल तुम्हारे मोह से खिंचकर मैं इधर आया हूँ बस तुम्हें जानकारी देना मेरा एकमात्र लक्ष्य था। अब तुम सभी बातें छोड़कर मुझे दूर देश में जाने की स्वीकृति देवो, जिससे मेरे मन में अशांति न रहे।"

जब मनोवती ने समझ लिया कि ये यहाँ नहीं रुकेंगे, तब वह धैर्य के साथ बोलती है—

"प्राणनाथ! यदि आपका निर्णय सर्वथा यही है कि यहाँ नहीं रहना, तब तो मुझे भी आप अपने साथ ले चलिये।"

"वाह! यह भी कोई बात है। मैं वन-वन में रास्ते-रास्ते में भटकते हुए न जाने कब कहीं पर स्थित हो पाऊँ ? आज यहाँ कल कहाँ ? फिर मैं तुम्हें कहाँ-कहाँ साथ लिए फिरूंगा ? और फिर प्रवास के कष्टों को झेलना क्या कोई आसान बात है ? तुम भूख-प्यास की बाधाओं को, ठंडी, गर्मी के सभी कष्टों को कैसे सहन कर सकोगी ?"

"और आप कैसे सहन करेंगे ?"

"पुरुषों में और महिलाओं में बहुत अन्तर है।"

"यह कोई बात नहीं है कभी-कभी पुरुषों की अपेक्षा से अधिक संकट महिलाएं हँसते-हँसते झेल लेती हैं। स्वामिन्! मैंने बचपन में दिगम्बर मुनि के मुख से शिक्षा पाई, छह महीने तक गुरुदेव के चरण सानिध्य में रहकर मैंने सभी विद्यायें सीखी हैं मुझे अपने कर्त्तव्य- अकर्त्तव्य का पूरा ज्ञान है, आप प्रवास में नाना प्रकार के कष्ट उठायें और मैं सुख से पीहर में रहूँ ? ओह!..... असंभव है, ऐसा कभी नहीं हो सकता.....कभी नहीं हो सकता। मैं भी आपके मार्ग के कंटकों को दूर करते हुए सती सीता के समान आपके साथ चलूँगी।"

"नहीं, नहीं! प्रिये! तुम बिल्कुल मत सोचो। अपना विचार बदलो और मेरे प्रस्थान में विघ्न मत बनो।"

"मैं कभी भी अपने विचार नहीं बदल सकती, साथ ही चलूँगी।"

"देखो, प्रियतमे! यह हठ सर्वथा अनुचित है।"

"आप कुछ भी कहें किन्तु मुझे तो यही उचित लगता है अत: मैं आपके पथ का अनुसरण करूँगी।"

"मैं आपको साथ ले चलने के लिए किसी भी हालत में तैयार नहीं हूँ।"

"जैसी आपकी इच्छा!.....परन्तु आप यह बात निश्चित समझ लीजिए कि आपके यहाँ से प्रस्थान करते ही मैं अपघात करके इस जीवन को समाप्त कर दूँगी।"

बुद्धिसेन सहसा चौंक पड़ते हैं—

"ओह!.....प्रिये! तुम क्या कह रही हो ? क्या इस तरह प्राण त्याग करना तुम्हारा कर्त्तव्य है ? तुम्हें ऐसे संकट के समय धैर्य धारण करना चाहिए और आगे के अच्छे दिनों की प्रतीक्षा करनी चाहिए।"

1.4.6 मनोवती और बुद्धिसेन रात्रि में बिना सूचना दिए अनजान देश की ओर चल दिए-

मनोवती अधिक न बोलकर घबरा कर रोने लगती है और बुद्धिसेन उसे हर तरह से समझाने का प्रयत्न करते हैं। अन्त में मनोवती यही कहती है कि मैं आपके बिना इस घर में एक दिन भी जीवित नहीं रहूँगी। तब कुमार कुछ ढीले पड़ जाते हैं—

"तो ठीक है, यदि आपको चलना ही है तो मेरी आज्ञा का पालन करो। ये रत्नों के, मोतियों के आभूषण एक-एक उतारकर यहीं छोड़ दो। अन्यथा लोग कहेंगे कि देखो! कैसा ठग आया था कि जो तमाम रत्नों के जेवर ले गया.....हाँ फिर जल्दी करो।"

मनोवती प्रसन्नता से गद्‌गद हो उठती है और तत्क्षण ही जल्दी-जल्दी सारे आभूषण उतारकर वहीं पलंग पर डाल देती है। गजमोतियों का हार खींच कर उतार फेंकती है कि जिससे उसके मोती बिखर जाते हैं और वहीं पलंग पर एक-दूसरे के पास आते-जाते हुए ऐसे दिखते हैं कि मानों इन्हें भी अपने इष्ट (साथियों) का विरह इष्ट नहीं है इसलिए सब एक जगह एकत्रित हो जाते हैं। भुजबंद, कंकड़, अंगूठी, स्वर्ण की करधनी आदि सभी आभूषण उतारने के बाद उसने कहा—

"प्राणनाथ! आप देखिये अब मेरे पास कुछ भी आभूषण नहीं है।"

बुद्धिसेन भी दृष्टि से देखते हैं कि इसने सर्व अलंकार दूर कर दिये हैं। मात्र गले में एक मंगलसूत्र है जो कि सौभाग्य का चिन्ह है, वही रह गया है। बस आधी रात का समय था। वे दोनों शीघ्र ही खिड़की के रास्ते से निकल कर हस्तिनापुर से बाहर जाने की सड़क पकड़ लेते हैं। मनोवती भी प्रसन्नमना महामंत्र का जाप्य करते हुए पतिदेव के पीछे-पीछे चली जा रही है।

1.5 कुमार बुद्धिसेन और मनोवती को देख नागरिक हुए आश्चर्यचकित—

जो हमेशा हाथी पर चढ़कर प्रस्थान करते थे, जो सुकुमारांगी महिला पालकी में या रथ पर बैठकर ही बगीचे की सैर के लिए निकलती थी, आज वे दम्पत्ति बड़े प्रेम से नंगे पैर काँटों और कंकड़ों की परवाह न करते हुए चलते चले जा रहे हैं मार्ग में छोटे-छोटे गाँव आते हैं। ग्रामीण जन इन्हें देखकर सोचने लगते हैं। ये युगल दम्पत्ति कौन हैं ? क्या महादेव ही पार्वती को साथ लेकर विश्व की यात्रा के लिए निकले हैं या श्रीकृष्ण भगवान् अपनी लक्ष्मी के साथ विचरण कर रहे हैं ? इनका रूप कितना सुन्दर है, क्या ये स्वर्ग से उतरते हुए कोई देव दम्पत्ति हैं ? या कोई राजवंश के भावी होनहार हैं ? लोग मार्ग में कुतूहल से आकर घेर लेते हैं और परिचय पूछने लगते हैं, तब कुमार बुद्धिसेन मुस्करा देते हैं और आगे बढ़ जाते हैं।

आज एक दिन व्यतीत हो चुका है, रात्रि भी निकलती चली जा रही है। कब अर्द्धरात्रि आई और कब चली गई पता ही नहीं है। क्योंकि चलना, चलते चलना ही अपना लक्ष्य है। गंतव्य स्थान क्या है ? कहाँ पहुँचना है ? कौन जाने ? दो दिन निकल गये, दो रात्रि व्यतीत हो गईं, आज तीसरा दिन है। शरीर में पूरी थकान है। मनोवती कभी मन में महामंत्र का जाप्य करती है, कभी मुनिराज के धर्मोपदेश का स्मरण करती है, तो कभी पतिदेव के समक्ष उन शिक्षाओं को सुनाने लगती है कि जो उसे बचपन में मुनिराज के मुखकमल से सुनने को मिली थीं। आज चौथा दिवस है दोनों ही रतनपुर के सुन्दर बगीचे में पहुँचे हैं। ठंडी-ठंडी हवा दोनों की थकान को दूर करते हुए उन्हें मानों वहीं बैठने की प्रेरणा दे रही है। बगीचे की सुन्दरता को देखकर और पथिक से शहर का नाम ज्ञात कर कुमार वहीं पर ठहर जाते हैं।

1.5.1 बुद्धिसेन ने रतनपुर में डाला पड़ाव—

"स्वामिन्! यह अशोक वृक्ष की छाया जिनशासन के समान सुखदायी प्रतीत हो रही है, यह देखो! सामने आम्रवृक्ष अपने फलों के भार से झुक गया है। मानो वह गर्वत्याग की सूचना ही दे रहा है और इधर यह एरण्ड वृक्ष सीना तान कर उद्दण्ड मनुष्य के समान खड़ा है परन्तु छाया से शून्य है। एक तरफ सरोवर में कमल खिल रहे हैं, उन पर भ्रमर गुंजार कर रहे हैं। इधर चमेली और जूही की लता फूलों से महक रही है।"

"मुझे तीन दिन-रात्रि के प्रवास की पूरी थकान थी। मैं सोच रहा था इस समय आपकी क्या स्थिति होगी ? किन्तु आपका धैर्य वास्तव में सराहनीय है।"

मनोवती पतिदेव के पैर दबाने लगती है और विश्रांति के लिए प्रार्थना करती है। बुद्धिसेन को कुछ नींद आ जाती है। तब धीरे से उठकर मनोवती पास के सरोवर में स्नान करके अपने कपड़े सुखाने लगती है और केशों को भी खोलकर सुखाने लगती है। उसी समय केशों में कहीं पर एक बेशकीमती रत्न उलझा हुआ था, वह उसके हाथ में आ जाता है वह उसे देखने लगती है, इतने में बुद्धिसेन उठकर बैठ जाते हैं। मनोवती पास में आकर बोलती है—

"स्वामिन्! आज तीन दिन हो गये आपको, न भोजन है न पानी। आपका मुखकमल बिल्कुल मुरझा गया है। अब.....

बीच में ही बात काटकर बुद्धिसेन बोल उठते हैं—

"और आपका मुखकमल क्या खिल रहा है ? वह तो मेरे से भी अधिक कुम्हला गया है।"

फिर गंभीर मुद्रा में होकर बोलते हैं—

"सचमुच में बिना अन्न-जल के इस शरीर की स्थिति अधिक नहीं रह सकती है। अभी तो शरीर से सर्वथा निर्मम ऐसे योगी भी शरीर की स्थिति के लिए आहारार्थ नगरों में, श्रावकों के गृहों में विचरण करते हैं।

"सच है शरीर के बिना धर्म की साधना भी तो असंभव है इसलिए तो तीर्थंकरों ने स्वयं आहार ग्रहण किया है और अन्य मुनियों के लिए निर्दोष आहार ग्रहण करने का उपदेश दिया है।"

कुछ क्षण वातावरण शांत रहता है पुनः मनोवती बोलती है—"पतिदेव! यह देखिये, मेरे केशों में यह एक नग उलझा हुआ था, वह धोखे से ही आ गया है। मेरी समझ में अब आप इसे लेकर शहर में जाइये और किसी के यहाँ गिरवी रखकर उसके बदले कुछ धन लेकर भोजन की सामग्री लाइये।"

बुद्धिसेन वह नग लेकर चुपचाप चले जाते हैं और कुछ देर बाद भोजन सामग्री लाकर दे देते हैं। मनोवती अपनी कुशलता से बगीचे में बाँस के बर्तन और पत्तों के दोने बनाकर भोजन-सामग्री तैयार करती है। बुद्धिसेन भोजन आदि से निवृत्त होते हैं। मनोवती पतिदेव को भोजन कराती है।

आज पहली बार बगीचे में उसने अपने पतिदेव को जिमाया है। वह मन ही मन प्रसन्न है। फिर पतिदेव से निवेदन करती है कि आप शहर में जाइए। कुछ अपने व्यापार-धंधे का सिलसिला जमाइये। इधर आप पति को शहर भेजकर अपने हिस्से का भोजन भूखों को जिमा देती है और स्वयं बैठकर महामंत्र का जाप्य करती है।

शाम होते ही पतिदेव आ जाते हैं किन्तु कुछ सफलता उन्हें नहीं मिलती है। मन में उदासीनता होते हुए भी बुद्धिसेन पत्नी से दिन भर की कुशलता को पूछकर बैठ जाते हैं। मनोवती भी हास्य विनोद में पति की निराशता और थकान को समाप्त कर देती है।.....दूसरे दिन फिर मनोवती ने पति को जिमा दिया और आप अपने हिस्से का भोजन गरीबों को खिला दिया। ऐसे ही तीसरा दिन भी व्यतीत हो गया।

1.5.2 मनोवती के कृश शरीर को देख बुद्धिसेन हुए चिन्तामग्न—

बुद्धिसेन ने देखा, मनोवती का शरीर अत्यन्त शिथिल हो गया है, मुख बहुत ही म्लान है। मन में सोचने लगा। हाय! देखो! दुर्दैव की लीला, यह कुमारी मेरे साथ इस प्रवास में एकदम कैसी सूख गई है। अब क्या होगा ? यह कैसे जीवित रह सकेगी ?.....

"प्रियतमे! तुम्हारा मुख अत्यन्त म्लान हो चुका है, शरीर भी बिल्कुल सूख गया है। तुम मुझे तो अच्छी-अच्छी शिक्षाएँ देती हो और स्वयं तुम्हें क्या हो गया है ? तुम मार्ग में चलने में इतनी कमजोर नहीं दिख रही थीं कि अभी जितनी दिख रही हो। क्या कारण है सो कहो ?

मनोवती बात को पलटकर हँसते हुए बोली—

"स्वामिन् ! आपको स्वयं व्यापार में सफलता न मिलने से ही दिखता है कि चिन्ता अधिक हो रही है और इसलिए शायद आप मुझे कमजोर देख रहे हैं।"

"नहीं, नहीं! ऐसी बात नहीं है, क्या तुम्हें शरीर में कोई कष्ट है ? कहो! सच सच कहो।"

"नहीं स्वामिन! कुछ भी कष्ट नहीं है केवल आपको भ्रममात्र है। मैं स्वस्थ हूँ। हाँ, मन की अस्वस्थता से कुछ शरीर में फर्क आ जावे तो मैं क्या करूँ ?"

"आप मुझसे कुछ छिपा रही हैं ?"

"नहीं, नहीं स्वामिन्! मैं आपसे क्या छिपाऊँगी ? आप निश्चिंत रहें कोई खास बात नहीं है।"

बुद्धिसेन बेचारा मनोवती की शारीरिक स्थिति को देखकर आश्चर्य में है कि आखिर बात क्या है ? अंत में वह चुप हो जाते हैं और भाग्य के विषय में सोचते-सोचते उनके नेत्र सजल हो जाते हैं। कुछ क्षण माता-पिता की निष्ठुरता पर क्रोधित होते हैं तो पुनः अपने भाग्य की निष्ठुरता को कोसते हैं। धीरे-धीरे नींद आ जाती है। रात्रि व्यतीत हो जाती है। रोज की तरह आज पुनः सूर्य निकलता है। बुद्धिसेन स्नान आदि से निवृत्त होकर शहर में व्यापार करने के लिए चले जाते हैं।

मनोवती की स्थिति वास्तव में गंभीर है। हस्तिनापुर से निकलकर मार्ग में चार दिन व्यतीत हुए। अब यहाँ रतनपुर के बगीचे में तीन दिन बीत चुके हैं। बिना अन्न के, बिना पानी के सात दिन निकल चुके हैं। अब मनोवती मन में सोच रही है। मैं क्या करूँ ? यदि पति से कुछ कहूँ तो उन्हें सिवाय चिन्ता के और क्या होगा ? वे यही कहेंगे कि तुम मेरे साथ क्यों आई ? उन्हें गजमोती कहाँ मिलेगा वे स्वयं जिस स्थिति में हैं तो मेरे नियम को कैसे पूर्ण करेंगे ? अब मेरा शरीर कितने दिन टिक सकेगा ? क्या होगा ?

"भगवन्! आपके सिवाय अब मेरा यहाँ कोई भी रक्षक नहीं है। मेरे दुर्दैव ने ही तो मेरे पति को घर से निकाल दिया है। नहीं तो वहाँ क्या कमी थी ? हे जिनेन्द्रदेव! अब आपके सिवाय मुझे किसी की भी शरण नहीं है। एक मात्र अकारण बंधु आप ही मेरे प्रभु हैं। हे त्रैलोक्यनाथ! जब-जब भक्तों पर संकट आया है, तब-तब आपने ही तो उनकी रक्षा की है।"

1.5.3 मनोवती ने दर्शन प्रतिज्ञा का दिखाया चमत्कार, देवों के आसन कम्पायमान हो उठे—

मनोवती मन ही मन भगवान् से प्रार्थना कर रही है। उसका यह निश्चय है कि भले ही प्राण चले जायें, लेकिन अपनी प्रतिज्ञा भंग नहीं करना। उसे विश्वास भी है कि अनाथों के नाथ भक्तों के रक्षक भगवान् मुझ पर कृपा अवश्य करेंगे। किसी न किसी प्रकार से कुछ न कुछ उपाय अवश्य दिखेगा और जब मेरी प्रतिज्ञा पूरी होगी, मैं श्री जिनेन्द्रदेव के सन्मुख गजमोतियों को चढ़ाऊँगी, तभी भोजन करूँगी अन्यथा नहीं।

मनोवती पुनः भगवान् से प्रार्थना करती है—

"प्रभो! जब आपकी भक्ति के प्रसाद से अनन्तानन्त संसार की परम्परा समाप्त हो जाती है, जब आपकी भक्ति के प्रसाद से सम्पूर्ण कर्म जड़मूल से निर्मूल हो जाते हैं, जब आपकी भक्ति से सम्पूर्ण मनोरथ सफल हो जाते हैं, देवाधिदेव! जब आपकी भक्ति से कल्याण परम्पराएं अपने आप दौड़ती-चली जाती हैं, जब आपकी भक्ति से बड़े-बड़े विघ्नकर्म चूर-चूर हो जाते हैं, तब पुनः मेरी भी प्रतिज्ञा क्यों नहीं पूर्ण होगी ? क्या मेरे हृदय में सच्ची भक्ति नहीं है ?.....प्रार्थना करते-करते मनोवती कुछ क्षण के लिए ध्यान में एकाग्र हो जाती है.....।

1.5.4 विशाल जिनमंदिर देख मनोवती आश्चर्यचकित रह गई, गजमोती चढ़ाकर किया देवदर्शन और पारणा—

कुछ देर बाद एकदम उसका पैर नीचे को धंसता है। वह चौंक उठती है। पैर की तरफ देखती है तो एक शिला है जो कि एकदम नीचे खिसक रही है। वह धीरे से उस शिला को उठाती है तो उसको सीढ़ियाँ दिखती हैं वह धीरे-धीरे नीचे उतर जाती है।

अहा हा!! यह विशाल जिनमंदिर! चारों तरफ रत्नों की जगमगाहट! वह हर्ष विभोर हो जय-जयकार करने लगी-णमो अरिहंताणं.....।

.....ऐसा मंदिर आज तक मैंने देखा ही नहीं है! क्या दिव्य सजावट ? क्या दिव्य जिनेन्द्रदेव की रत्नमयी प्रतिमा ? सिंहासन, छत्र चामर आदि दिव्य विभूतियाँ! चन्द्रोपक तोरण रत्नों की चकचकाहट! एक से एक बढ़कर चित्रकला! भक्ति में तन्मय हो प्रभु का दर्शन करती है। पुनः मन में सोचती है कि मैं स्नान करके पूजा कर लेती कि उसी समय उसकी दृष्टि एक तरफ पड़ती है। जहाँ धौतवस्त्र हैं। जल से भरे हुए घड़े रखे हैं। वह स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण कर प्रभु का अभिषेक पूजन करना चाहती है तो उसे गजमोती कहीं नहीं दिख रहे हैं। वह सोचने लगी कि जब तक मैं गजमोती नहीं चढ़ाऊँगी, तब तक मेरी पूजा अधूरी ही तो रहेगी.....।

सामने दृष्टि डालते ही गजमोतियों का ढेर लगा हुआ है। हर्ष में नाच उठती है। नाना प्रकार से स्तुतियों का उच्चारण करते हुए त्रिभुवनपति जिनेश्वर की अभिषेक-पूजाविधि करके गजमोतियों को मनमाने चढ़ाकर अपने जीवन को कृतार्थ कर लेती है। वह समझती है कि बस आज ही तो मेरा जन्म लेना सार्थक हुआ है, आज मैं धन्य हो गई, पवित्र हो गई। मेरी स्त्रीपर्याय से छूटने का सर्वोत्तम कारण और साक्षात् मुक्ति को प्राप्त करने का मूल कारण सम्यग्दर्शनरूपी महारत्न मुझे मिल गया है।

—स्तुति—

चाल-हे दीनबन्धु.....

जय जय प्रभो जिनदेव! आप दर्श मिल गये।
जय जय प्रभो जिनदेव! पाप सर्व धुल गये।।
तुम दर्श से सम्यक्त्व ज्योति जगमगा उठी।
निजात्मज्ञान ज्योति भी तो चकचका उठी।।1।।
हे नाथ! मैं गजमोतियों के पुँज चढ़ाऊँ।
करके प्रतिज्ञा पूर्ण सर्व सिद्धि को पाऊँ।।
तुम पादपद्म भक्ति में ही लीन हो जाऊँ।
फिर बार-बार मैं नहीं संसार में आऊँ।।2।।
प्रभु आपकी कृपा से मैं निहाल हो गई।
ये दर्श की महिमा भी एक मिशाल हो गई।।
जब तक न मिले मुक्ति ये ही दान दीजिए।
तब तक रहे तुम भक्ति ये वरदान दीजिए।।3।।

पुनः मनोवती को उसी जीने से वापस आते समय दो मोती दिखते हैं उन्हें वह उठाकर हाथ में लेकर शिला उठाकर ऊपर आ जाती है और शिला वापस ढक देती है। कुछ क्षण वहीं बैठकर पतिदेव की प्रतीक्षा करती है। इतने में कुमार बुद्धिसेन आते हैं। वह उठकर स्वागत करती है और विनम्र शब्दों में बोलती है—

'स्वामिन्! अब शीघ्र ही भोजन सामग्री लाइये। मुझे भूख लग रही है। बुद्धिसेन तत्क्षण उल्टे पैर मुड़ जाते हैं। अहो! क्या कारण है कुछ समझ में नहीं आ रहा है ? मेरी प्राणों से प्यारी भार्या का मुख पीला हो रहा है, शरीर यष्टि शिथिल हो चुकी है, आँखें अंदर को धँसी जा रही हैं। क्या चिंता से ही इतनी दुर्बलता आयी है या किसी व्याधि ने घेर लिया है ? क्या बात है ?.....दीर्घ निःश्वास लेते हैं.....। अरे दुर्दैव! तू बड़ा ही निष्ठुर है। आज यहाँ रतनपुर में भी मुझे आये चार दिन हो गये, कुछ भी ठिकाना नहीं है।

.....कुछ देर बाद कुमार ने चावल, दाल, मसाला, साग-सब्जी आदि सामान मनोवती के सामने रख दिया। उसने भोजन तैयार किया, पतिदेव को जिमाया और पुनः आप भोजन किया।

ओहो! आज आठवां दिन है। सात दिन तक उपवास करके आठवें दिन अपनी प्रतिज्ञा को निभाने के लिए देवों के आसन हिला दिये। धन्य है यह प्रतिज्ञा! और धन्य है यह दृढ़ता! धन्य है धैर्य और धन्य है साहस! जिसकी प्रतिज्ञा पूर्ति के लिए देवगण भी कटिबद्ध हुए। जिसकी प्रतिज्ञा को पूर्ण कराने के लिए सौधर्म इन्द्र ने आदेश किया और अर्धनिमिष में जिनमंदिर का भव्य निर्माण हो गया। वह मनोवती भी धन्य है और इस लोक में सदैव उसकी धवल कीर्तिपताका लहराती ही रहेगी।

1.6 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-सेठ हेमदत्त मनोवती के कौन थे ?

(क) पिता ☐
(ख) श्वसुर ☐
(ग) भाई ☐

प्रश्न 2-मनोवती की माँ का क्या नाम था ?

(क) हेमश्री ☐
(ख) महासेना ☐
(ग) इनमें से कोई नहीं ☐

प्रश्न 3-मनोवती ने मंदिर में क्या चढ़ाने का नियम लिया था ?

(क) हीरा ☐
(ख) मोती ☐
(ग) गजमोती ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-मनोवती का विवाह कहाँ और किसके साथ हुआ था ? उसके सास-श्वसुर एवं माता-पिता का नाम भी बताइए ?

प्रश्न 2-सेठ हेमदत्त ने बुद्धिसेन को घर से क्यूँ निकाला ? कारण बतलाइए ?

प्रश्न 3-मनोवती की क्या प्रतिज्ञा थी ? उसकी प्रतिज्ञा पूरी न होने पर उसने कितने दिन के उपवास किये ?

प्रश्न 4-सेठ हेमदत्त ने जब बुद्धिसेन को घर से निकाल दिया तो वह कहाँ गया ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-महाराजा मरुदत्त ने बल्लभपुर शहर के सभी जौहरियों को क्यों बुलाया था ? सेठ हेमदत्त राजा मरुदत्त की किस बात से परेशान हो जाते हैं एवं क्या कदम उठाते हैं ? विस्तार से बताइए ?

पाठ-2–नियम के निंदक बने भिखारी

2.1 बगीचे में बसंतऋतु अपनी मधुरिमा से सबका मन आकर्षित कर रही है। अशोक की लाल-लाल कोंपल को खा-खाकर तोते क्रीड़ा कर रहे हैं। आम्र की ताजी मंजरियों को खा-खाकर कोयल अतीव मधुर शब्द बोल रही हैं। पक्षीगणों की कलरव ध्वनि से सारा बगीचा पुलकित हो रहा है। मानो वह मनोवती के गुणगान को गाने में ही एकतान हो गया है। कहीं पर लताएँ फूलों को बिखेर रही हैं और एक तरफ बकुलवृक्ष मौलसिरी की कलियों को बिखेरते हुए मानो मनोवती की अर्चना ही कर रहा है।

मनोवती प्रसन्न है और पति की उदासीनता को दूर करने के लिए निवेदन करती है—

"स्वामिन्! आप उदासीन क्यों हैं ? चार दिन हुए बाजार में जाकर आप वापस आ जाते हैं दिन भर आपका कैसा व्यतीत होता है ? किसी का कुछ परिचय हुआ या नहीं ?"

बुद्धिसेन दीर्घ निःश्वास लेकर कहते हैं—

"प्रिये! मैं क्या बताऊँ ? मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि मेरा भाग्य इस समय बिल्कुल साथ नहीं दे रहा है। बहुत लोगों से मेरा परिचय हो चुका है। सब प्रेम से बोलते हैं, पास में बिठाते हैं किन्तु किसी ने अभी तक यह नहीं कहा कि तुम मेरे से कुछ द्रव्य लेओ और व्यापार धंधा करो। मुझे भी किसी से कुछ माँगते हुए शर्म आती है। मैं क्या करूँ ? मुझे ऐसा लगता है कि अब मेरे से कुछ भी नहीं होगा ?"

"आप इतनी जल्दी निराश क्यों हो रहे हैं ? जब तक अपने पास धर्म है, तब तक अपने को कोई भी चिंता नहीं है आज नहीं कल, कल नहीं परसों, कुछ न कुछ व्यापार का सिलसिला जमेगा ही।"

"यदि अपना पुण्य का ही उदय होता तो अपने को अपने पिता ही घर से क्यों निकाल देते ? अपना भाग्य इस समय बहुत ही कमजोर दिख रहा है।"

2.1.1 व्यापार धंधे से निराश बुद्धिसेन ने मनोवती से मोती पाकर राजा को दिया भेंट—

मनोवती अपने पति को एक मोती देती है और कहती है—

"अब आप उठिये, चिन्ता छोड़िए, मैं जैसा कहती हूँ वैसा कीजिए। जहाँ पर वह नग आपने गिरवी रखा है, वहीं पर जाकर उनसे एक मुहर ले लीजिए। फिर आप सीधे राजदरबार में पहुँचिये। यदि द्वारपाल आपको रोकेगा तो आप उसे मुहर दे दीजिए और आगे राजा के पास पहुँचकर उनके समक्ष भेंटरूप में यह मोती प्रदान कर दीजिए। फिर देखिए अपना भाग्य तत्काल पल्टा खा जायेगा।"

कुमार मनोवती के कहे अनुसार मोती लेकर चल पड़ता है और उसी उपाय से राजा के पास पहुँचकर वह मोती उन्हें भेंट करता है। राजा उस मोती को बार-बार देखते हैं और आश्चर्य से पूछते हैं—

"आप कौन हैं ? कहाँ से आये हैं ? आपका शुभ नाम क्या है और आपके साथ और कौन-कौन हैं ?"

"मेरा नाम बुद्धिसेन है ? मैं बल्लभपुर के प्रख्यात जौहरी हेमदत्त सेठ का पुत्र हूँ, मेरी धर्मपत्नी मेरे साथ हैं ?"

"अच्छा! तो आप अभी कहाँ ठहरे हुए हैं ?"

"मैं शहर के बाहर मकरकेतु नामक बगीचे में ठहरा हुआ हूँ।"

"मंत्रिन्! खजांची साहब को बुलाओ।"

"जो आज्ञा महाराज!

तत्क्षण ही खजांची साहब उपस्थित हो जाते हैं—

"हुकुम कीजिए महाराज!"

"देखो, मुहरों से भरा हुआ स्वर्ण थाल ले आओ और उत्तम-उत्तम वस्त्र आभूषण जो कि युगल दम्पत्ति के लिए हों,

ऐसे वस्त्र आभूषण ले आओ।"

खजांची कुछ देर बाद सब वस्तुएँ उपस्थित कर देता है और महाराज कुमार बुद्धिसेन को पुरस्कार में देते हैं और मंत्री से कहते हैं—

"मंत्रिन्! तुम स्वयं जाकर शहर के भीतर उत्तर दिशा में जो बड़ी हवेली है, वह इनके लिए खुलवा दो तथा नौकर-चाकर आदि सभी वस्तुओं से इनकी पूरी व्यवस्था कर दो।"

अनन्तर महाराज दूसरे मंत्री से कहते हैं—

"मंत्रिन्! आप अपने रत्नपारखी पुष्पराज को तो बुलाओ।

"जो आज्ञा महाराज!"

तत्काल ही पुष्पराज महोदय पधारते हैं और महाराज का अभिवादन कर अपने उचित स्थान पर बैठ जाते हैं।

"हाँ! देखिये तो सही, यह मोती बहुत बढ़िया प्रतीत हो रहा है।"

पुष्पराज देखकर विस्मयचकित हो उठता है—

"राजन्! इतना बढ़िया मोती तो इस मर्त्यलोक में मिलना ही कठिन है। यह कोई दिव्य मोती है।"

"इसका मूल्य ?"

"हूँ!! राजन्! इसका मूल्य तो.....मेरी समझ में नहीं आ रहा है यह तो कोई एक अमूल्य वस्तु है।....."

"फिर भी....."

"इसकी कीमत तो अगर आप आँकना ही चाहें तो महाराज!.....इसकी कीमत पचास करोड़ मोहरों से कम नहीं समझिये।"

"ओहो! इतनी कीमती वस्तु इस जौहरी पुत्र को कैसे मिली ? कुछ भी हो, अपने भाग्य में थी अपने पास आ गई। मंत्रिन्! भण्डारी को बुलाओ।

भण्डारी आकर साष्टांग नमस्कार कर एक तरफ खड़ा हो जाता है—

"आज्ञा दीजिए महाराज!"

"हाँ, लो यह मोती बहुत ही बेशकीमती है। तुम इसे बहुत ही संभाल कर भण्डार में रखो।"

"बहुत ठीक!"

भण्डारी चला जाता है और डिब्बे के अंदर मोती को रखकर उसे तिजोरी में रखकर बंद कर देता है।

2.1.2 मोती वापस पहुँचा मनोवती के पास—

कुमार बुद्धिसेन बगीचे में पहुँचकर मनोवती को सारा समाचार सुनाते हैं और राजा के आदेश के अनुसार मंत्री स्वयं उनके साथ में थे। उनके साथ ही पत्नी को लेकर शहर की हवेली में आ जाते हैं।

प्रात:काल मनोवती ने देखा कि अपने पास में वे दोनों मोती मौजूद हैं। वह सोचने लगी कि जब मैंने इनमें से एक मोती राजा को भेंट में भेजा था तो यह वापस यहाँ कैसे आ गया ? कुछ देर बाद वह सब रहस्य समझ गई और पुन: पति से बोली—

"आज आप पुन: राजा के पास एक मोती भेंट करके आइये।"

"ठीक है! लाओ।"

बुद्धिसेन उस मोती को लेकर राजदरबार में पहुँचकर राजा के समक्ष भेंट करते हैं। राजा एकदम प्रसन्न हो उठता है—

"वाह! कितनी सुन्दर जोड़ी मिलाई! मंत्रिन्! भंडारी को बुलाओ कि वे कल का मोती लेकर आवें।"

भण्डारीजी को सूचना मिलते ही तिजोरी से डिब्बा निकालते हैं तो उनके होश गुम हो गये, वे सन्न रह गये। यह क्या

? आखिर मोती गई कहाँ ? उनके सिर की चोटी से लेकर पैर की एड़ी तक पसीना बह चला। जैसे-तैसे वे अपने को संभाल कर और खाली डिब्बी लेकर महाराज के समक्ष काँपते हुए पहुँचते हैं और नमस्कार करते हैं—

"हाँ भंडारी जी! लाइये मोती! जोड़ी मिलानी है।"

"महाराजाधि.....राज.....!"

वह बोलते-बोलते रुक जाता है—

"ये क्या! मोती गायब हो गई। अच्छा! मैंने जो कह दिया था कि वह बेशकीमती है इसलिए गायब कर दी, इतनी जल्दी.....!

महाराज क्रोध में पागल हो उठते हैं और भंडारी के हाथ से डिब्बा गिर जाता है। बुद्धिसेन को उस भंडारी पर दया आ जाती है।

"सरकार! कोई न कोई चोर आज.....महल में आया होगा जिसने यह मोती चुराई है मम म.....महाराज! मैंने चोरी नहीं की.....।"

"अरे धूर्त! इस एक मोती के लिए ही चोर आया था और कुछ चोरी न करके केवल इसी एक मोती को ही ले जाता बस, बस! तू ही चोर है और कोई नहीं।"

"महाराज! महाराज! मेरे ऊपर दया....दृ....ष्टि....करो। महाराज! मैं निर्दोष.....हूँ।"

"चुप रह, चुप रह, ज्यादा मत बोल।.....अभी.....। इसे फाँसी पर चढ़ाने के लिए ले जाओ। कोतवाल! इधर आ....."

बुद्धिसेन बीच में ही महाराज को शांत करते हुए कहते हैं।

"महाराज! आप शांत होइये। मैं आपको कल इसकी जोड़ी लाकर देऊंगा।"

सभी दरबारी लोग एकदम धन्य-धन्य बोल उठते हैं—

"कुमार! आप धन्य हैं! आपने आज भंडारी के प्राणों की रक्षा की है। आप महापुण्यशाली जीव हैं और महान हैं।"

बुद्धिसेन वहाँ से आकर अपनी धर्मपत्नी मनोवती से सारी कथा सुना देते हैं.....और कहते हैं—

"हाँ, तो अब दूसरी मोती भी देवो, अपने पास मत रखो।"

मनोवती चिढ़कर बोलती है—

"वाह! बिना समझे-बूझे आपने राजा को दूसरी मोती देने का आश्वासन कैसे दे दिया ? मैंने तो आपको कल एक मोती दी थी और एक आज दे दी। भला अब मेरे पास तीसरी मोती कहाँ से आयेगी ?"

बुद्धिसेन एकदम अवाक् रह जाते हैं और सोचने लगते हैं यह क्या हुआ ? पुनः मनोवती के मुख को देखते हैं। तब मनोवती हंसकर विनम्र शब्दों में कहती है—

"अबकी बार तो मैं आपकी बात रख लूँगी और मोती दे दूँगी। परन्तु मेरे स्वामिन्! अब आगे से आप बिना जाने-बूझे ऐसी गलती नहीं कर देना।"

2.1.3 मनोवती ने पति को दर्शन प्रतिज्ञा के बारे में बताया—

इसके बाद वह अपने पति को अपनी दर्शन प्रतिज्ञा के विषय में आद्योपांत घटना सुनाती है, वह कहती है—

"प्रियतम! मैंने बाल्यकाल में दिगम्बर मुनिराज के समीप ही विद्या ग्रहण किया था, मेरे संस्कार धर्म के बहुत ही उज्ज्वल थे। जब मैं यौवन अवस्था में आई, मेरे पिता ने पुरोहित के द्वारा बहुत से देशों का अन्वेषण करके मेरे लिए आपको योग्य वर निर्धारित किया। मैंने समझ लिया कि अब मेरी शादी होने वाली है। एक दिन पुनः मैं महामुनि के निकट गई और दर्शन-स्तुति करके उनसे प्रार्थना करने लगी—भगवन्! मुझे कोई ऐसा नियम दीजिए कि जिससे मेरा जीवन सार्थक हो जावे।.....उस समय मुनिराज ने मुझे सर्व रत्नों में शिरोमणि शीलव्रत दिया पुनः मैंने और कुछ इच्छा

व्यक्त की तब उन्होंने पुष्पांजलि व्रत करने का उपदेश देकर उसकी विधि बताई और मैंने गुरु से यह व्रत भी ग्रहण किया है।

इतने पर भी मुझे संतोष नहीं हुआ और मैंने ऐसा नियम लिया कि मैं जिनेन्द्रदेव के मंदिर में जब गजमोती के पुंज चढ़ाऊँगी, तभी भोजन करूँगी। स्वामिन्! इसी नियम से मैंने आपके घर में तीन उपवास कर डाले थे और फिर भाई मनोज कुमार के आने पर भेद खुलने पर आपके पिता ने मुझे ढेरों गजमोती दिखाये थे और उन्होंने कहा 'बेटी! जब तक तू जियेगी, तब तक ये मोती खत्म नहीं होंगे। तू मनमाने गजमोती चढ़ा और जिनेन्द्र देव की आराधना कर।' लेकिन मेरे दुर्भाग्य ने आपको ही उनसे जुदा कर दिया।

".....मैं इस रतनपुर के बगीचे में तीन दिन तक भूखी रही और रास्ते से चार दिन की निराहार थी। सात उपवास के बाद भी मैंने मन चंचल नहीं किया। प्रतिज्ञा से च्युत होने का मेरे मन में अणुमात्र भी विकल्प नहीं हुआ। जब आप बार-बार मेरे शरीर की अस्वस्थता पर चिन्ता व्यक्त कर रहे थे।.....प्राणनाथ! मैं उस समय अपने आपको पत्थर का बनाकर स्थिर थी। मैं आपसे क्या कहती और आप मेरी क्या सहायता करते ? किन्तु.....धर्म का प्रभाव अचिन्त्य है। देवों ने आकर मुझे जिनेन्द्रदेव के दर्शन कराये और मेरी प्रतिज्ञा पूरी की। बगीचे में अकस्मात् नीचे मेरा पैर धसका, मैंने शिला उठाकर देखा तो विशाल जिन मंदिर था.....ओहो! उसका क्या वर्णन करना! वहाँ मैंने गजमोती चढ़ाये और पुनः आते समय शिला के पास मुझे ये दो मोती मिले। ये नर-मादा मोती हैं इनका यह स्वभाव है कि ये अकेले कभी नहीं रहेंगे-नियम से नर मोती मादा के पास आ जायेगा।"

सारे रहस्य को सुनकर बुद्धिसेन आश्चर्य से अपनी प्राणप्रिया का मुख अवलोकन करते हैं और आनन्द में विभोर हो जाते हैं। अपने भाग्य को धन्य समझते हैं।

2.1.4 नर मोती पुनः आया मादा मोती के पास, बुद्धिसेन ने राजा को मोती का रहस्य बताया—

अर्धरात्रि में पुनः वह 'नर मोती' उड़कर मनोवती के पास रखी हुई 'मादा मोती' के पास आ जाता है। दूसरे दिन बुद्धिसेन पुनः मनोवती से मोती लेकर राजा के दरबार में पहुँचता है और राजा को भेंट में प्रदान करता है। राजा पुनः भंडारी को बुलवाते हैं और भंडारी तो मोती का डिब्बा खाली देखकर वहीं स्तब्ध हो जाता है। वह सोचता है—अरे! मैंने डिब्बे में रखकर तिजोरी में डिब्बा रखा और उसे सात ताले की कोठरी में बंद करके रखा था तो भी यह क्या हुआ ?

खैर! जैसे-तैसे साहस करके भण्डारी दरबार में उपस्थित होता है और पुनः राजा के सामने गिड़गिड़ाता है। राजा आज तो उसके ऊपर आगबबूला हो उठते हैं किन्तु बुद्धिसेन कुमार महाराज के क्रोध को शांत करते हैं और कहते हैं—

"राजाधिराज! इन मोतियों का रहस्य देखिये! मैं अभी आपकी इस मोती का जोड़ा मिलाये देता हूँ और अब ये आपके महल में रहेंगे। यह जो मोती मैं आपको दे गया वह 'नर' मोती था। यह हजारों कोश की दूरी पर क्यों न हो किन्तु उड़कर 'मादा' मोती के पास पहुँच जाता है यह इसका स्वभाव है अतः अभी तक दो दिन हुए यह 'नर' मोती बराबर उड़कर चला जाता रहा है। इसमें आपके भण्डारी का रंचमात्र भी दोष नहीं है।"

दूसरा मोती देते हुए—

"लीजिए महाराज! यह 'मादा' मोती है, अब ये दोनों आपके यहाँ रहेंगे।"

2.2 राजा यशोधर ने अपनी कन्या के साथ बुद्धिसेन के विवाह का निर्णय किया—

रतनपुर नरेश यशोधर अत्यधिक प्रसन्न होकर मन में सोचते हैं—यह कुमार उत्तम कुल प्रसूत है, बुद्धिमान् है और पुण्यवान् है। इसने मुझे अनुपम भेंट दी है बदले में मैं भी इसे कृतार्थ करूँ.....कुछ क्षण सोचकर महाराज निर्णय कर लेते हैं कि इसे अपनी 'गुणवती' कन्या देना।

"कुमार बुद्धिसेन! मैं आपसे बहुत ही प्रसन्न हूँ और आपसे अपना स्थायी संबंध स्थापित करना चाहता हूँ।.....मेरी एक गुणवती नाम की कन्या है। मेरी दृष्टि में वह सर्वथा आपके ही योग्य है। आप उसे स्वीकार करें तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँ।"

बुद्धिसेन राजा की बात सुनकर लज्जा से अपना माथा झुका लेते हैं और मौन से ही स्वीकृति दे देते हैं भला राजपुत्री किसे नहीं भायेगी ?

महाराज उसी समय मंत्री से कहकर ज्योतिषी को बुलवाते हैं और शुभ मुहूर्त निकलवाते हैं। शहर भर में चर्चा फैल जाती है कि गुणवती राजपुत्री के भाग्य से अकस्मात् रतनपुर में कोई एक 'नररत्न' आया है। राजा ने वैशाख सुदी तीज को कन्या का विवाह निश्चित कर दिया।

2.2.1 बुद्धिसेन ने मनोवती को सुनाया विवाह का समाचार—

बुद्धिसेन वहाँ से उठकर घर पहुँचते हैं और मनोवती से कहते हैं—"प्रिये! तुमने मुझे मेरे द्वारा राजा को मोती की भेंट दिलाकर गहरे बंधन में बँधवा दिया।"

"क्या हुआ कहिए तो सही ? आप तो बहुत ही प्रसन्न दिख रहे हैं।"

राजा ने अपनी कन्या के साथ मेरी शादी करने का निर्णय कर लिया है और मुहूर्त भी.....।

मनोवती बीच में ही बात काट कर हँसते हुए—

"अच्छा, अच्छा! तो आप राजजमाई हो गये। ठीक है, अब तो आप मुझे न भूल जाना।"

"वाह! प्राणबल्लभे! कैसी बातें कहती हो ? यह सब तुम्हारा ही प्रसाद है। तुम्हारी ही प्रतिज्ञा के प्रभाव से ये मोती मिले और मोतियों की भेंट से ही मुझे राजसम्मान प्राप्त हुआ है। प्रिये! यह एकमात्र तुम्हारी प्रतिज्ञा का ही चमत्कार है। जो चंद मिनटों में अप्रतिम वैभव से मिला रहा है, रंक से राव बना रहा है और उच्च स्थान पर पहुँचा रहा है। सच है.....धर्म के प्रसाद से ही विष भी अमृत बन जाता है, दुर्दिन भी मंगलमयी हो जाते हैं और आकाश से भी रत्नों की वर्षा होने लगती है।"

"इसलिए स्वामिन्! हमेशा धर्म की उपासना करते रहिए।"

"ठीक ही है प्रिये! जब धर्म की मूर्तिस्वरूप तुम मेरे घर में विद्यमान हो तो भला मैं धर्म से पराङ्मुख कैसे हो सकूँगा ? प्रिये! मैं सदैव तुम्हारी आज्ञा का पालक ही रहूँगा।"

"आप यह क्या कह रहे हैं ? आप तो सदैव हमारे पूज्य हैं। मैं सदैव आपकी आज्ञाकारिणी आपके चरणों की दासी हूँ। आपके सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होना यह मेरा परम कर्तव्य है और मेरा परम सौभाग्य है कि आप मुझे अपने साथ लेते आये हैं।"

"सच है प्रिये! यदि आप मेरे साथ न होतीं तो आज यह उन्नति का दिन देखने को नहीं मिलता।"

इसी प्रकार से उभय दम्पत्ति सुखपूर्वक वार्तालाप करते हुए कुछ क्षण बाद निद्रादेवी की गोद में पहुँच जाते हैं। प्रातः मंगल वाद्यों के साथ प्रभाती होती है। दोनों उठकर अपनी धर्म क्रिया में तत्पर हो जाते हैं।

2.2.2 कुमार बुद्धिसेन और गुणवती राजपुत्री का विवाह—

वैशाख सुदी तीज के दिन बड़े ठाटबाट से कुमार बुद्धिसेन का विवाह राजकन्या गुणवती के साथ हो जाता है। महाराज यशोधर अपने जमाई को अपना चौथाई राज्य देकर उसे अनेकों ग्रामों का राजा बना देते हैं। मनोवती भी प्रसन्न है, क्यों न हो ? क्योंकि उसकी प्रतिज्ञा के प्रभाव से यह सब उन्नति हो रही है। विवेकशील पत्नी अपने पतिदेव की उन्नति को देखकर अपनी ही उन्नति समझती है। मनोवती तत्त्वज्ञान से भरपूर है। उसने मुनिराज के पास धर्म ग्रन्थों का गहरा अध्ययन किया है, वह अपने में मगन है।

कुमार बुद्धिसेन अब जौहरी पुत्र ही नहीं रहे बल्कि राजा हो गये हैं और मनोवती उनकी महारानी है। बुद्धिसेन अपनी बुद्धि के बल से उस रतनपुर में सभी के स्नेहभाजन बन चुके हैं और मनोवती भी सभी के लिए एक आदर्श महिलारत्न प्रख्यात हो चुकी है। मनोवती का धवल यश चारों तरफ अपनी सौरभ को बिखेर रहा है।

2.3 बुद्धिसेन मनोवती से मिलने हेतु पधारे—

महल के उद्यान में चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिख रही है। क्रीड़ा सरोवर जल से परिपूर्ण भरे हुए हैं और उनमें लाल कमल खिल रहे हैं किसी सरोवर में श्वेत कमल फूल रहे हैं। पवन उन कमलों की पराग मिश्रित सुगन्धी को चुरा-चुराकर ले जा रहा है और मनचाहा सबको बांट रहा है। मेघ की गर्जना सुनते ही मयूरों का तांडव नृत्य शुरू होता है। एक मयूर तो अपनी मयूरनी के सामने थिरक-थिरक कर नाच रहा है। सरोवरों में राजहंस अपनी हंसी के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं, बत्तखें पानी में तैरती हुई ऐसी मालूम पड़ती हैं मानो विद्याधरों के छोटे-छोटे विमान ही पृथ्वी पर उतर आये हों। भास्कर भगवान् अपने सहस्र करों से दिनश्री का आलिंगन करके अब परदेश प्रस्थान के समय उसे अपनी भुजाओं से अलग करना चाहते हैं किन्तु दिनश्री स्वामी के वियोग को सहन करने में असमर्थता व्यक्त करते हुए ही मानो रंग-बिरंगी साड़ी पहनकर पति के साथ चलने को तैयार हो जाती है किन्तु भास्करदेव के पुनर्मिलन के आश्वासन से वह वहीं ठहर जाती है।

महल के अग्रिम भाग से मनोवती के नेत्र चारों ओर की शोभा को निरख रहे हैं। अकस्मात् सामने से कौन आ रहा है ? ओहो! पतिदेव!.....आज इधर कैसे चले आ रहे हैं ? क्या कोई विशेष कारण आ गया ? क्या बिना कारण से नहीं आते..... ? हो सकता है कि आज कोई पुरानी स्मृति आ गई हो।

2.3.1 मनोवती ने बुद्धिसेन को दी उलाहना—

कुमार बुद्धिसेन ऊपर पहुँचते हैं और मनोवती स्वागत के लिए खड़ी हो जाती है। पतिदेव के उचित आसन पर बैठने के अनंतर मनोवती भी पास में बैठ जाती है—

"आप राजजमाई हो गये हैं, फिर भला आज इधर कैसे आ गये ? कोई विशेष हेतु ?....."

बुद्धिसेन अतीव शर्म से माथा नीचा कर लेते हैं, कुछ भी जवाब नहीं दे पा रहे हैं। मन ही मन सोचने लगते हैं— ओहो! मैंने बहुत बड़ी गलती की है।

".....अब तो आप राजा के एकमात्र स्नेहभाजन हैं। फिर गुणवती जैसी गुणवती राजदुलारी आपके चरण दबाती है। सच है, राज्यलक्ष्मी और मद को न करे ऐसा होना प्रायः कठिन ही है.....।"

मनोवती कुछ क्षण रुक जाती है किन्तु बुद्धिसेन जब एक शब्द भी नहीं बोलते हैं तब पुनः वही बोलती चली जाती है।

"स्वामिन्! वे बातें तो सर्वथा भूल जाने की ही हैं कि आपको आपके पिता ने घर से निकाल दिया और आप हस्तिनापुर आये, मैंने हठपूर्वक आपका साथ किया। हाँ! अब तो आप राजठसक में डूबे हुए हैं पुनः आपको मेरी स्मृति आज कैसे आ गई ?"

"अस्तु! कोई बात नहीं है। आपने मुझे भुला दिया तो भी आपकी कोई हानि नहीं होगी किंतु.....स्वामिन्! ऐसे ही राज्यलक्ष्मी के नशे में होकर आप धर्म को नहीं भुला देना कि जिसके प्रसाद से आप इस वैभव को प्राप्त हुए हैं।"

"मेरे से यद्यपि बहुत बड़ा अपराध हुआ है फिर भी आपका हृदय विशाल है, आप एक बार क्षमादान दीजिए.....शायद भविष्य में पुनः ऐसी गलती अब नहीं हो सकेगी।" कुछ क्षण सोचकर, "प्राणप्रिये! अब आप जो भी आदेश दें, मैं करने को तैयार हूँ।"

2.3.2 पति के क्षमा मांगने से शांत मनोवती ने जिनमंदिर निर्माण कराने की इच्छा व्यक्त की—

मनोवती शांत हो जाती है और पुनः विनम्र शब्दों में बोलती है—

"प्रियतम्! आपने प्रत्यक्ष में धर्म के फल को देखा है कि जिसने जंगल में अपने को उठाकर मंगल में स्थापित किया है। चारों पुरुषार्थों में यह धर्म पुरुषार्थ ही प्रथम पुरुषार्थ है। जितने भी संसार के उत्तम-उत्तम सुख हैं, वे सब धर्मरूपी बगीचे के ही फल हैं और तो क्या अक्षय-अनंत-अविनाशी मोक्ष सुख भी इस धर्म के प्रसाद से ही मिलता है और धर्म का निकेतन श्रीजिनमंदिर ही है अतः मेरी इच्छा है कि आप एक विशाल जिनमंदिर का निर्माण कराइये।"

बुद्धिसेन अतीव प्रसन्न होकर—

"प्रिये! आपने बहुत ही उत्तम बात सोची है। यह कार्य तो मैं अवश्य ही करूँगा। प्रातः ही ज्योतिषी से मुहूर्त निकलवा कर नींव रखा देनी है.....।"

"स्वामिन्! आगम में जिनमंदिर बनवाकर उसमें जिनप्रतिमा के विराजमान कराने का पुण्य अचिन्त्य कहा है। इस महान् कार्य से आपका सर्वत्र यश फैलेगा और परलोक में भी उत्तम फलों की प्राप्ति होगी। जिनबिम्ब निर्माण का फल तो अन्त में मोक्षपद ही माना गया है।"

"आपके आदेश का पालन अतिशीघ्र करूँगा। अब आप और कुछ सुनाइये।"

हँसकर मनोवती कहती है—

"मुझे तो जो भी सुनाना था सुना दिया, अब आप ही कुछ सुनाइये चूँकि आप बहुत दिन बाद आये हैं। इतने दिनों में आपको राजनीति का भी काफी अनुभव आ चुका होगा।"

"क्षमायाचना के बाद आप मेरी गलती को पुनः क्यों दोहरा रही हैं ?"

"मैं तो इस समय सहजभाव से ही पूछ रही थी यदि आपको कुछ नहीं बताना है तो छोड़िये।"

मनोवती कुछ क्षण सरस मधुर वार्तालाप के द्वारा पति के मन को हल्का करती है। प्रेमपूर्ण वातावरण में बुद्धिसेन अपनी पत्नी के गुणों का मूल्यांकन करते हुए मानो उसे अपना सर्वस्व समर्पित करते हुए ही उसके गाढ़ आलिंगन में बँध गये थे.....।

2.3.3 बुद्धिसेन ने राजा को जिनमंदिर निर्माण की बात बताई—

चारों तरफ चिड़ियाँ चहचहा रही हैं, मंगल बाजे बज उठे, वैतालिक ने प्रभाती के मधुर गान से मंगलमयी ऋषभदेव यश गाया, मनोवती उठती है और सबसे पहले महामंत्र का स्मरण करते हुए पंचपरमेष्ठी को नमस्कार करती है पुनः पतिदेव के चरण स्पर्श करके अपने प्राभातिक कार्यों में संलग्न हो जाती है। बुद्धिसेन भी स्नानादि से निवृत्त होकर अपनी सुमुखि मनोवती के साथ जिनेन्द्रदेव का अभिषेक-पूजन करके भोजन करते हैं और वहाँ से चलकर सीधे राजदरबार में पहुँचते हैं।

महाराज यशोधर अपने जमाई का समुचित सत्कार करके अपने पास ही भद्रासन पर बिठा लेते हैं और कुशल क्षेम पूछकर व्यंग्य रूप से मनोविनोद करते हुए कुमार के मन को प्रसन्न करते हैं। समय पाकर बुद्धिसेन निवेदन करते हैं—

"पूज्यपाद! आपके समक्ष मैं कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।"

"कहिये कहिये! मैं तो इसी प्रतीक्षा में हूँ कि आप लोगों का कुछ उपकार कर सकूँ।"

"महाराज! आपकी पुत्री मनोवती एक विशाल जिनमंदिर बनवाने की इच्छा व्यक्त कर रही है।"

यशोधर अतीव प्रसन्न हो गद्गद होकर—

"बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है! वाह! क्या उत्तम विचार है। धन्य है वह रमणीरत्न, धन्य है! कुमार! तुमने ऐसी धर्मपत्नी पाकर वास्तव में जीवन में सब कुछ पा लिया है। तुम बहुत ही पुण्यशाली आत्मा हो.....। अच्छा तो तुम इस रतनपुर शहर में जहाँ चाहो वहाँ, जितनी जगह में चाहो उतनी जगह में, जितना बड़ा मंदिर चाहो उतनी बड़ी जगह घेरकर काम शुरू करा दो।"

"ज्योतिषी से पहले मुहूर्त निकलवाना होगा।"

"हाँ, हाँ, मंत्रिन्! ज्योतिषी को शीघ्र ही बुलावो।"

कुछ ही क्षण में ज्योतिषी आकर यथोचित् अभिवादन करता है—

"जय हो! जय हो! महाराजाधिराज की जय हो!"

"हाँ, पण्डितजी विराजिये।"

पंडितजी कर्मचारी के द्वारा प्रदत्त आसन पर बैठ जाते हैं।

"मंदिरजी के निर्माण हेतु बहुत ही उत्तम मुहूर्त निकालिए।"

पंडितजी कुछ देर तक पंचांग देखते हैं और गणित का हिसाब करते हुए पूछते हैं—

"राजन्! किनके नाम से ?"

"हमारे जमाई बुद्धिसेन के नाम से।"

बुद्धिसेन की तरफ देखकर—"धन्य हो महाराज, धन्य हो! आप बड़े ही महिमाशाली हो। श्रीमान् जी! कल सुबह साढ़े आठ बजे का मुहूर्त बहुत ही श्रेष्ठ है। इस मुहूर्त पर किये गये निर्माण का यश.....क्या बताऊँ आपको, युग-युग तक इस पृथ्वीतल पर फैलाता रहेगा। जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र की कीर्ति आज भी भूमण्डल पर फैल रही है और न जाने कब तक फैलती रहेगी और ऐसे ही महाराज! इस मुहूर्त पर मंदिर के निर्माण को प्रारंभ करने से आप लोगों की कीर्ति अमर हो जायेगी।"

"ठीक, ठीक! बहुत ठीक! अब विधानाचार्य को बुलवाकर उनसे समझ लीजिए, कल प्रातः किन-किन वस्तुओं की आवश्यकता होगी। अच्छा, आप तो अब प्रमुख मंत्री के साथ जाकर जगह का निर्णय कीजिए, देर न कीजिए।"

"जो आज्ञा महाराज!"

बुद्धिसेन प्रमुख मंत्री के साथ स्थान का निर्णय करके एक कोश की जगह को घेर कर रत्नचूर्ण से लाइन डलवा देते हैं। पुनः मनोवती के महल में पहुँचकर सारी बात सुना देते हैं।

2.3.4 शिलान्यासविधिपूर्वक प्रारंभ हुआ जिनमंदिर निर्माण कार्य—

प्रातःकाल विधानाचार्य की आज्ञा के अनुसार कुमार अपनी धर्मपत्नी मनोवती के साथ शुभ्र धौत वस्त्र पहन कर श्री जिनेन्द्रदेव की आराधना करके उस स्थान पर पहुँचकर श्री जिनभवन के नींव खनन की विधि को विधिवत् करते हैं। एक कोश के चारों ओर नींव की खुदाई शुरू हो जाती है। पुनः शुभ मुहूर्त में शिलान्यास विधि करके निर्माण काम चालू करा देते हैं। योग्य कार्यसंचालक को बुलाकर बुद्धिसेन आदेश देते हैं—

"हाँ, देखिये, धनपालजी! मैंने तिजोरियों की कोठी खुलवा दी है। जितना द्रव्य लगे लेते जाइये और खुले मन से खुले हाथों द्रव्य खर्च कीजिए। जो भी कारीगर (मिस्त्री) और मजदूर आवें, उन्हें काम पर लगाइये। किसी को वापस नहीं करना। समझ गये ना!"

"हाँ सरकार! समझ गया। बहुत ही बढ़िया काम होगा। हमें तो बड़े-बड़े मंदिरों का, रजवाड़ों का और हवेलियों का बहुत बड़ा अनुभव है। मैं तो अच्छे-अच्छे नक्शे बनाने वालों को, चित्रकारों को और अच्छे-अच्छे कारीगरों को बुलाऊँगा। बड़ा शानदार मंदिर बनेगा महाराज! आप तो देखते ही हर्ष में विभोर हो उठेंगे।"

"ठीक है, और जो कुछ भी आवश्यकता हो, मुझे कहना।"

चारों तरफ दूर-दूर देश में चर्चा फैल जाती है कि बहुत बड़ा जिनमंदिर बन रहा है। तमाम मजदूर चले आ रहे हैं और काम दिन पर दिन द्रुतगति से चल रहा है।

2.4 भाग्य की विडम्बना—

दैव की लीला बड़ी विचित्र है, यह कभी किसी पर रहम नहीं करता है। अतिशय कठोर प्रकृति वाला है। चौदह परदेशी लोग आकर रतनपुर के बाहर बगीचे में ठहरे हुए हैं। उनके साथ छोटे-छोटे बच्चे रो रहे हैं। वे लोग कई दिनों के भूखे हैं। धनदत्त, सोमदत्त, विनयदत्त, जिनदत्त, अमरसेन और धरसेन छहों भाई खड़े-खड़े चर्चा कर रहे हैं। सभी स्त्रियाँ किंकर्तव्यविमूढ़ हुई बैठी हुई बच्चों को चुप कर रही हैं। बच्चे जोर-जोर से रो रहे हैं, भूख से व्याकुल हो रहे हैं। बेचारे वृद्ध दंपत्ति आँखें गीली किये हुए बैठे कुछ सोच रहे हैं। धनदत्त आगे बढ़कर कहता है—

"चलो भाई चलो! अब देरी ना करो, देखो ना! परसों उस छोटे से गाँव में भीख में कुछ सूखे चने मिले थे जो कि

माँ और पिता से तो खाये भी नहीं गये थे। कल दिन-रात चलते-चलते हो गया, अन्न-पानी नसीब नहीं हुआ है। आज भी इतना दिन ऊपर चढ़ आया है मेरे खुद के प्राण कण्ठ में आ रहे हैं। चलो चलो! देखें, गाँव तो पास ही है। यह तो बहुत बड़ा शहर दिख रहा है। कुछ अच्छी भीख मिले तो सबका पेट भरे। हाय! बेचारे बच्चे तो कैसे बिलख रहे हैं।"

"भाई! सब न चलो, तो एक दो लोग ही चलो। कोई निकलो तो सही! लो मैं साथ चलता हूँ।

"हाँ, हाँ धरसेन! तू आगे बढ़ तभी कोई आगे बढ़ेगा, ये लोग तो बातों में ही घंटों निकाल देंगे। देख तो सही! तेरे पिताजी की क्या स्थिति हो रही है ? नहीं तो चल मैं भी साथ चलती हूँ।"

"नहीं नहीं माँ! तुम तो आज बहुत थकी हो.....। तुम बैठ जावो.....। हाँ, देखो! इस झाड़ के नीचे ठंडी-ठंडी हवा चल रही है, थोड़ा सा आराम कर लो।"

"अरे बेटा! पेट में तो आग जल रही है, ऊपर से ठण्डी हवा क्या करेगी ?"

छहों लड़के जल्दी-जल्दी शहर की तरफ चलते हैं। अन्दर घुसकर एक दुकान के पास खड़े हो जाते हैं—

"भाई साहब! हमें कुछ पैसे दे दो।"

वह दुकान मालिक सेठ इन्हें ऊपर से नीचे तक देखता है और आश्चर्य से चकित होकर कहता है—

"अरे! भाई! तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ?....."

"भइया! दो चार पैसे के लिए हम लोगों का इतिहास क्या पूछना ?"

दुकान मालिक इनका ऐसा उत्तर सुन तथा दूसरी तरफ से आने वाले अपने-अपने ग्राहकों को देखकर जल्दी से कुछ पैसे उन्हें देता है और कहता है—अच्छा, अच्छा! बढ़ो आगे.....। धनदत्त कहता है—

"भाई धरसेन! यह लो, तुम पहले कुछ खाने का सामान लेकर चलो जिससे बच्चों को तसल्ली हो। हम लोग आगे बढ़कर कुछ और प्राप्त कर अपने साथी के पेट भरने का पूरा सामान लेकर आ जावेंगे।"

"ठीक!"

धरसेन कुछ रोटियाँ खरीद कर जल्दी से वापस बगीचे में पहुँचता है। इधर पाँचों भाई धीरे-धीरे आगे बढ़कर अन्य कुछ माँगकर उनका सामान खरीदकर वापस बगीचे में आ जाते हैं। सभी लोग स्नानादि करके कुछ न कुछ खाकर पानी पीकर कलेजे को शांत करते हैं। हेमश्री अपने पतिदेव के पैर दबाने लगती है। सभी लोग पास में बैठ जाते हैं। चर्चायें शुरू हो जाती हैं—

"पिताजी! कल दिन में अपन सभी लोग शहर में ही चलेंगे। वहीं कहीं गुजारा करेंगे। यहाँ बगीचे में कब तक पड़े रहेंगे ? देखो ना! ठंडी, गर्मी, भूख-प्यास सहन करते-करते सब बच्चे तो बीमार हो गये हैं। हम लोगों से भी अब जंगल की धूप-छाँव बर्दाश्त नहीं होती है। वैसे शहर अच्छा दिखता है, लोग भले हैं, आज कई दिन बाद तो पेट में पूरा अन्न पहुँचा है।"

"पुत्रों! जैसा तुम कहो वैसा करेंगे। क्या करें ! बुद्धि नहीं काम करती है, भीख माँगते-माँगते भी कितने दिन निकल गये हैं अब अपने दिन कब पलटा खायेंगे ?.....कौन जाने ?"

कड़कड़ाती ठण्डी की रात! सभी बेचारे रात भर बैठे-बैठे सिकुड़े-सिकुड़े निकाल रहे हैं। न तन पर पूरे वस्त्र हैं और न ओढ़ने-बिछाने को रजाई, गद्दे या कम्बल। बच्चे तो माँ की गोद में चिपटे हुए सी-सी करके दाँत कड़कड़ा रहे हैं।

प्रभात होने पर कुछ ऊपर सूर्य आ जाने के बाद सभी लोग एक साथ शहर में प्रवेश करते हैं। चलते हुए मार्ग में रुक-रुककर पथिकों से और दुकानों से कुछ पैसों की याचना करते हैं। आखिर तो पेट भरना ही पड़ता है। यह पेट अगर न होवे तो फिर किसी को कुछ दुख ही न रहे। धीरे-धीरे वे सर्राफों के बाजार में पहुँच गये। शहर के एक प्रमुख जौहरी ने दूर से इन्हें देखा, वह तो कुछ देर तक देखता ही रहा, पुनः सन्मुख आकर बोलता है—

2.4.1 सभी ने मजदूरी करने का फैसला किया—

"महाशय! आप लोग कोई उच्चकुलीन दिख रहे हो, मालूम पड़ता है कि किसी आकस्मिक संकट के आने से मारे-मारे फिर रहे हो! अरे भाई! तुम लोग भीख क्यों माँगते हो ? कुछ मेहनत मजदूरी करके पेट भरो।"

"भाई! हम लोग अपरिचित हैं इसलिए हमें नौकरी पर कोई रखना नहीं चाहता है। क्या करें ?"

"यहाँ पर राजा के जमाई साहब बड़ा सा मंदिर बनवा रहे हैं, उसमें हजारों मजदूर काम कर रहे हैं। तुम लोग वहाँ पहुँच जाओ, वे कुमार बहुत ही दयालु हैं तुम्हें अवश्य नौकरी पर लगा देंगे।"

"भाई साहब! हमें कोई नहीं जानते हैं, नहीं रखेंगे। यदि आप दया करके हम लोगों को नौकरी दिलवा दें तो.....आपकी बड़ी मेहरबानी होगी।"

सभी लोग दीनमुख करके गिड़गिड़ाने लगते हैं। जौहरीजी दया से आर्द्र होकर उन्हें साथ लेकर निर्माण किए जाने वाले जिनमंदिर की ओर चल पड़ते हैं। आगे-आगे जौहरी साहब चल रहे हैं व पीछे-पीछे सभी परदेशी भिखारी चल रहे हैं। बेचारे मन ही मन अपने भाग्य को कोसते हुए और कृत कर्मों की निंदा करते हुए कदम से कदम बढ़ाते चले जा रहे हैं। वहाँ पहुँचकर जौहरी जी ड्योढ़ीवान से कहते हैं—

"मुझे मालिक से मिलना है।"

द्वारपाल अन्दर जाकर—"महाराज! शहर के सुखपाल जी जौहरी आपकी सेवा में पधारे हुए हैं। उनके साथ कुछ मजदूर भी हैं। वे आज्ञा चाहते हैं ?"

"उन्हें सादर अन्दर ले आओ।"

2.4.2 कुमार बुद्धिसेन कुटुम्बियों की हालत देख आश्चर्यचकित हो उठे—

सभी लोग अन्दर प्रवेश करते हैं। राजदरबार जैसा ठाठ दिख रहा है। कुमार बुद्धिसेन मध्य में सिंहासन पर आरुढ़ हैं। राजसी वस्त्राभरणों से अलंकृत हैं। कानों में लटकते हुए कुण्डल और गले में पड़े हुए रत्नहार की किरणों से चेहरा इतना अधिक चमक रहा है और चारों तरफ इतनी किरणें फैल रही हैं कि मानों सभारूपी आकाशमण्डल में तेजस्वी भास्कर ही उदित हो रहा है। चारों तरफ रत्नों की चकाचौंध से सभा में रंग-बिरंगा प्रकाश जगमगा रहा है। आजू-बाजू मंत्री और सभासद लोग बैठे हुए हैं। मनोरंजन चल रहा है। जौहरी सुखपाल कुमार का अभिवादन करते हैं और कुमार के द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर बैठ जाते हैं—

"कहिये सेठजी! आज आपने किस हेतु से मेरा स्थान पवित्र किया है ?"

"श्रीमान् जी! ये कुछ परदेशी लोग आये हुए हैं। बेचारे बड़े दुःखी हैं। आप इन्हें अपने यहाँ निर्माण कार्य के लिए नौकरी पर रख लीजिए।"

सभी बेचारे हाथ जोड़े खड़े हैं। बुद्धिसेन उन सबको अपलक दृष्टि से देख रहे हैं.....।ओहो!...ये मेरे माता-पिता और भाई-भावज!! अरे रे! रे! ये लोग इस दुरावस्था को कैसे प्राप्त हो गये ?....आखिर क्या हुआ ?.....हाय! इस चंचला लक्ष्मी को धिक्कार हो! इतनी जल्दी छप्पन करोड़ की सम्पत्ति कहाँ चली गई ? ये तो मुझे पहचान भी नहीं रहे हैं।"

"ठीक है सेठजी! आप निश्चिन्त होइये। इन सबका काम हो जायेगा।"

"अच्छा तो मैं चलता हूँ।"

जौहरी सुखपाल वहाँ से निकल जाते हैं। वे सभी परदेशी खड़े हैं, कुमार कहते हैं—

"तुम सभी लोग बैठो! अभी दो घंटे में हम तुम्हें काम पर लगा देंगे।"

2.4.3 मनोवती सारी घटना सुनकर दुखी हो उठी—

तत्क्षण वहाँ से उठकर कुमार अपने महल में पहुंचते हैं और मनोवती से कहते हैं—

"प्रिये मनोवती! अभी एक महान् आश्चर्य की घटना सुनाने के लिए मैं आया हूँ।"

"सुनाइये, सुनाइये!"

उत्सुकता से पास में बैठ जाती है।

"मेरे माता-पिता, भाई और भावज सभी लोग मेरे यहाँ मजदूरी करने आये हैं।"

आश्चर्यचकित हो मनोवती बोलती है—

"ऐं!! आप क्या कह रहे हैं ? वे लोग कहाँ हैं ? आपने उन्हें 'वे ही लोग हैं' ऐसा कैसे जाना ?

"ओहो! क्या मैं इतनी जल्दी अपने कुटुम्बियों को भूल जाऊँगा ? क्या मैं उन्हें पहचान नहीं सकता ? अभी कितने दिन हुए हैं, शायद एक वर्ष भी तो नहीं हुआ है।"

"स्वामिन्! मुझे विश्वास नहीं है।.....हो भी सकता है। दैव का क्या भरोसा ? यह क्षण में राजा और क्षण में रँक बना देता है।.....फिर भी इतनी अपरिमित सम्पत्ति कहाँ चली गई ?"

"आप उसकी चिन्ता छोड़िये। मैं आपसे कुछ विचार-विमर्श करने आया हूँ। उस पर गौर कीजिए।"

"कहिए!"

"इन दुष्टों ने मुझे अकारण ही घर से निकाला है और अब दर-दर के भिखारी बने घूम रहे हैं। फिलहाल तो हमारे यहाँ नौकरी करने आये हैं अब तो हमारा मौका है जो चाहे सो कर सकता हूँ। प्रिये! यदि तुम कहो तो मैं इनकी ऐसी दुर्दशा करूँ कि ये भी कुछ समझें। कहो तो इनकी खाल उतरवा दूँ, या कहो तो इन पर इतना भार धराऊँ कि जितना पशुओं पर भी न लादा जा सके। और कहो तो इन्हें.....

"बीच में बात काटकर—

"हाय! आप क्या बोल रहे हैं ? आपके मुख से ये कैसे शब्द निकल रहे हैं ? आपको क्या हो गया है ? जिन्होंने आपको जन्म दिया ऐसे माता-पिता के प्रति ऐसे शब्द कहते हुए आपको लज्जा नहीं आयी ? धिक्कार है आपके जीवन को! जिनसे आप पैदा हुए हैं, उनके प्रति आपके इतने कड़े शब्द कथमपि उचित नहीं हैं।"

"तो आप क्या चाहती हैं ?"

"अब आप तत्क्षण ही कुटुम्ब का मिलाप करो। अपना परिचय देकर उन्हें सुख सम्पत्ति से सुखी करो। स्वामिन्! आप कितना भी उनका उपकार करेंगे तो भी आप माता-पिता के ऋण से कभी भी उऋण नहीं हो सकते इसलिए अपकार के बदले उपकार ही कीजिए। वास्तव में विचार करके देखा जाये तो यह प्रसंग अत्यन्त बोध दे रहा है। पहली बात तो यह है कि उन्होंने आपका बुरा नहीं किया। आपके और हमारे कर्मों के उदय से ही वैसी समस्या आई। वे तो घर से निकालने में निमित्तमात्र ही हो सकते हैं। पूर्णरूपेण अपने अशुभ कर्मों के उदय से ही अपने को दुःख उठाना पड़ा है। दूसरी बात, अगर वे लोग आपको घर से नहीं निकालते तो आज आप राजजमाई कैसे बनते ?.....जरा सोचो तो सही! तीसरी बात यह है कि जो लक्ष्मी इतनी चँचल है, जिसने क्षणेक में अपने कुटुम्बियों को भिखारी बना दिया है उस लक्ष्मी पर आप भी क्यों इतरा रहे हैं ?

प्रियतम! यह लक्ष्मी सभी के साथ ऐसा ही व्यवहार करती है, किसी को भी नहीं देखती है, अपने को पाकर गर्विष्ठ होने वालों के प्रति यह ऐसा ही घृणित व्यवहार करती है उन्हें नियम से धोखा देती है अतः अब आप वस्तुस्थिति समझकर और लक्ष्मी का अभिमान छोड़कर अपने लोगों को गले से लगाइये।"

2.4.4 कुमार बुद्धिसेन उनसे मजदूरी कराने का लेते हैं कठोर निर्णय—

कुमार कुछ क्षण चुप रहते हैं पुनः बोलते हैं—

"प्रिये! एक बार तो मैं इन लोगों से मजदूरी अवश्य कराऊँगा। फिर जो तुम कहोगी, सो ही करूंगा। मैं एक बार

अपने मन की अवश्य निकालूँगा, पुनः परिचय कराऊँगा।"

"आपका यह सोचना बिल्कुल भी उचित नहीं है।"

"कुछ दिन मजदूरी करके ये लोग अपनी करनी का फल तो पा लें और मैं भी अपने मन की दाह बुझा लूँ।"

"आपका कथन बिल्कुल अनुचित है। अरे! उन्होंने फल तो पा ही लिया है। आप क्या उन्हें फल दिखायेंगे ? वे स्वयं फल भोगते-भोगते ही तो यहाँ तक आये हैं। अब आप जल्दी से उन्हें सुखी कीजिए।"

"नहीं, कुछ दिन इन्हें मजदूरी कराके ही मुझे संतोष होगा।"

"ओह! अभी भी आप नहीं चेत रहे हैं जबकि प्रत्यक्ष में लक्ष्मी के गर्व का दुष्परिणाम आँखों से देख रहे हैं। आप.....राज ठसक में डूब रहे हैं इसीलिए आपकी आँखें नहीं खुल रही हैं। जिनके पास छप्पन करोड़ दीनारें थीं, आज चन्द दिनों में ही वे भीख माँगते फिर रहे हैं। यह ज्वलन्त उदाहरण भी आपको सचेत-सावधान नहीं कर रहा है। मुझे तो आपका यह हठ किसी प्रकार से भी उचित नहीं प्रतीत हो रहा है और न ही रुचिकर ही लग रहा है।"

2.4.5 मनोवती ने बुद्धिसेन से माता-पिता से नौकरी न कराने का किया आग्रह—

कुछ क्षण को वातावरण शान्त रहता है पुनरपि कुमार कहते हैं—

"प्रिये! यद्यपि आपकी बातें सर्वश्रेष्ठ हैं। फिर भी मेरे मन में जो कषाय है, उसको शांत करना है। एक बार इन्हें मजदूरी पर लगा दूँ फिर कुछ दिन बाद परिचय देकर के इन्हें सर्वसम्पन्न कर दूँगा।"

"जैसी आपकी इच्छा.....फिर भी स्वामिन्! मैं आपसे एक प्रार्थना करती हूँ वह आपको माननी ही होगी।"

"बोलिये!"

"आप भाई और भावजों से भले ही मजदूरी कराइये किन्तु जिन्होंने आपको जन्म दिया है, उन वृद्ध माता और पिता से मजदूरी न कराइए, उन्हें बैठे ही नौकरी दे दीजिए। यह मेरी करबद्ध प्रार्थना है।"

"ठीक है आपकी यह आज्ञा शिरोधार्य है।"

बुद्धिसेन कुमार महल से निकलकर सीधे अपने दरबार में पहुँचते हैं जहाँ कि वे परदेशी प्रतीक्षा कर रहे हैं। प्रबंधक को बुलाकर कहते हैं—

"देखो! इन लोगों को अपने यहाँ काम में नियुक्त कर लो। ये जो वृद्ध और वृद्धा हैं इनसे भार ढोने का काम नहीं हो सकेगा अतः इन्हें तो बैठे ही वेतन दीजिए और इन छह पुरुषों को और छह महिलाओं को प्रातः दिन उगते ही काम में लगा दीजिए तथा सूर्यास्त तक खूब काम लीजिए। इन्हें एक क्षण भी बैठने नहीं देना और इनके सिर पर खूब ही भार रखना। समझ गये ना!"

"हाँ हाँ! समझ गया मालिक, समझ गया।"

प्रबंधक महोदय कुमार की आज्ञानुसार उसी दिन से उन्हें मजदूरी पर लगा देते हैं और शाम तक कसकर काम लेते हैं और वृद्ध तथा वृद्धा दोनों को एक तरफ बैठे रहने का हुकुम दे देते हैं।

2.4.6 मनोवती ने प्रबन्धक को उन सबसे थोड़ा कार्य कराने का हुक्म दिया—

मनोवती शाम को प्रबंधक को बुलाती है और परदेशियों के बारे में सारी स्थिति स्पष्ट पूछती है—

"रानी साहिबा! जैसा हमें महाराज साहब ने आदेश दिया है, मैं अक्षरशः उसका पालन करूँगा। आप चिन्ता न करें।"

"कहिये तो सही, क्या आदेश दिया है ?"

"हाँ, उन्होंने कहा है कि इन लोगों से बहुत काम लेना। ये लोग सुबह से शाम तक किंचित् भी बैठने न पावें सो मैंने आज ही आधे दिन उनसे खूब मेहनत कराई है बल्कि आप समझो कि मैंने उनसे दिन भर का पूरा काम ले लिया है।"

"अच्छा!.....और वे जो वृद्ध दम्पत्ति हैं उनसे ?....."

"उनके बारे में तो सरकार ने बैठे ही वेतन देने का हुकुम किया है।"

"ठीक! देखिये धनपालजी! ये उच्चकुलीन मालूम होते हैं परिस्थिति से लाचार हो मजदूरी करने आये हैं। इन्होंने आज तक ऐसा काम कभी नहीं किया है, ऐसा लगता है अतः इनसे बहुत हल्का नाममात्र का काम लो तथा विश्रांति करने का बहुत कुछ समय भी बीच-बीच में देते रहो।.....ये तो अभी राजठसक में कुछ भी नहीं समझ रहे हैं।..... किन्तु.....उच्चवंशीय लोगों की स्थिति समझना अपना कर्त्तव्य है।"

धनपाल ने समझा था कि ये महारानी जी और भी कड़ा आदेश देंगी किन्तु उनके मुख से ऐसी बात को सुनकर वह ताज्जुब करने लगता है।.....वास्तव में वह महिला है या साक्षात् दया का ही अवतार है।

"जो आज्ञा स्वामिनी जी!"

धनपाल जी अगले दिन से उन लोगों से बहुत ही हल्का बोझा उठवाते हैं और बीच-बीच में कह देते हैं कि तुम लोग बैठो, आराम करो, अभी काम नहीं है, बहुत लोग काम करने वाले हैं।

2.5 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-चार पुरुषार्थों में से प्रथम पुरुषार्थ.....

(क) काम ☐ (ख) धर्म ☐ (ग) मोक्ष ☐

प्रश्न 2-धर्म का निकेतन..... ही है।

(क) कर्म ☐ (ख) घर ☐ (ग) श्रीजिनमंदिर ☐

प्रश्न 3-मनोवती ने राजा को भेंट चढ़ाने के लिए बुद्धिसेन को क्या दिया था ?

(क) मुहर ☐ (ख) मोती ☐ (ग) वस्त्राभूषण ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-जब बुद्धिसेन को व्यापार शुरू करने के लिए किसी से धन नहीं मिला तो मनोवती ने क्या किया ?

प्रश्न 2-मनोवती के कहे अनुसार बुद्धिसेन मोती लेकर कहाँ और किसे देने जाता है ?

प्रश्न 3-बुद्धिसेन जब राजा को भेंट में मोती देता है तब राजा प्रसन्न होकर बुद्धिसेन को क्या-क्या देता है ? राजा बुद्धिसेन का विवाह किसके साथ करा देता है ?

प्रश्न 4-जब बुद्धिसेन राजा को मोती देकर आता था तो वह मोती मनोवती के पास वापस क्यूँ और कैसे आ जाता था ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-मनोवती की दर्शन प्रतिज्ञा का रतनपुर बगीचे में क्या चमत्कार दिखा ? विस्तारपूर्वक बताइए ?

पाठ-3—मनोवती एवं बुद्धसेन का परिवार के साथ मिलन

3.1 जिनमंदिर का वैभव और सुन्दरता—

मंदिर में परकोटे, मुख्यद्वार, लघुद्वार, बाहर की दीवालें, अन्दर के बहुभाग तैयार हो चुके हैं। अन्दर की दीवालों पर स्वर्ण से, पन्ना, माणिक्य, मरकत आदि से नाना प्रकार के चित्रों का काम शुरू हो गया है। कहीं पर श्री जिनेन्द्रदेव के पंचकल्याणकों का प्रदर्शन इतना भावपूर्ण है कि दर्शक के नेत्र हटाये नहीं हटते हैं। कहीं पर भगवान् ऋषभदेव के दशभवों का विस्तार दिखाया जा रहा है और कहीं पर चक्रवर्तियों का वैभव, उनका चक्ररत्न अपनी प्रभा के समूह से बहुत दूर तक प्रकाश फैला रहा है। कुमार बुद्धिसेन मनोवती के समक्ष निर्माण के संबंध में और चित्रों के संबंध में विचार-विमर्श कर रहे हैं।

"यदि आप कहें तो एक बड़े हाल में श्री जिनेन्द्रदेव के समवसरण का सुन्दर भव्य चित्र बनवा दूँ और उसमें अनेक प्रकार के नग जड़वाकर बहुत आकर्षक करवा दूँ।"

"अवश्यमेव बनवाइये। उसमें मानस्तंभ, सरोवर, खाई, परकोटे, धूलीसाल कोट, कल्पवृक्ष भूमि, प्रासाद भूमि आदि दृश्य बहुत ही बढ़िया होने चाहिए और गन्धकुटी में माणिक्य रत्न से कमलासन बनवाइये।"

"कल से यह काम भी चालू करा दूँगा। मजदूर, चित्रकार, मिस्त्री आदि काम करने वाले लोग दिन पर दिन दूर-दूर से आते ही जा रहे हैं। वहाँ पहुँचकर जब मैं कार्य की प्रगति देखता हूँ तो बड़ा आनन्द आता है।"

3.1.1 कुटुम्बियों को मजदूरी करते देख मनोवती हुई चिन्तित, माता हेमश्री को महल में नियुक्त किया-

मनोवती कुछ गंभीर हो जाती है और कुछ क्षण चुप रहती है। सोचती है कि देखो! अपने कुटुम्ब के लोग मजदूरी में लग रहे हैं जबकि हजारों आदमी काम में जुटे हुए हैं। यह अनर्थ कैसे रोका जाये ? सच है.....कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है, इनका भी क्या दोष है ? उन लोगों का भाग्य अभी तीव्र रूप से फल दे रहा है.....।

"क्यों, आप क्या सोचने लगीं ?"

"स्वामिन्! अब आप अपने कुटुम्बियों को अवकाश देकर परिचय स्थापित कीजिए।"

बुद्धिसेन हँस पड़ते हैं—

"प्रिये! तुम्हें इसकी इतनी चिंता क्यों है ?.....अच्छा! कुछ दिन और निकल जाने दो फिर जैसा तुम कहोगी, वैसा ही होगा।"

"अच्छा! तो आप अपनी माँ को हमारे यहाँ भेज दीजिए। मैं हमेशा अकेली रहती हूँ एक वृद्धा महिला यहाँ रहनी भी तो चाहिए.....।"

कुछ घर का काम धंधा करेंगी, मुझे थोड़ी सुविधा मिलेगी.....।

"ठीक, अभी मैं जाता हूँ, भेज दूँगा।"

कुछ क्षण बाद ही वृद्ध हेमश्री महल में आ जाती है। बेचारी अन्य दासियों के साथ कोई भी काम करना चाहती है किन्तु मनोवती उसे रोक देती है। वह घबराकर बोलती है—

"सरकार ने मुझे यहाँ महल में आपके पास काम-काज टहल सेवा करने के लिए भेजा है।"

"हाँ, हाँ! मुझे भी मालूम है अम्माजी! बैठो, अभी तो तुम आराम करो, बहुत सी दासियाँ हैं, अपना-अपना काम कर रही हैं। अभी तो तुम्हारे लायक कोई काम नहीं दिख रहा है जो होगा सो मैं बताऊँगी।"

3.1.2 मनोवती ने हेमश्री से प्रेमपूर्ण व्यवहार—

मनोवती बहुत ही प्रेम से उनसे बोलती है और हर काम से उसे रोक देती है। बड़े प्रेम से उत्तम भोजन कराती है फिर पूछती है—

"अम्माजी, तुम्हारे घर में कौन-कौन हैं ?"

हेमश्री सकुचाती हुई धीरे-धीरे बोलती है—"मेरे पतिदेव हैं, छह लड़के और उनकी बहुएं हैं तथा बहुओं के बच्चे-बच्चियाँ हैं।"

"सब कहाँ पर हैं ?"

"यहीं पर नूतन मंदिर के पास मालिक ने एक झोंपड़ी बता दी है, हम लोग वहीं पर रहते हैं। बेटे-बहू दिन भर मजदूरी करते हैं ना.....।"

"अच्छा-अच्छा! तो तुम यहाँ आ गई, अब वहाँ खाना कौन बनायेगा ?"

"बहुएं अपने आप.....।"

"वे तो सब मजदूरी में लगे हैं ना।"

"हाँ।"

"तो ऐसा करो, लो यह भोजन तुम ले जावो और सबको जिमाकर आ जावो। हाँ, देखो! किसी को मालूम नहीं पड़ना चाहिए, हाँ.....।"

हेमश्री कुछ क्षण के लिए स्तब्ध हो जाती है फिर मनोवती के द्वारा स्वयं हाथ से दिये गये अनेक सरस पकवान, खीर, पूरी, मावा, मलाई आदि से सहित भोजन को डब्बों में भरकर ले जाती है। कुटिया में पतिदेव के समक्ष पहुँचकर सब सामान रखती है। इतने में सभी लड़के और बहुयें भी आ जाती हैं क्योंकि प्रबंधक महोदय इन्हें सबसे पहले वेतन देकर निपटा कर भेज देते हैं। सेठ हेमदत्त इतना सब भोजन पकवान देखकर पूछते हैं—

"तू यह सब कहाँ से ले आयी ?"

"आज मुझे राजजमाई ने अपने महल में रानी के पास टहल के लिए भेजा था, वहीं पर मैं दिन भर थी। मैं आपसे क्या कहूँ ? उसने मुझसे रत्ती भर काम नहीं कराया। बस भोजन करा दिया और बिठा दिया, उसी ने यह सब भोजन अपने हाथ से दिया है। वह साक्षात् लक्ष्मी है लक्ष्मी!"

3.1.3 राजमहल से हेमश्री द्वारा लाए भोजन को देख हेमदत्त को अपनी गलती का एहसास हुआ-

हेमदत्त कुछ क्षण तक भावों की तरंगों में डूबने उतराने लगते हैं। कोई एक दिन ऐसा था जो कि अभी स्मृतिपथ से दूर नहीं हुआ है ओह!!.....क्या वे दिन भूले जा सकते हैं ? अभी कितने दिन हुए ? शायद एक वर्ष भी तो नहीं हुआ। लेकिन.....लेकिन.....संकट में एक दिन भी वर्ष जैसा निकलता है, लगता है कि कितने युग निकल गये हमें इसी दुरावस्था में.....।

सेठ की आँखों से बरसात शुरू हो जाती है। वे सोचते ही चले जा रहे हैं देखो ना.....हमारे घर में क्या कमी थी ? हर दिन उत्तम-उत्तम भोजन! बिना खीर के क्या कभी नौकरों को भी खिलाया गया था ? क्या कोई भिखारी दरवाजे से बिना पेट भर भोजन खाये गया था ? फिर भी कौन से ऐसे कर्म का उदय आ गया है कि जिससे हम लोगों की यह दुर्दशा हो रही है। ओह!.....क्या पता इसी जन्म का पाप हो, क्या पता किसी बहुत पुराने कर्म का विपाक हो, क्या मालूम ?.....

एक समय वह था कि जब छोटी बहू के लिए गजमोतियों से भरा रत्नों का कोठार खोल दिया था, उस बात को अभी बहुत दिन तो नहीं हुए और एक समय यह आया कि हेमश्री ने, बहुओं ने भी लकड़ी के बोझ सिर पर रखकर गाँव में बेचे हैं व हम लोगों ने भी दिन भर जंगल में लकड़ियाँ बीन-बीन कर बोझ बनाये माथे पर रखकर बेचे हैं और.....और फिर भी तो पेट नहीं भर सके। ऐसे दुर्दिन कैसे आ गये ?

क्या बुद्धिसेन ही मेरे घर में पुण्यवान् था ? क्या उसकी बहू ही लक्ष्मी थी ?.....अन्यथा यदि ऐसा न माना जाये तो उनको घर से निकालते ही ऐसा क्यों हो जाता ? चन्द दिनों में सारी छप्पन करोड़ दीनारें कहाँ गईं ?.....अरे!

महिलाओं के गहने जेवर भी तो गिरवी रख दिए गए थे ? जब उतने से भी दैव को सन्तुष्टि नहीं हुई तो हवेलियों को गिरवी रख दिया गया। इतने पर भी दुर्दैव ने विराम नहीं लिया तो जंगलों में जाकर लकड़ियाँ ला-लाकर बेच-बेचकर उदरपूर्ति करना चाही।..... आह! जब इस काम से भी हम लोग पेट नहीं भर सके तो शहर छोड़कर भीख मांगते खाते यहाँ तक आ पहुँचे।

यहाँ भाग्य ने कुछ रहम किया है कि जिससे राजजमाई के मंदिर निर्माण कार्य में मजदूरी तो मिल गई, अभी तक तो कोई भी कहीं भी हम लोगों को नौकरी देना ही नहीं चाहता था.....। अब बेचारी हेमश्री जिसने कभी पच्चीसों दासियों से टहल कराई थी, राजसुख भोगा था, मखमल के गद्दे पर ही लेटती थी।.....कभी जिसको शृंगार कराने के लिए, वस्त्रालंकार कराने के लिए धायें रहती थीं.....हाय, हाय! आज वह राजघराने में टहल करने के लिए जाय ? सच है भाग्य की बड़ी विडम्बना है।

3.1.4 पिता के आंसुओं को देख सभी पुत्र अधीर हो उठे-

पिताजी विचार सागर में मग्न हैं। धनदत्त, सोमदत्त आदि लड़के और धनश्री, सोमश्री आदि बहुएं कुछ ही क्षण में भोजन के बारे में सारी स्थिति समझ लेती हैं और तनिक विश्रांति लेकर अपने-अपने बच्चों को संभाल कर वहीं पर आ जाती हैं। हेमश्री और धनदत्त, हेमदत्त की आँखों से गिरते हुए अविरल अश्रुओं को देखकर अधीर हो उठते हैं—

"इस समय आप क्यों रो रहे हैं ?"

आँसू पोंछते हुए—

"कोई खास बात नहीं है।"

"तो भी अकस्मात् आपको रोना क्यों आया ?"

"बेटा धनदत्त! सामने रखे हुए इतने भोजन सामान को देखकर सहसा अपने पुराने दिनों की स्मृति ताजी हो उठी.....।"

सभी लोग कुछ एक क्षण, पिछले दिनों को याद कर दुःख से आहत हो उठते हैं। पुनः हेमश्री कहती है—

"अब आप भी कुछ क्षण के लिए अपना उपयोग बदलिए, मुख धोइये और भोजन कीजिए। कृतकर्म जब उदय में आता है, तब उसका फल तो भोगना ही पड़ता है। जितनी शान्ति से उसे भोगा जाता है उतना ही वह आगे के लिए कर्मों का बंध कम करता है। फिर आप तो स्वयं समझदार हैं। अब चिन्ता छोड़िए.....।"

"हाँ, हाँ, माँ ठीक कह रही है पिताजी! अब आप शान्ति से भोजन कीजिए। सदा दिन एक से नहीं रहते हैं। कभी न कभी दिन सुधरेंगे, सुख के बाद दुःख के दिन आये हैं और कभी सुख के दिन भी आ सकते हैं।"

हेमश्री पतिदेव का मुख धुलाकर उन्हें भोजन परोसती है। तब तक धरसेन केले के बड़े-बड़े पत्ते तोड़कर लाकर सभी के आगे पत्तल रख देता है। माँ सभी को एक साथ भोजन करा रही है। छोटे-छोटे बच्चे भी आज बहुत दिन बाद गुझिया-लड्डू पाकर खुश हो रहे हैं और नाच-नाचकर खा रहे हैं। हेमश्री शाम को वापस महल में मनोवती के पास पहुँच जाती है। मनोवती प्रतिदिन उत्तम-उत्तम भोजन बना-बनाकर हेमश्री के हाथ से सबके लिए भेज देती है और किसी को भी पता नहीं चलने देती है।

3.1.5 हेमश्री और मनोवती का वार्तालाप, पूर्व स्मृतियाँ हुईं पुनर्जीवित-

एक दिन सहज ही मनोवती कहती है—

"अम्मा जी! आवो, जरा मेरे केश तो देखो और चोटी कर दो।"

"बहूरानी! आप करोड़पति की बहू और मैं एक दरिद्रा।.....दीन रंक हुए हम लोग दर-दर फिर रहे हैं, आपके यहाँ आकर अपना पेट भर रहे हैं।.....मेरा तो आपके पास आने का मुख नहीं पड़ता है।"

इतनी बात सुनते ही मनोवती के नेत्र सजल हो गये । इस संसार में यह लक्ष्मी अतिशय चंचल है। अहो! इसका क्या विश्वास करना ? देखो ना.....यह प्रत्यक्ष में मेरी सासू है और मैं इसकी पुत्रवधू हूँ किन्तु हाय!.....इनकी सम्पत्ति नष्ट हो गई इसलिए यह मेरे निकट आने में सकुचा रही हैं। धिक्कार हो! इस धन को धिक्कार हो!.....पुनः दिलासा देते हुए कहती है—

"कोई बात नहीं, चिन्ता मत करो, आवो.....आवो।"

कुछ क्षण के लिए हेमश्री सकुचाई खड़ी रहती है जैसे कि मानो उसके पैर ही नहीं आगे बढ़ना चाहते हैं।

"आ जाओ, अम्मा जी! क्यों संकोच करती हो ? आ जाओ।"

हेमश्री पास आकर अपने कपड़े संभालकर इस तरह बैठती है कि जिससे बहूरानी को अपने कपड़ों का स्पर्श न हो जावे। पुनः काँपते हुए हाथों से उनकी चोटी की रेशमी डोरी खोलती है और रेशम जैसे मुलायम केशों को खोलने लगती है। कुछ क्षण में ही उसकी आँखों से अश्रु की झड़ी लग जाती है और हेमश्री अपने अविरल अश्रुओं को अपने अंचल में ही समेटती चली जा रही है। कुछ देर में उसे सिसकी आने लगी और वह अपने को नहीं संभाल सकी, फफक कर रो पड़ी.....।

"ऐ!! यह क्या ?.....अम्मा जी! तुम क्यों रोने लगीं..... बोलो तो सही।"

बेचारी हेमश्री कुछ दूर सरक कर अपने आंचल से अपना मुँह ढँककर फूट-फूटकर रोने लगी मानो उसके धैर्य का बांध ही टूट गया हो। मनोवती ने जैसे-तैसे करके उसे सांत्वना दी और रोने का कारण कहने को कहा—

"रानी साहिबा! मैं.....यदि पहले की अपनी बातें कहूँ तो आज उन पर कोई विश्वास नहीं करेगा। किसी को भी मेरा पहले का जीवन सच नहीं लगेगा।

"नहीं, नहीं ऐसी बात नहीं है, तुम कहो तो सही! तुम कुछ भी चिन्ता मत करो और सभी बातें ज्यों की त्यों कहो।"

तब हेमश्री सामने एक तरफ बैठकर हाथ जोड़कर कहती हैं—

"महारानी जी! हम लोग ऐसे रंक नहीं थे। बल्लभपुर शहर में हमारे पति बहुत बड़े विख्यात जौहरी थे। मेरे घर में छप्पन करोड़ दीनारें होने से छप्पन ध्वजाएं फहराती हुई हमारे पतिदेव का यश विस्तार रही थीं। हमारे सात पुत्र थे जिसमें ये सबसे बड़ा धनदत्त है जो कि साथ में है और सबसे छोटा पुत्र बुद्धिसेन था उसका ब्याह होकर..... हाय!.....अभी एक वर्ष भी नहीं हुआ होगा.....।"

फिर वह सिसक-सिसक कर रो पड़ती है, बोल नहीं पाती है किन्तु मनोवती उस समय बहुत ही कारुण्य मुद्रा से श्रवण कर रही है—

"बोलो, बोलो! अम्मा जी! न घबराओ, सभी पर सब तरह के दिन आ सकते हैं, देखो ना! भगवान् रामचन्द्र को राजगद्दी होने वाली थी किन्तु वन की शरण लेनी पड़ी।.....इसलिए धैर्य रखो और पूरी बात कहो!"

बेचारी जैसे-तैसे हृदय थामकर सिसकते हुए ही बोलती है—"बहूजी! मैं क्या बताऊँ ? उसकी शादी हस्तिनापुर में हो गई। बहुत बड़े घराने की बहू मेरे घर में आ गई। मैं क्या बताऊँ.....वह तो साक्षात् लक्ष्मी ही थी।.....उसने ऐसी प्रतिज्ञा ली हुई थी कि जब मैं गजमोती भगवान् के सामने चढ़ाऊँगी, तभी भोजन करूँगी। मेरे पतिदेव ने कोठार खोल दिया, मोतियों के ढेर के ढेर लगे हुए थे। उसने गजमोती चढ़ाये और पुनः खाना खाया। हाय रे!

फिर बेचारी रो पड़ती है।

"अम्माजी! तुम इतना न घबराओ....."

"कुछ पूर्व के पाप कर्म का तीव्र उदय आ गया.....तब घर से हमारे प्यारे पुत्र को निकाल दिया.....गया। वह हस्तिनापुर चला गया, वहाँ से उसकी पत्नी भी उसके साथ हो ली, अब तक हम लोगों को पता नहीं चला कि वे दोनों कहाँ हैं ?"

फिर माथे पर हाथ रखकर बिलख-बिलख कर रोती है—

"हाय बेटा! तुम कहाँ चले गए ? रानी जी! मैं सच्ची कहती हूँ तुमसे, जिस दिन से वे बेटे और बहू घर से गये हैं बस उसी दिन से मेरी लक्ष्मी कहाँ चली गयी ? कुछ पता नहीं..... कुछ ही दिन में सारी सम्पत्ति समाप्त हो गई। हाय! हाय! हम रंक बने मारे-मारे फिर रहे हैं। आपके केश खोलते ही आपके शिर में यह एक चिह्न जो मैंने देखा मेरी बहू के शिर में भी ऐसा ही चिह्न था।" अतः इसे देखते ही मेरा जी भर आया.....।"

3.1.6 हेमश्री की करुण कथा सुन मनोवती ने दिखाया कृत्रिम क्रोध, महल से निकाला—

मनोवती ने सारी बात सुन ली यद्यपि हृदय द्रवित हो उठा था फिर भी उसने मन की बात मन में ही छिपा कर बनावटी क्रोध दिखाते हुए कहा—"अब क्या हमें तू अपनी बहू बना रही है ?.....अरी चमेली! इधर आ।"

दासी काम छोड़कर दौड़कर आती है—

"हाँ जी, आ गई! क्या आज्ञा है महारानी जी ?"

"तू इस वृद्धा को महल से बाहर कर दे!"

"जैसी आपकी आज्ञा!"

चमेली हेमश्री का हाथ पकड़ कर जल्दी-जल्दी उसे महल से बाहर निकाल देती है और आकर बोलती है—

"निकाल दिया, महारानी जी! निकाल दिया।"

3.1.7 हेमश्री ने सारी घटना पति व पुत्रों को बताई—

हेमश्री महल के बाहर खड़ी-खड़ी सोच रही है कि यह क्या हो गया ? अब क्या होगा ? मैं अपने पतिदेव को या पुत्रों को कैसे मुँह दिखाऊँ ? जाकर उनसे क्या कहूँ ? कुछ क्षण रोकर कलेजा शांत करके स्खलित पग रखते हुए जैसे-तैसे अपनी झोपड़ी में पहुँचती है। हेमदत्त को कुछ आहट होने से पूछते हैं—कौन है ? तब वह अन्दर पहुँचकर फूट-फूटकर रोने लगती है।

"आखिर हुआ क्या ? बोलो तो सही। केवल रोने मात्र से मैं क्या समझ सकूँगा ?"

जैसे-तैसे आँसू पोंछते हुए और सिसकते हुए बोलती है—

"मालकिन ने मुझे महल से निकाल दिया।"

"क्यों ?"

पति के बहुत कुछ धैर्य बँधाने के बाद वह धीरे-धीरे सारा किस्सा सुना देती है।

"अफसोस! तूने गजब कर दिया।"

हेमदत्त क्रोध में आपे से बाहर हो जाते हैं इसी बीच में एक-एक करके छहों लड़के और बहुएँ भी आ जाती हैं और उन्हें भी सारा हाल सुना दिया जाता है। अब क्या देखना ?....एक-एक में एक से बढ़कर क्रोध भभक उठता है। सभी एक-एक करके हेमश्री को फटकारना शुरू कर देते हैं इतना ही नहीं.....।

"हाय! तूने यह क्या कर डाला ? कौन तो बहू और कहाँ के पुत्र ? और कहाँ की तू पहिचान कराने लगी ?"

"हाय! हम लोग दर-दर की ठोकरें खाते-खाते यहाँ आये, जरा सी बैठने की जगह मिली, पेट को सहारा मिला और तूने सब वापस गँवा दिया।"

"जा, जा! चली जा इस झोपड़ी से, जल्दी निकल जा। अब हम लोग भी इस झोपड़ी में तुझे रहने नहीं देंगे।"

3.1.8 हेमश्री के कृत्य से दुखी पुत्रों ने उसे मार-पीटकर घर से निकाल दिया—

धनदत्त उठकर उसे धक्का देकर निकालने की कोशिश करता है कि वह शोक में पागल हो जमीन पर धड़ाम से गिर पड़ती है। कोई पुत्र पत्थर उठाकर उसे मारने दौड़ता है तो कोई कंकड़ फेंकता है तो कोई लकड़ियों से पीटने लगता

है। कोई धक्का देता है तो कोई बहू लात से मारने दौड़ती है। हेमदत्त अब चुपचाप पत्नी पर होने वाले असह्य अत्याचार को देख रहे हैं और कुछ सोच-सोच फूट-फूटकर रो रहे हैं। हेमश्री पुत्रों के और पुत्र-वधुओं के द्वारा मार खाते हुए उनकी गालियाँ सुनते हुए बहुत ही घबरा उठती है और जोर-जोर से चिल्लाने लगती है—

"हाय! मैं मरी, मैं मरी! हाय, हाय! मेरा कोई रक्षक नहीं है। बचाओ-बचाओ! भगवान मेरी रक्षा करो। मैंने क्या पाप किए हैं ? जो कि एक दुःख से नहीं छूटी और दूसरा छाती पर आ पड़ा। अब मैं कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ? अरे रे! निपूतों! तुम सब मिलकर मुझे क्यों मार रहे हो ?..... अकेला मेरा भाग्य ही खोटा है क्या ?.....

अरे प्यारा बेटा बुद्धिसेन! तू कहाँ है ? तेरे जाने के बाद ही तो मेरी मिट्टी पलीत हुई है। मैं न घर की रही न दर की।

इतना सुनते ही लड़कों का क्रोध और भी अधिक भभक उठा। वे सभी आपे से बाहर हो गये और जोर-जोर से बकने लगे—

"जा, जा, तू उसी बुद्धिसेन को ढूंढ़! अब यहाँ हम लोगों के पास रहने की जरूरत नहीं है। बस जब देखो, जब बुद्धिसेन लाडला बेटा और मनोवती। इसके सिवाय और तुझे कुछ दिखता है ? और जभी तो वहाँ जाकर भी गम नहीं खाई। रानी साहिबा के सिर में भी तुझे बहू की खोपड़ी ही दिखाई देने लगी और तभी तो सारा अनर्थ करके आ गई।"

"अरे दुष्टों! तुम सबने मिलकर ही तो उसको निकाला है और उसी पाप का फल भोग रहे हो। फिर भी उसके नाम से तुम लोगों को आग लगती है ? तुम सब बड़े कर्महीन हो और बुद्धिहीन हो। तुम्हारी बुद्धि पर पत्थर पड़ गये हैं तभी तो माँ को पत्थर से मार रहे हो।"

क्रोध के आवेश में आकर हेमश्री आगबबूला हो उठती है। इतने में ही सोमदत्त, विनयदत्त आगे बढ़कर जबरदस्ती उसे घसीट-घसीट कर दरवाजे तक पहुँचा देते हैं और बहुयें आगे बढ़कर बड़बड़ाती हुई दरवाजे की साँकल लगा लेती हैं।

"हाय! मैं कहाँ जाऊँ ? कपूतों! तुमको नव-नव महीने उदर में रखा है। तुम मेरी यह दशा कर रहे हो ? मैं मर जाऊँगी। पतिदेव! तुमने तो स्वप्न में भी कभी एक शब्द तिरस्कार का नहीं कहा था और अब तुमको भी क्या हो गया है ? खोलो-खोलो, दरवाजा खोलो।"

3.1.9 हेमश्री का करुण क्रंदन—

बेचारी हेमश्री फड़फड़ाती हुई बेहोश हो जाती है और कुछ देर बाद होश में आती है तब देखती है कि मैं घसीट कर अपनी झोंपड़ी के दरवाजे से दूर कर दी गई हूँ। वह कुछ एक क्षण विचार कर उठकर धीरे-धीरे वन की ओर जाने की राह पकड़ती है और बार-बार मार्ग में गिर पड़ती है, तब मार्ग में एक झाड़ के नीचे बैठकर अकेली जोर-जोर से करुण क्रंदन करते हुए विलाप करती है—

"अरे दुर्दैव! तुझे और भी जितना दुःख देना है एक साथ ही दे ले। खूब दुःख दे ले। अरे निष्ठुर विधाता! तुझे दया तो कैसे आएगी ? क्योंकि मैंने ही तो पूर्व जन्म में ना, ना, पता नहीं इसी जन्म में कुछ पाप संचित किया है, उसका फल तो मुझे ही भोगना पड़ेगा। हे भगवन्! तुमको भी मेरे ऊपर करुणा नहीं आती है। प्रभो! तुम जो जगत् में करुणासागर के नाम से प्रसिद्ध हो। हे तीनलोक के नाथ जिनेन्द्रदेव! अब आप मेरे ऊपर दयादृष्टि करो। अब मैं इतने अधिक दुःखों को सहने में समर्थ नहीं हूँ।

हाय! मेरा प्यारा बेटा बुद्धिसेन! तू इस जन्म में मुझे मिलेगा या नहीं ? एक बार स्वप्न में ही मुझे दर्शन दे दे। अपनी माँ की ऐसी दुर्दशा को तू एक बार तो देख ले। तू कहाँ है ? किस देश में है ? तू किस स्थिति में है ? अरे तू सुखी है कि तू भी दुःखी है ? अपनी स्थिति को तो बता दे ?

मेरी बहूरानी मनोवती! तुम भी कैसी हो ? तुम्हारी प्रतिज्ञा कैसे पल रही है ? तुमने तुम्हारे पीहर के सुख को ठोकर मार दिया, तुम्हें गजमोती कहीं मिली होगी या नहीं ? बताओ तो सही। तुम्हारे अपमान से ही.....तुम्हारा घर में आना

रोक देने से ही तो हम सबों ने यहाँ तक दुर्दिन देखे हैं।"

कुछ देर तक ठण्डी साँस लेकर बैठ जाती है। फिर-फिर छोटे बेटे और बहू को याद कर रोने लगी। आँखें लाल-लाल हो गई हैं और ऊपर से खूब ही सूज गई हैं। मुख की सूरत अत्यन्त विरूप हो रही है। सारी धोती आँसुओं से भीग चुकी है। पेट खाली है और अन्न का ठिकाना भी नहीं रहा है। सोच रही है—अब पुनः मुझे भीख माँगकर ही तो पेट भरना पड़ेगा।

"अरे विधाता! अब तू मुझे उठा ले, अब मैं अधिक दुःख नहीं देख सकूँगी।.....बेटे तो बहुओं की वजह से भी कठोर अति कठोर हो सकते हैं लेकिन पतिदेव को इतना क्रोध कैसे आ गया ? उनके हृदय में भी मेरे प्रति करुणा भाव क्यों नहीं रहा ?.....ओह! मैं बहुत बड़ी भूल कर रही हूँ। मेरे पाप कर्मों के उदय से ही तो सब निष्ठुर हो रहे हैं। दैव निष्ठुर हैं, पतिदेव निष्ठुर हैं, छह-छह बेटे हैं वे भी निष्ठुर हैं और सभी बहुएं निष्ठुर हैं। और तो क्या ?.....जिसने इतनी सहानुभूति, इतनी करुणा दिखलाई थी वह दयावन्ती देवी राजजमाई की राजपत्नी भी तो निष्ठुर हो गयीं। अब केवल मात्र भगवान तेरा ही एक सहारा है। अब इस पर्याय में मेरा कोई नहीं है। जब तक धन था, हजारों नौकर काम करते थे, जगह-जगह व्यापार चलते थे। तब मैं भी क्या किसी रानी-महारानी से कम सुखी थी ? मुझे क्या कुछ कमी थी ?.....खैर, अब तो जो दिन आये हैं, उनसे ही तो निपटना है।

प्रभो! दयानिधे! करुणा करो, मुझे दया की भीख देवो। मैं कब तक इस पापी पेट के पीछे दर-दर भीख माँगती फिरूँ ? हाय!.....पतिदेव और सात-सात पुत्रों के जीवित रहते हुए भी मैं भीख माँगूँ ? अरी लक्ष्मी ? तू वेश्या से भी अधिक अविश्वसनीय है। आज किसी की, कल किसी की। तुझे धिक्कार हो! धिक्कार हो!.....अरे दुर्दैव! तुझे भी धिक्कार हो! इस मेरे हीन-दीन जीवन को भी धिक्कार हो!.....

3.1.10 हेमश्री बुद्धिसेन और मनोवती से मिलने हेतु हुई आकुलित—

बेचारी हेमश्री इधर अकेली बैठी-बैठी अपने इस जीवन से ऊब उठती है और फिर सहसा सोचने लगती है कि इस दुःखी जीवन से मर जाना ही अच्छा है। फिर-फिर अकस्मात् ही बुद्धिसेन के मुख को देखने के लिए उत्कंठित हो उठती है और उनका मन पंछी तड़पने लगता है—

"बेटा तू कहाँ है ? एक बार मुझे किंचित् सान्त्वना दे दे। इस जीवन में मुझे फिर अब तेरा सलोना मुख देखने को मिलेगा या नहीं ? बोल तू बोल! जहाँ कहीं भी हो, एक बार बोल दे! नहीं तो मैं इस जीवन को, इस निंद्य पराधीन स्त्री पर्याय को समाप्त कर दूँ। कहीं कुएं- बावड़ी में पड़कर या गले में फाँसी लगाकर मर जाऊँ। एक बार-एक बार तो इस संकट से छुटकारा पा लूँ। अफसोस! मैं क्या कह रही हूँ ? क्या मरने से दुःख छूट जायेंगे ? अरे! जो बाँधे हैं कर्म मैंने, उनका फल तो आज क्या, कल या परसों या किसी जन्म में भोगना ही पड़ेगा।

हे त्रिभुवन के स्वामी! आप ही इन दुष्कर्मों से छुटकारा दिला सकते हैं, अन्य कोई नहीं। अब मेरी रक्षा करो, रक्षा करो प्रभो! मुझे सद्बुद्धि दो।"

इधर हेमश्री को निकाल देने के बाद हेमदत्त सोच रहे हैं कि हाय! मैंने यह क्या किया ? मैं इन आँखों से उसका इतना अपमान कैसे देखता रहा ? मुझे आज क्या हो गया ?....

"अरे कपूतों! तुमने अपनी माँ को इतना क्यों मारा ? उसे झोपड़ी से बाहर क्यों निकाल दिया ? हाय रे दुर्दैव! तू यह सब क्या कर रहा है ? क्या मेरा जीवन अब यही दृश्य देखते-देखते निकलेगा। मैं तो मर जाऊँगा!.....ओह!! यह क्या हो गया ? वह बेचारी कहाँ जायेगी ? कहाँ रहेगी ? क्या खाएगी और क्या पियेगी ?....."

"यह दुष्ट बुड्ढा भी अब चैन नहीं लेने देगा! उठो! आप लोग अब इसे भी निकाल बाहर करो। मेरे से अब इसका रोना, बिलखना और चिल्लाना नहीं सहन हो रहा है।"

"अरी बहू! तू क्या बक रही है ? तुझे बहुत ही साहस हो गया है जो तू आज सास-ससुर के अनादर पर ही तुल गई है। सासू को तो निकाल दिया और अब मुझे भी निकालना चाहती है। लो, तुम लोग सुख से रहो, मैं भी जाता हूँ। अरे! जब इतने दिन दर-दर पर भीख माँगते फिरे हैं तो कुछ दिन और माँग लेंगे।"

सेठ जी उठकर जाने को होते हैं कि छठा पुत्र धरसेन उठकर दौड़कर हाथ पकड़ लेता है और चिपट कर जोर-जोर से रोने लगता है। हेमदत्त कुछ देर बाद बेटे के आँसू पोंछकर अपना मन मसोस कर बैठ जाते हैं परन्तु हेमश्री की याद में बार-बार बेचैन हो उठते हैं। फिर.....कुछ क्षण बाद बुद्धिसेन पुत्र को याद करके जोरों से विलाप करने लगते हैं—

"अरे बेटा बुद्धिसेन! जब से मैंने तेरे को घर से निकाला है तभी से तो ये दुर्दिन आये हैं। उस समय मेरी बुद्धि कैसे भ्रष्ट हो गई ? मुझे क्या हो गया था ?.....ओह!.....सच है—**विनाशकाले विपरीत बुद्धिः**....बहू मनोवती! तू कैसी धर्मात्मा थी, तेरी प्रतिज्ञा की निन्दा का ही फल तो हम सभी भोग रहे हैं। अब एक बार इस जीवन में तुम दोनों मुझे मिल जावो! बस! मैं इसी आशा में अपने प्राण टिकाये हुए हूँ अन्यथा अब मैं जीवित नहीं रह सकता था.....।

"पिताजी! अब आप चुप रहो, बिल्कुल चुप हो जावो। दो-तीन घण्टों से लगातार आपस में कुहराम मचा हुआ है। अब चुपचाप बैठे रहो.....।"

सेठ हेमदत्त बिल्कुल चुप हो जाते हैं लेकिन चुपचाप बिना खाए-पिए अपनी फटी चादर में मुँह छिपाकर लेट जाते हैं। वे लाख कोशिश करते हैं कि अश्रु बंद हो जावें किन्तु आँखों से आँसुओं की धारा चालू ही है।

पुत्र धनदत्त आदि भी जब शांत होते हैं, तब अपने द्वारा किये गये माता के अपमान को स्मरण कर रो पड़ते हैं। सभी पश्चात्ताप करने लगते हैं कि हाय! हमने यह क्या कर डाला ? यह सब दुर्दैव का ही विचित्र खेल है, ऐसा कहकर संतोष की साँस लेकर सोमश्री आदि द्वारा बनाये गये कुछ रूखे-सूखे भोजन को करके बैठ जाते हैं।

3.2 मनोवती ने पतिदेव से कुटुम्बियों को वापस लाने का किया आग्रह—

मनोवती अपने महल में कुछ चिंतित सी बैठी हुई है। दासियाँ अपने काम में लगी हुई हैं। कुछ देर बाद मनोवती पूछती है—

"चमेली! ओ चमेली!"

"जी हाँ, आई!"

"अरी क्यों री! आज अभी तक चंपा नहीं आई ?"

"आती ही होगी!"

इसी बीच में चंपा आकर महारानी जी को नमस्कार करके बैठ जाती है और कुछ कहना चाहती है किन्तु रुक जाती है—

"बोल ना! क्या हुआ ?"

"महारानी जी! वहाँ तो महान् उत्पात हो गया।"

"ऐं! उत्पात! क्यों उस बुढ़िया ने वहाँ जाकर क्या कहा ?"

"मुझे यह तो कुछ मालूम नहीं किन्तु सभी परदेशियों ने मिलकर उस बुढ़िया को बहुत मारा और धक्के-मुक्के दे देकर उसे गिरा दिया। फिर बेचारी को खींच-घसीटकर झोंपड़ी से बाहर कर दिया।

"अच्छा!.....और फिर वह कहाँ गई ?"

"पता नहीं, वह तो कहीं जंगल की तरफ चली गई है।"

"हाय! दुर्दैव! तू बड़ा ही निर्दयी है।.....अच्छा, चम्पा! तू जल्दी से जा और स्वामी को यहाँ जल्दी से जल्दी आने की सूचना कर दे।"

"जो आज्ञा!"

कुछ देर बाद कुमार बुद्धिसेन पधारते हैं। मनोवती विनय से उठकर पतिदेव का स्वागत करती है, उनके उचित आसन पर विराजने के बाद आप स्वयं पास में ही बैठ जाती है।

"कहिए! क्या आज्ञा है ?"

मनोवती हाथ जोड़कर निवेदन करती है-

"स्वामिन्! आपके बड़े भाई पिता के समान हैं। वे सिर पर भार ढो रहे हैं और आप अपनी आँखों से देख रहे हो। बस, अब बस होवे, अब आप शीघ्र ही उन सबको बुलवा लो।"

मुस्कराकर—

"प्रिये! मैं इन लोगों से खूब ही मजदूरी करवाऊँगा। इन लोगों ने मेरे से बहुत ही गर्व किया है। मैं जब तक अपने मन की पूरी नहीं निकाल लूँगा, तब तक परिचय नहीं कराऊँगा।"

"यदि आप अब मेरी नहीं मानोगे, तो देखो मैं क्या करूँगी ?"

3.2.1 मनोवती की बात न मानने से वह पति पर हुई क्रोधित—

कुछ क्रोध में आ जाती है। तब बुद्धिसेन हँस पड़ते हैं और पूछते हैं—"क्या करोगी ? बताओ!"

"आपको हँसी आ रही है और मुझे गुस्सा आ रहा है। अफसोस है कि आप राजलक्ष्मी के गर्व में अपने कर्तव्य को बिल्कुल भूल रहे हो। आपके जीवन को धिक्कार है! आप अपने भाईयों से मजदूरी करा रहे हो और अभी तक आपकी हविश पूरी नहीं हुई है।....आपको शर्म आनी चाहिए।.....मैं सच कहती हूँ कि अब मुझसे यह सब देखा नहीं जाता है। अब आप बैठे रहिए, मैं उन सभी को अभी-अभी यहाँ पर बुलवाए लेती हूँ और उन्हें उत्तम वस्त्राभूषण पहनाकर कुछ धन सम्पत्ति सौंपती हूँ।

क्या सब आपकी ही चलेगी, मेरी कुछ भी नहीं चलेगी ?.....मैं खूब ही आपकी बुराई करूँगी। महाराज यशोधर के पास मैं स्वयं जाकर सारी स्थिति कहूँगी कि आपके जमाई अपने भाई-भावजों से मजदूरी करवा रहे हैं। आपको जो जंचे सो कीजिए और मुझे भी जो जँच रहा है.....उचित प्रतीत हो रहा है सो मैं करूँगी, अब मैं भी आपकी एक नहीं सुनूँगी।'

3.2.2 मनोवती के क्रोध को देख बुद्धिसेन ने कुटुम्बियों को बुलाया राजमहल में—

बुद्धिसेन मनोवती का गुस्सा देखकर और उसकी इस तरह की धमकी सुनकर सिहर उठते हैं। मन में सोचते हैं कि अब इसको पूर्णतया रोष उत्पन्न हो चुका है। अब यदि मैं इसकी नहीं मानूँगा तो निश्चित ही यह कुछ न कुछ उपाय अवश्य करेगी और राजा तक मेरी बात पहुँचाकर मेरी भर्त्सना करवायेगी। कुछ क्षण तक माथा नीचे करके सोचते रह जाते हैं। मनोवती पुनः बोल उठती है—

"अब मैं इस घटना को देख सकने के लिए एक क्षण भी समर्थ नहीं हूँ। या तो आप उन्हें बुलवाइये या मैं बुलवाऊँ ?"

"प्रिय बल्लभे ? आप इतनी अधिक नाराज न होइए! मैं.....आपकी आज्ञा के अनुरूप ही कार्य करूँगा।"

"तो जल्दी कीजिए, अभी-अभी सबको बुलवाइये!"

"प्रिये! अभी दिन में यह काम ठीक नहीं रहेगा। थोड़ा अंधेरा पड़ते ही किंकरों को भेजकर सबको बुलवाये लेता हूँ। अब आप जरा सी भी चिन्ता न करें।"

3.2.3 राजाज्ञा सुन सभी कुटुम्बी हुए चिन्तित—

दिन अस्त होते ही मालिक की आज्ञा से कर्मचारी वहाँ झोपड़ी में पहुँचता है। जहाँ पर कई घण्टों से मारपीट का और रोने-धोने का अत्यन्त कलहकांड होकर अभी-अभी ऊपर से किंचित् शांत वातावरण हुआ ही था कि कर्मचारी

पहुँचता है। उसे देखकर सबके होश उड़ जाते हैं।

"हाँ, तुम लोगों को स्वामी ने बुलाया है, जल्दी चलो। सभी लोग बहुत ही जल्दी चलो।"

हेमदत्त की जरा सी आँखें झपकी ही थीं कि कर्मचारी की आवाज सुनकर चौंक उठते हैं।

"कौन है ?"

"मैं राजा का चपरासी हूँ।"

"क्या आदेश है ?"

"बस, चलिए, तुम सभी को महाराज ने अभी-अभी बुलाया है।"

हाय!.....अब और यह क्या बला आ गई ? अरे! हेमश्री न जाने क्या कह आई है कि जो हम सबको ही बुलाया गया है। पता नहीं अब क्या होगा ?

सभी बेचारे जहाँ के तहाँ कीलित जैसे हो जाते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि किसी के भी शरीर में प्राण नहीं हैं। सभी निश्चेष्ट हो गये हैं इतने में कर्मचारी पुनः बोलता है-

"हाँ भाई! क्या बात है ? तुम लोग देरी क्यों कर रहे हो ?"

सेठ हेमदत्त उठकर जैसे-तैसे साहस बटोर कर पूछते हैं—

"भाई क्या बात है ? हम सभी को एक ही साथ मालिक ने क्यों बुलाया है ? क्या आप.....बता सकेंगे ?"

"मुझे क्या मालूम ? मुझे तो बस इतना ही आदेश मिला है कि नम्बर 1017 वाली झोपड़ी के सभी मजदूरों को मेरे महल में जल्दी ही ले आवो।!"

"अरे बेटा धरसेन! ओ धरसेन! जा बाहर देख तो सही, तेरी माँ कहाँ है ?"

"अब उसे और भी आपत्ति में क्यों डालो पिताजी! पता नहीं कि उसने वहाँ क्या-क्या कहा है कि जिससे हम सबको बुलवाया गया है और पता नहीं कि अब वहाँ क्या-क्या दंड भुगतना पड़ेगा, अभी तक भीख माँगकर या मजदूरी करके पेट तो भर रहे थे और क्या पता अब जेलों में सड़ना पड़े ?"

धरसेन बीच में ही बाहर निकल जाता है और आगे बढ़कर कुछ दूर जाता है कि सामने के झाड़ के नीचे से करुण क्रंदन की आवाज आ रही है। उसी आवाज के सहारे उस झाड़ के नीचे पहुँच जाता है। देखता है माँ खूब छाती कूट-कूटकर रो रही है। वह उससे चिपट जाता है और वह भी जोर-जोर से रोने लगता है। माँ को अंधेरी रात में बेटे का सहारा मिलते ही वह कुछ शाँत होती है। तब धरसेन सिसकियाँ भरते हुए कर्मचारी के आदेश को सुना देता है। सुनते ही माता अत्यर्थ रूप से काँपने लगती है। फिर बोलती है—

"बेटा! मैंने जो कुछ किया है, उसका फल मुझे ही भोगना उचित है। सभी को क्यों ? चलो, चलो, कुछ भी होगा तो मैं ही अकेली निपटूँगी। बीच में सभी को दंड का भागीदार नहीं बनाऊँगी चलो, बेटा!.....मैं चल रही हूँ।

"माँ! तुम्हें चलने की शक्ति कहाँ है ? तुम मेरी पीठ पर बैठो, मैं तुम्हें ले चलूँगा।"

"नहीं, बेटा! मैं चलूँगी, पैदल चलूँगी, तू चिंता मत कर।"

धरसेन का हाथ पकड़कर हेमश्री उठती है और चल पड़ती है। अंधेरे में कई जगह ठोकर और टक्कर लगती है। "बेटा! अभी न जाने कितने दिन अपने भाग्य में ठोकर खाना लिखा है। कौन जाने ?"

"माँ! तुम ही यदि इतनी अधीर होवोगी तो हम लोगों का क्या होगा ?"

"क्या करूँ बेटा! अब धैर्य नहीं रहा, अब तो बार-बार यही भाव आता है कि अपघात करके मर जाऊँ किन्तु बस एक बुद्धिसेन का मोह मुझे रोक रहा है।"

धीरे-धीरे बातें करते दोनों माँ और बेटे अपनी झोंपड़ी के सामने पहुँचते हैं, तब तक सब लोग साहस करके उठ

खड़े हो जाते हैं। माता को सामने देखते ही लड़के भड़क उठते हैं—

"अरी माँ! तू वहाँ क्या कह आई है ? चल, अब सबके गले में फाँसी लगवायेगी.....देख"

सेठ हेमदत्त बीच में बात काट देते हैं—

"बस बस, अब हल्ला-गुल्ला बंद करो, चुपचाप रास्ते में चलो। बहुत हो लिया.....जो होना होगा सो होगा ? अब ज्यादा बकवास मत करो। हाँ, मेरी मानो तो सब लोग णमोकार मंत्र का जाप करते चलो।"

सब लोग चुपचाप मन में, महामंत्र का स्मरण करते हुए चले जा रहे हैं।

3.2.4 सभी ने महल में किया प्रवेश—

सिपाही के साथ-साथ सब लोग महल के अन्दर घुसते हैं तत्काल ही फाटक बंद कर दिया जाता है। अब तो सबके सब एकदम सन्न हो जाते हैं और निश्चित कर लेते हैं कि हम लोगों पर भारी संकट आ गया है। राजमहल के समान उस महल में भी चारों तरफ सुन्दर-सुन्दर स्थल दर्शनीय हैं परन्तु वे बेचारे आकस्मिक संकट की भावी आशंका से थर-थर, थर-थर कांपते हुए एक से एक दरवाजे पार करते चले जा रहे हैं।

सभी लोग अन्दर के माणिक चौक में पहुँचते हैं जहाँ पर राजा बुद्धिसेन अपनी रानी मनोवती के साथ रत्नजटित उच्च आसन पर सुखासन से बैठे हुए हैं। मालूम होता है कि साक्षात् इन्द्र ही अपनी इन्द्राणी के साथ अमरपुरी की सुधर्मा सभा में विराजमान हैं। उनको देखते ही ये लोग वज्र से आहत हुए के सदृश एक कोने में ही खड़े रह गये, आगे नहीं बढ़ पाए।

3.2.5 बुद्धिसेन-मनोवती एवं कुटुम्बीजनों का रोमांचकारी मिलन—

सामने सबको देखकर बुद्धिसेन तत्क्षण ही आसन से उठ खड़े हुए और जल्दी-जल्दी आगे बढ़कर हाथ जोड़कर 'हे पूज्य पिता!....कहते हुए और नमस्कार करते हुए सेठ हेमदत्त के चरणों में पड़ गए और मनोवती भी हाथ जोड़कर नमस्कार करती हुई उन्हीं के साथ खड़ी हुई हेमश्री के चरणों में पड़ गई।

"अरे अरे, यह क्या ? मैं रंक मजदूर.....और आप राजा।....."ऐसा बोलते हुए और घबराते हुए हेमदत्त जल्दी-जल्दी काँपते हुए हाथों से उन्हें उठाने लगा—

"पिताजी! मैं वही आपका पुत्र हूँ कि जिसे आपने घर से निकाल दिया था।"

सेठजी एकदम आश्चर्यचकित हो स्तब्ध रह जाते हैं और उसे गले से लगा लेते हैं। उनका एकदम जी भर जाता है और वे बड़ी जोरों से रो पड़ते हैं। बुद्धिसेन सिसकी भरने लगते हैं। उस समय ऐसा मालूम पड़ता है कि इतने दिनों से सेठ हेमदत्त ने जो भी दुःख भोगा है, वे सब एकदम आँसू के बहाने से अब सारे के सारे बाहर निकलकर कहीं को प्रयाण कर रहे हैं अथवा पुत्र और पुत्र-वधू के वियोग से जो पश्चात्ताप, संताप और संक्लेश को किया है, वह सब हृदय के बाँध को तोड़कर बाहर एक साथ आता चला जा रहा है। कुछेक क्षण तक पिताजी पुत्र को अपनी छाती से चिपकाये हुए हैं और छोड़ नहीं रहे हैं उन्हें ऐसा लगता है कि कहीं फिर यह मुझसे विमुक्त न हो जाये।.....हेमदत्त अपनी भुजाओं से अलग करते हुए उसके मस्तक पर हाथ फेरते हैं और उसकी आँखों के अश्रुओं को पोंछते हुए बोलते हैं—

"बेटा! मैंने तुझे निकालकर बहुत ही दुःख दिया है और जिसके फलस्वरूप हम सभी ने भी असंख्य दुःख झेले हैं....."।

कुमार बुद्धिसेन माता के चरणों का स्पर्श करते हैं और हेमश्री भी पुत्र को अपने दिल से लगाकर अपने आँसुओं से ही मानों उसका अभिषेक कर रही हैं। अनन्तर क्रम-क्रम से अपने भाईयों के चरण स्पर्श करते हुए कुमार बुद्धिसेन सबसे गले मिलते हैं तथा क्रम-क्रम से भावजों को भी प्रणाम करते हैं। मनोवती भी ससुर हेमदत्त के चरणों का स्पर्श करके सासू को नमस्कार करके क्रम-क्रम से सभी जेठ और जेठानियों के चरण-स्पर्श करती है। सभी मनोवती को गले लगाकर खूब रोती हैं।

ऐसा लगता है कि जो इन लोगों ने 'जिनदर्शन प्रतिज्ञा' की निंदा करके पापपुंज संचित किया था, वही सब पापसमूह अब बुद्धिसेन और मनोवती के स्पर्श से अश्रुओं के बहाने निकलकर भागा जा रहा है चूँकि अब उसको यहाँ किसी के पास ठहरने की हिम्मत नहीं रही है।

अनन्तर सब लोग अपने-अपने अश्रुओं को रोककर एकटक—अपलक कुमार के मुख को ताकते हैं, उसको पहिचानने की कोशिश करते हैं, तब कहीं बड़ी मुश्किल से कुछ तिल, व्यंजन आदि चिन्हों से उसको पहिचान पाते हैं कि सचमुच में यह वही तो हमारा प्यारा पुत्र है और बंधुवर्ग भी समझ लेते हैं कि यह वही पुण्यशाली लक्ष्मी का स्वामी मेरा प्यारा छोटा भाई है कि जिसको हम सभी ने तो गोद में खिलाया था।

3.2.6 सभी ने अपने दुःख-सुख बांटे—

बुद्धिसेन सबको साथ लेकर चौक में बिछे हुए मखमल के गद्दे पर बैठ जाते हैं और पिता से उनके दुःखों की कहानी पूछते हैं—

"पूज्य पिता! आपको अपना देश बल्लभपुर छोड़े कितने दिन हुए हैं ? आप यहाँ इस दशा में कैसे ?"

"बेटा! मेरा किसी जन्म का कुछ पुण्य तेरे पास ले आया, नहीं तो हम लोगों ने तुझे निकालकर जो पाप कमाया था, शायद उसका फल जीवन भर भी भोगने से नहीं छूटता किन्तु.....न जाने किस जन्म के पुण्य ने मेरा साथ दिया है।".....

हेमश्री मनोवती को बार-बार अपनी छाती से चिपका-चिपका कर कहती है—

"बेटी मनोवती! तेरे वियोग से हमने न जाने क्या-क्या संकट झेले हैं ?"

बुद्धिसेन बहुत ही आश्चर्य से पूछते हैं—

"पिताजी! इतने करोड़ों की सम्पत्ति का अकस्मात् क्या हुआ ? क्या राजा ने लुटवा लिया या चोर डाकू लूट ले गये या अग्नि लग गयी ? आखिर आप लोग ऐसे सम्पत्तिहीन-दीन कैसे हो गये ?".....

"क्या पता, बेटा! तुम्हें निकाल देने के बाद अकस्मात् सारी सम्पत्ति कहाँ चली गई कुछ पता नहीं चला ?.....क्या कहूँ बेटा!"

फिर अश्रु आ जाते हैं—

"पिताजी! अब आप अश्रु बिल्कुल न लाइये। क्या पता किस समय किसके कैसे दिन आ जाते हैं ? कर्मों की गति बड़ी विचित्र है। अब आप पूर्ण शान्त होइये।"

"प्यारे बेटा! छह महीने भी नहीं हुए थे कि जब घर में खाने को दाना नहीं रहा। सारा कोठार जो कि रत्नों से, हीरों से, गजमोतियों से भरा हुआ था, वह सब खाली का खाली भाँय-भाँय कर रहा था। तब हमने तुम्हारी माता हेमश्री के गहने गिरवी रखे, फिर सभी बहुओं के गहने भी गिरवी रख दिये। जब फिर भी पेट के लाले पड़ गये, तब दुकानों को गिरवी रखना शुरू किया। जब सब दुकानें हाथ से निकल गईं तब हवेलियों को भी बेचना शुरू किया। बल्लभपुर के एक भाग की सारी ही हवेलियाँ तो हमारी थीं.....किन्तु हाय! जब सब हवेलियाँ बिक गईं मात्र जिसमें रहते थे वो ही बची तो उसे भी गिरवी रख दिया। ओह! बेटा इतने से भी दुर्दैव को शान्ति नहीं मिली तो जंगल में गये और घास-फूस की झोंपड़ी बनाकर रहने लगे....."

दिन भर लकड़ी काटते, इधर-उधर से बीनते और गठ्ठर बनाकर सिर पर रखकर शहर में बेचने जाते—

इतना सुनते ही बुद्धिसेन रो पड़े—

"हाय पिताजी! यह क्या करना पड़ा.....अरे दुष्ट दैव! तूने यह क्या किया..... ?"

"अरे बेटा! दैव ने इतने पर भी संतोष नहीं किया। हम लोग पेट नहीं भर पाये, तब बल्लभपुर छोड़कर बाहर

निकले। अब हम लोगों से लकड़ी बीनना और बेचना भी नहीं हो पाया। इधर-उधर भटकते रहे कि कोई कुछ नौकरी पर लगा ले तो कहीं पड़े रहें किन्तु किसी ने भी नौकरी नहीं देना चाहा.....हाय! बेटा! क्या कहूँ ? कोई हँसते, कोई अपरिचित समझ कर बोलते कि "अरे! ये कोई चोर लुटेरे फिर रहे हैं इन्हें अपने गाँव में नहीं रुकने देना।....."

"फिर आप यहाँ कैसे आये ?"

"फिर बेटा! हम लोग दर-दर भीख माँगने लगे।"

मनोवती इतना सुनते ही बिलखने लगी—

"हाय! पिताजी! आप लोग.....इतने उत्तम कुलीन जौहरी और भीख माँगना पड़ा।"

"हाँ बेटी! इन्हीं हाथों को पसारकर एक-एक पैसा, दो-दो पैसा झेला है और उनसे भोजन लेकर पेट भरना चाहा। कहीं पर भिक्षा में जो भी रूखी-सूखी रोटियाँ मिलीं, उन्हें सबने मिलकर खाया लेकिन पेट नहीं भर पाये फिर बेटा! घूमते-घूमते भटकते-भटकते हम लोग यहाँ रतनपुर के बगीचे में आये। वहाँ से शहर में आकर जब भीख माँग रहे थे तो 'सुखपाल जौहरी' जिनके यहाँ अपनी दुकान से बहुत बार हीरे, मोती, पन्ने भेजे जा चुके हैं, जो कि अपने ग्राहकों में विशेष एक ग्राहक थे। उन्होंने हम लोगों को देखा और कहा कि भाई! तुम लोग उत्तम कुल के दिखते हो, मालूम पड़ता है कि किसी आकस्मिक आपत्ति से परेशान हुए हो। भाई! तुम लोग भीख क्यों मांगते हो ? किसी के यहाँ नौकरी या मजदूरी करके उदर भरो तो अच्छा रहेगा। मैंने कहा कि हम अपरिचित लोगों को कोई भी नौकरी देने को तैयार नहीं होते हैं। उसने समझाया और कहा कि यहाँ राजा के जमाई हैं जो कि बहुत से गाँवों के मालिक भी हैं। वे यहीं रतनपुर में बहुत विशाल जिनमंदिर का निर्माण करा रहे हैं, तुम वहाँ चले जाओ। तुम्हें वहाँ मजदूरी अवश्य मिलेगी। मैंने कहा कि हम लोगों को यदि आप वहाँ मजदूरी दिला देंगे तो आपका बड़ा अहसान होगा। वे बेचारे हमारे साथ हो लिए और हमें ले जाकर आपके पास पहुँचाकर आपसे निवेदन किया किंतु बेटा! अभी एक वर्ष भी तुझे छोड़कर नहीं हुआ है और हम में से किसी ने भी तुझे नहीं पहचाना.....। और तू भी तो हम लोगों को इस दुरवस्था में नहीं पहचान पाया.....।"

3.2.7 माता-पिता से काम कराने को लेकर बुद्धिसेन के मन में हुई आत्मग्लानि—

बुद्धिसेन इतना सुनते ही एक बार मनोवती की ओर देखते हैं, पुनः लज्जा से माथा झुका लेते हैं और उनकी आँखों से अश्रु बहने लगते हैं। फिर रूँधे हुए कंठ से बोलते हैं—

"पूज्य पिता! क्षमा कीजिए मैंने बहुत बड़ा अपराध किया है, मैं अधम हूँ, पापी हूँ.....।"

"ऐ बेटा! तुम यह क्या कह रहे हो ? तुमने भला क्या अपराध किया ? अपराधी तो हम लोग हैं कि जिन्होंने तुझ जैसे रत्न को बिना अपराध के घर से निकाल दिया।"

"नहीं पिताजी! हमने बहुत बड़ा अपराध किया है।"

"पिताजी! मैंने तत्क्षण ही आपको, माँ को, सब भाईयों को और भावजों को पहिचान लिया था और इसलिए मैं वहाँ से उठकर महल में आया। आपकी पुत्रवधू मनोवती से यह बात कह सुनाई कि सभी लोग हमारे यहाँ मजदूरी करने आये हैं। इन्होंने बहुत कुछ समझाया कि अब आप परिचय कराके उन्हें सुखी करो परन्तु मुझे बहुत ही गुस्सा चढ़ा हुआ था, मैंने इनकी नहीं मानी और कहा कि मैं इनसे अपना बदला अवश्य चुकाऊँगा। इन लोगों ने गर्व में आकर मुझे निकाल दिया है। अब मैं एक बार मजदूरी कराकर अनन्तर भेद खोलूँगा। तब भी मनोवती जी ने यह आग्रह किया कि आप माता-पिता से बोझा नहीं उठवाना, मैंने इतनी बात इनकी मान ली।

अनन्तर आज मध्यान्ह में मनोवती जी ने अतीव हठ पकड़ लिया कि आज परिचय कराना ही है अन्यथा मैं सबको बुलाकर परिचय स्थापित किये देती हूँ। तब मैंने अभी आप लोगों को बुलाया है अन्यथा कुछ दिन और भी मजदूरी करवाता।"

"किन्तु बेटा! इसमें तेरा क्या अपराध है ? यह तो हम लोगों ने ही अपने किये का फल पाया है।"

3.2.8 बुद्धिसेन द्वारा क्षमायाचना करने से सबको आत्मग्लानि हुई—

बुद्धिसेन पश्चात्ताप से पीड़ित होकर बार-बार अपनी निन्दा करता है और भाई-भावजों से भी क्षमायाचना करता है—

"हे भाई! आप लोग मेरे पूज्य पितातुल्य हैं फिर भी क्रोध में आकर मैंने आप लोगों से मजदूरी कराई है सो अब आप सब मुझे क्षमा कर दें। बड़े लोगों का स्वभाव क्षमा का ही होता है और छोटे लोग बालकवत् अपराध किया करते हैं। भाभी जी! आप लोग मेरी माता के तुल्य हैं फिर भी मैंने आपके सिर पर बोझ रखवाया है सो क्षमा करें।"

सब आश्चर्य से सोच रहे हैं कि ओहो! हम लोगों ने इनके साथ तो सही में बिना कारण अन्याय किया है। अपराधी तो हम लोग हैं और उल्टे इनकी विवेकशीलता, उदारता तो देखो! जो कि ये उल्टे हम लोगों से क्षमायाचना कर रहे हैं। सभी लोग स्तब्ध रह जाते हैं पुनः धनदत्त कहता है—

"भाई! सच में देखा जाये तो अपराधी हम लोग ही हैं, आप नहीं हैं।"

बीच में हेमदत्त सही स्थिति को स्पष्ट करते हुए बोलते हैं—

"बेटा! यह तो तुझे मालूम ही है कि मनोवती ने घर में आकर अपनी प्रतिज्ञा पालने हेतु तीन उपवास कर लिये थे। अनन्तर तुम्हारे साले मनोजकुमार ने आकर भेद खोला, तब मैंने अपना कोठार खोल दिया, जिसमें इतने गजमोती थे कि जीवन भर मनोवती उनके पुंज जिनदेव के समक्ष चढ़ाती रहती तो भी वे समाप्त नहीं होते।"

दीर्घ निःश्वास लेकर—

"किन्तु होनहार बलवान् होती है। मनोवती ने एक बार ही गजमोती मंदिर में चढ़ाया था और अपने पीहर चली गई। इधर राजा मरुदत्त ने सभी जौहरियों को एक साथ सभा में बुलवाया और गजमोती की मांग की। हम लोगों में पहले यह निर्णय हो चुका था कि सभी जौहरी राजदरबार में एक ही उत्तर देवेंगे अतः उस समय सभी जौहरियों ने गजमोतियों के बारे में ना कर दिया और सबके साथ मैंने भी ना कर दिया।

हाय बेटा! मेरे ना कर देने से बड़ा अनर्थ हो गया। राजा ने आवेश में आकर कहा कि यदि आज या कल क्या, वर्षों बाद भी किसी के यहाँ गजमोती दिख गई तो उसे प्राणदंड दिया जायेगा और उनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली जायेगी।.....घर आकर मैं बहुत ही चिंतित हुआ। अपने इन धनदत्त आदि छहों बेटों को बुलाकर विचार-विमर्श किया। अन्त में निर्णय यह रहा कि बुद्धिसेन को ही घर से निकाल दिया जाये तभी अपने धन की और प्राणों की रक्षा है। अन्यथा मनोवती आयेगी, गजमोती चढ़ायेगी पुनः राजा के कोप का भाजन हम लोगों को बनना ही पड़ेगा।

ओह! बस निर्बुद्धिक होकर हम लोगों ने तुझे घर से निकल जाने का आदेश दे दिया। बेटा! तेरी माँ को तो तेरे निकल जाने के बाद ही पता चला है। बाद में यह तो बहुत दुःखी हुई है। खैर! जैसा हम लोगों ने किया....और तो क्या मनोवती की प्रतिज्ञा की भी हम लोगों ने निंदा की, उसकी भी निंदा की, कि यह कैसी तो प्रतिज्ञा और कैसी तो बहू ? इत्यादि शब्दों में अवहेलना की, मन में कैसे दुर्भाव किये। बस, उसी का फल तो इतने दिनों से भोग रहे हैं.....अतः हम सभी लोग अपराधी हैं। बेटा! तुम उदार हृदय होकर अब हम सबको क्षमा कर दो।"

3.2.9 सभी ने मनोवती व बुद्धिसेन से क्षमायाचना की—

सभी भाई-भावज भी एक स्वर से क्षमा माँगते हैं—

"भाई! हम लोगों का अपराध क्षमा कर दो।"

कुमार बुद्धिसेन नीचा माथा कर लेते हैं और सकुचाते हुए कहते हैं—"पूज्य तात्! आपका क्या दोष है ? हमने तो पूर्व में कुछ अशुभ कर्म संचित किये होंगे, उन्हीं का फल ऐसा मिला है। इसमें आप लोग तो बस निमित्तमात्र हैं। अब आप अपने इस संताप को छोड़ दीजिए और शांतचित्त होइये।"

कुछ क्षण बाद बिल्कुल शांत वातावरण होने पर पुनः हेमदत्त कहते हैं—

"बेटा बुद्धिसेन! घर से निकलने के बाद तुम्हें कैसे-कैसे प्रसंग आये ? कहो तो सही!"

3.2.10 बुद्धिसेन ने घर छोड़ने के बाद के प्रसंग सुनाए—

तब कुमार बुद्धिसेन ने भी न अति संक्षेप और न अति विस्तार से सुनाना शुरू किया—

"पिताजी! मैं हस्तिनापुर पहुँचकर केवल देश निर्वासन का समाचार सुनाकर विदेश गमन हेतु स्वीकृति चाहता था किन्तु मनोवती ने बहुत हठ पकड़कर मेरा साथ किया। यहीं रतनपुर के बगीचे में हम तीन दिन बाद आ पहुँचे। इन्होंने एक नग दिया, जिसे गिरवी रखकर मैं बराबर तीन दिन तक भोजन का सामान लाता रहा। ये भोजन बनाती रहीं और मुझे जिमाती रहीं तथा आप स्वयं उपवास करती गईं। मैंने इन्हें अतीव कमजोर देखकर यही अनुमान लगाया कि मेरे निर्वासन के दुःख से और मुझसे अभी कोई व्यापार नहीं जम रहा है इसी चिंता से ये कमजोर होती जा रही हैं किन्तु आठवें दिन मैं तो रतनपुर शहर में व्यापार हेतु ही घूम रहा था, वहाँ बगीचे में इनकी प्रतिज्ञा की दृढ़ता से, इनके पुण्य प्रभाव से देवों ने आकर धरती में ही दिव्यविशाल मंदिर का निर्माण कर दिया और वहाँ रत्नों की जिनप्रतिमाएँ विराजमान कर दीं। इनके पैर के नीचे की शिला सरकी और इन्होंने उसे उठाकर नीचे जाकर स्नान आदि करके श्री जिनेन्द्रदेव का दर्शन पूजन किया। वहीं पर रखे हुए गजमोतियों के पुंज को लेकर प्रभु के चरण निकट चढ़ाकर अपना जीवन कृतार्थ किया।

"पिताजी! इन्होंने तो ऐसे दिव्य मंदिर का दर्शन मुझे भी नहीं कराया। स्वयं ही दर्शन करके कृतकृत्य हो गईं।"

पिताजी हँस पड़ते हैं और हर्ष में विभोर होकर सभी लोग एक साथ बोल पड़ते हैं—

धन्य हो मनोवती! तुम धन्य हो! ओहो!....तुमने अपनी प्रतिज्ञा से देवों के आसन कंपा दिये.....। तुम महा पुण्यशालिनी हो। सचमुच में तुम्हारे पुण्य की महिमा अपार है! हाँ, यही कारण है कि तुम्हारी प्रतिज्ञा की निंदा से हम लोग क्या से क्या हो गये! अरे! किन-किन परिस्थितियों का सामना नहीं किया ?"

जय हो, जय हो! जैनधर्म की जय हो! श्री जिनेन्द्रदेव की जय हो। प्रभो! आपके प्रसाद से ही सब सुख और सुमंगल होते हैं!.....

"अनन्तर क्या हुआ बेटा ?"

"अनन्तर इन्होंने आठवें दिन भोजन किया और फिर भी मुझे कुछ नहीं बताया। इसके बाद इन्हें मन्दिर जी से आते समय दो मोती मिले थे सो एक मोती मुझे देकर कहा कि इसे राजा को भेंट करो। मैंने वैसा ही किया, तब राजा ने मेरा परिचय पूछकर और जौहरी पुत्र जानकर एक हवेली में ठहरा दिया।"

"अच्छा! तो तत्काल ही तुम सुखी हो गये!"

"हाँ पिता जी!"

3.3 सभी ने मनोवती की दर्शन प्रतिज्ञा की सराहना की—

बुद्धिसेन 'नर-मादा' मोती का पूरा किस्सा सुना देते हैं, जिसको सुनकर सभी लोग आश्चर्यचकित हो जाते हैं। इसके बाद राजा के द्वारा गुणवती के विवाह से लेकर जिनमंदिर निर्माण के कार्य की प्रेरणास्रोत ये मनोवती ही है, यहाँ तक का इतिहास सुना देते हैं। सभी प्रसन्नचित्त होकर मनोवती की और उसके गजमोती चढ़ाने की प्रतिज्ञा की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। सभी लोग प्रत्यक्ष में तत्क्षण ही प्रतिज्ञा के महान उत्तम फल को और उसकी अवहेलना से हुए अतीव हीन निकृष्ट फल को देखकर बराबर धर्म की प्रशंसा करते हुए अपने दुष्कृत्यों की निंदा करते हैं।

कुमार बुद्धिसेन पिता के पैर दबाते हुए बार-बार उनके शरीर में, गले में प्रकट रूप से दिखती हुई हड्डियों को, नसों को देख-देखकर विह्वल हो उठते हैं।

"ओह पिताजी! आप कितने कमजोर हो गये हैं। सारा बदन का रंग काला पड़ गया है।

हेमदत्त हँस पड़ते हैं—

"बेटा! अब सब वापस ठीक हो जायेगा।"

3.3.1 बुद्धिसेन ने सभी को शहर से दूर ठहराकर भव्यता से उनका प्रवेश कराया—

अर्धरात्रि का समय हो रहा है। मनोवती जेठानी के बच्चों को प्यार करके वहीं सुला रही है। तब बुद्धिसेन कुछ सोचकर सहसा बोल उठते हैं—

"प्रिये! भंडारी से कहकर भंडार खुलवाओ और वस्त्रों से, अलंकारों से सबको सुसज्जित करो।"

मनोवती तथैव व्यवस्था में लग जाती है। बुद्धिसेन कहते हैं—

"पिताजी! अब आप लोग वस्त्र परिवर्तित करके रथों में बैठकर इस शहर से पाँच-सात मील दूर बल्लभपुर के मार्ग में चले जाइये और वहीं पर ठहरिये। जब राजा को पता चलेगा कि अपने समधी सकुटुम्ब आ रहे हैं, तब वे आपके स्वागत के लिए आयेंगे और आपका महोत्सव के साथ इस शहर में प्रवेश कराया जावेगा।"

पिता ने कुछ सोचकर बेटे की बात मान ली और बुद्धिसेन ने स्वयं अपने हाथों से पिताजी के वस्त्र बदले, भाइयों को वस्त्र बदलाये। उन्हें सुन्दर-सुन्दर रत्नों के, हीरों के अलंकार पहनाये और सभी के गले में गजमोतियों के सुन्दर-सुन्दर हार पहनाये। मनोवती ने सासूजी को बढ़िया साड़ी पहनाई और जेवर पहनाये, सभी जेठानी की साड़ियाँ बदलाई और सभी को बढ़िया-बढ़िया जेवर पहिनाये।

कुछ विश्वस्त लोगों के साथ जल्दी से जल्दी उन्हें रथ में, पालकियों में बिठाकर बाहर भेज दिया और उनके साथ में तमाम द्रव्य, हाथी, घोड़े, वाहन, परिकर, कर्मचारी आदि भी भेज दिये। वे लोग वहाँ से जाकर सात मील पहले एक बगीचे में ठहर गये।

3.3.2 राजा के पास कुटुम्बियों के आने की सूचना भेजी—

मध्याह्न में राजा के पास कुमार ने सूचना भेज दी कि मेरे पिताजी सपरिवार पधारे हुए हैं। यहाँ से सात मील दूरी पर हैं। कल सुबह रत्नपुर के बगीचे में आ जावेंगे। राजा को समाचार मिलते ही उनके हर्ष का पार नहीं रहा, यशोधर महाराज ने सारे शहर में घोषणा कर दी कि हमारे समधी जी पधारे हुए हैं। सारे शहर के नर-नारियों को हमारे साथ कल प्रातः उनके स्वागत हेतु चलना है। सारा शहर झंडियों से, तोरणद्वारों से, चन्दन के छिड़काव से, फूलों की मालाओं से और आम्र, अशोक तथा कदली के पत्तों से बहुत ही सुन्दर सजाया गया है।

महाराज यशोधर प्रातःकाल अपने परिवार के साथ तथा बुद्धिसेन जमाई, उनकी भार्या मनोवती और गुणवती के साथ, अमात्य मंत्री, सेनापति, राजश्रेष्ठी, जौहरी आदि नागरिक जनों के साथ-साथ बड़े ही लवाजमे सहित निकलते हैं। कितने ही तरह के मंगल बाजे बज रहे हैं। सौभाग्यवती महिलाएं मंगलगीत गा रही हैं। सभी लोग चलकर शहर के बाहर बगीचे में पहुँचते हैं।

राजा यशोधर और बुद्धिसेन कुमार अपनी-अपनी रानियों के साथ अपने-अपने रथ से उतर पड़ते हैं। बगीचे में आगे बढ़कर समधी से मिलते हैं। उस समय बाजों की गंभीर ध्वनि से आकाश मंडल गुंजायमान हो उठता है। सब एक-दूसरे के गले लगकर शरीर की कुशल क्षेम पूछकर माता हेमश्री से मिलकर यथोचित अभिवादन कर उनसे शहर में पधारने की प्रार्थना करते हैं। वे लोग भी प्रसन्नपूर्ण मुखमुद्रा से सभी का यथोचित सत्कार करके सबके साथ वहाँ से प्रस्थान कर देते हैं। शहर में महलों की अटारियों पर उनके प्रवेश को देखने हेतु लाखों नर-नारी खड़े हुए हैं। सड़कें खचाखच भरी हुई हैं। कर्मचारीगण बड़ी मुश्किल से भीड़ को हटा पाते हैं जब वहाँ से इन लोगों के रथ आगे बढ़ पाते हैं। जनता आपस में उनका परिचय दे रही है। देखो ना, ये रथ पर बुद्धिसेन के साथ बैठे हुए महानुभाव उनके पिताजी मालूम

पड़ रहे हैं। ये अन्य रथों पर अपनी-अपनी भार्यायों के साथ उनके भाई हैं। ये देखो! सामने रथ पर मनोवती और गुणवती के बीच में जो बैठी हुई हैं, वे ही तो बुद्धिसेन महाराज की माता हैं।

.....कुछ घण्टों के बाद सब लोग राजमहल तक आ जाते हैं। महाराज आज दिन सबको राजमहल में ही ठहराते हैं। सब लोगों को भोजन पान कराते हैं। सारे गाँव के लोगों को जिमाते हैं।

.....दूसरे दिन सभी परिवार को कुमार बुद्धिसेन अपने महल में ले जाते हैं और उनका यथोचित आदर सत्कार करके भोजन कराते हैं और सभी भाइयों के लिए अलग-अलग बड़ी-बड़ी हवेलियाँ खुलवा देते हैं।

.....सभी परिवार के लोग सब तरफ से सुखी हैं। शाम को कुमार अपने महल में जब बैठते हैं तब सभी परिवार के लोग एकत्रित हो जाते हैं। मनोरंजन के साथ-साथ मंदिर निर्माण की गतिविधियों पर विचार-विमर्श चलता रहता है। कुमार स्वयं अपने हाथों से प्रतिदिन पिताश्री के चरण दबाते हैं और मनोवती सासूजी की सेवा करती रहती हैं।

सेठ हेमदत्त कभी-कभी पिछले दिनों की याद कर सिहर उठते हैं। हेमश्री भी सोचती हैं कि देखो! कर्मों की लीला कितनी विचित्र है! एक दिन यह बहूरानी महारानी और मैं उसकी नौकरानी थी। इसके बुलाने पर भी इसके पास जाने को सकुचाती थी और आज यह उदारमना देवी मेरी सेवा टहल कर रही है।

सभी लोग प्रत्यक्ष में पाप के फल से दुःख उठा चुके हैं अतः अब धर्म की निन्दा से, धर्मात्मा की निंदा से परिपूर्णतया निवृत्त हो चुके हैं। अब तो खूब ही रुचि से जिनेन्द्रदेव की पूजा में तत्पर हो रहे हैं। हमेशा धर्मचर्चा के सिवाय अब अन्य कुछ बातें किसी को भी नहीं सुहाती हैं। मनोवती को सब लोग साक्षात् धर्म की मूर्ति समझ रहे हैं। धर्मध्यानपूर्वक सभी का समय सुख शांति से व्यतीत हो रहा है।

3.4 बुद्धिसेन ने जिनमंदिर की प्रतिष्ठा का लिया निर्णय—

कुछ दिन बाद कुमार बुद्धिसेन मंदिर का विस्तृत वर्णन करते हुए पुनः मनोवती से पूछते हैं—

"आपने जो देवों द्वारा रचित दिव्य जिनमंदिर का दर्शन किया है, उसमें की कोई और भी सुन्दर आकृति (डिजाइन) बताओ जो कि वहाँ पर किंचित् रूप में बनवाई जा सके।"

"मैंने जो कुछ भी बढ़िया आकार देखा था, वह सब बता दिया है और प्रायः वह किसी न किसी अंश में बन चुका है। यद्यपि उसमें विशेषताएं तो बहुत सी थीं किन्तु अब मुझे स्मरण में पूरी तौर से नहीं आ रही हैं।"

"तो अब अपना निर्माण कार्य पूरा हो लिया है। अब तो वह जिनमंदिर देखते ही बनता है और जब इसमें जिनेन्द्रदेव की प्रतिमाएँ विराजमान हो जावेंगी फिर क्या पूछना!"

"स्वामिन्! अब बहुत शीघ्र ही प्रतिष्ठा विधि करवाकर जिनेन्द्रदेव की रत्नमयी प्रतिमाएं विराजमान करवाइये। अब किंचित् भी देर न कीजिए।"

"तो ठीक है प्रिये! मैं अभी महाराज के पास पहुँचकर प्रतिष्ठा का निर्णय लिये लेता हूँ।"

कुमार बुद्धिसेन सभा में पहुँचकर महाराज यशोधर को प्रणाम कर यथोचित आसन पर बैठ जाते हैं। परस्पर में कुशल क्षेम होने के बाद मंदिर निर्माण की चर्चा चलती है। आगे उसी विषय में बुद्धिसेन कहते हैं—

"महाराजाधिराज! मंदिर का कार्य सुचारुतया सम्पन्न हो चुका है। आप एक बार चलकर अवश्य ही निरीक्षण कीजिए।"

"बहुत अच्छा! अवश्य चलूँगा।"

"महाराज! अब पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा कराने की भी आज्ञा दीजिए।"

महाराज प्रसन्नता व्यक्त करते हुए—

"बहुत अच्छी बात है, कुँवर साहब! बहुत ही विशेषरूप में प्रतिष्ठा होनी चाहिए। अच्छा! मंत्री महोदय! ज्योतिषीजी

महाराज को बुलवाइये।"

"जो आज्ञा महाराज!"

"हाँ, कुँवर जी! देखिये, जो भी सहायता आप हमसे चाहें, हम सब कुछ करने को तैयार हैं.....।"

इसी चर्चा के बीच में ज्योतिषीजी आ जाते हैं और यथोचित अभिवादन कर बैठ जाते हैं।

"हाँ, पंडितजी! श्री जिनेन्द्रदेव की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का बहुत ही उत्तम मुहूर्त निकालिये।"

पंडित जी मुहूर्त देखकर राजा को बतला देते हैं। राजा भण्डारी से पंडित के लिए यथोचित भेंट मँगवाकर उन्हें दे देते हैं। राजा पुनः कहते हैं—

"आप अब कुंकुम पत्रिका लिखवाइये और सभी देशों में, शहरों में, नगरों में तथा सभी ग्रामों में भिजवाइये।

कुमार बुद्धिसेन वहाँ से आकर अपनी प्राणवल्लभा मनोवती को सारा समाचार सुना देते हैं पुनः सायंकाल में पिताजी के समक्ष अपने सभी परिवार को बिठाकर सारी खुशखबरी बता देते हैं। सभी लोग आनन्दविभोर हो जाते हैं।

दूसरे दिन प्रातःकाल से पंचकल्याणक प्रतिष्ठा की तैयारियाँ शुरू हो जाती हैं। सर्वत्र उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम के सभी छोटे-बड़े ग्रामों और शहरों में कुंकुम पत्रिकाएं भेजी जाती हैं। चतुर्विध संघों को प्रार्थना करके उनका पदार्पण कराते हैं तथा बड़े-बड़े प्रतिष्ठाचार्य पंडित लोगों को आमंत्रित करते हैं। बड़े-बड़े महल, मकान खाली कर-करके खुले कर दिये गये हैं और शहर के बाहर बगीचों में तमाम तंबू डेरे लगाये गये हैं। जगह-जगह बड़े-बड़े पांडाल बनाये गये हैं। सारा शहर ध्वजा-पताकाओं से, तोरणों से, वंदनवारों से और बड़े-बड़े तोरणद्वारों से सजाया गया है।

3.4.1 सभी को बांटा गया किमिच्छक दान-

राजा यशोधर ने सर्वत्र शहर में घोषणा कर दी है कि कोई भी यात्री किसी से कुछ माँगे तो अविलम्ब दिया जाये और उसकी कीमत कागज में लिखकर हमारे खजांची के पास भेज दी जाये। सभी का कुल खर्चा हमारी कोठी से होवेगा। यदि कदाचित् किसी यात्री से कोई अपराध बन जावे तो वह माफ कर दिया जावे। राजा ने कुमार बुद्धिसेन के पास भी व्यवस्था के लिए अपनी बहुत कुछ सेना भेज दी।

बुद्धिसेन कुमार ने भी अपने बड़े-बड़े कोठार और भंडार खोल दिये हैं और खजांची को आज्ञा दे दी है कि खुले हाथों और खुले मन से खर्चा करो। किसी को किंचित् भी तकलीफ नहीं होने पावे। लाखों यात्री देश-देश से आ रहे हैं, कोई अपने-अपने रिश्तेदारों के यहाँ, कोई शहर की हवेलियों में, मकानों में और कोई-कोई यात्री बगीचों में बने हुए तंबू डेरों में ठहर रहे हैं बहुत से व्यवस्थापक चारों तरफ नियुक्त किये गये हैं। शहर की गली-गली में डगर-डगर में धूम-धाम मच रही है।

3.4.2 सौधर्म इन्द्र एवं शचि इन्द्राणी का निर्णय-

बुद्धिसेन की छोटी पत्नी गुणवती गर्व में फूल रही है। मेरे प्रति मेरे पतिदेव का अधिक प्रेम है। अतः मैं ही प्रमुख इन्द्राणी बनूँगी। शहर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को जब इस बात का पता चलता है तो वे लोग एकांत में बैठकर विचार-विमर्श करके महाराज यशोधर के दरबार में पहुँचते हैं। महाराज उन पंचजनों का यथोचित सत्कार करके प्रश्न करते हैं—

"कहिए श्रीमन्महोदय! आप लोगों का आगमन इस समय कैसे हुआ ? मेरे लिए कोई खास आज्ञा हो तो फरमाएँ।"

"महाराजाधिराज! आप जैसे धर्मात्मा और धर्म का सही मूल्यांकन करने वाले ऐसे राजा को पाकर हम धन्य हैं।.....महाराज! आज आने का खास कारण यह है कि इस पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के सौधर्म इन्द्र कौन बनेंगे ?"

"सौधर्म इन्द्र के अधिकारी तो बुद्धिसेन कुमार हैं ही, इसके लिए हमारा निर्णय क्या लेना ?"

"फिर महाराज! उनकी शची इंद्राणी का स्थान किन्हें मिलना चाहिए ?"

"विद्वज्जनों! उनकी जो मनोवती धर्मपत्नी हैं वे ही शची इन्द्राणी बनेंगी।"

"महाराज! गुणवती जी राजपुत्री हैं उनको....."

"नहीं, नहीं! इस विषय में राजपुत्री से क्या संबंध ? पहली बात तो मनोवती बड़ी रानी है, फिर दूसरी बात यह है कि यह सारा अचिन्त्य माहात्म्य तो उन्हीं का ही है अतः न्याय से उन्हीं को प्रमुख इन्द्राणी का अधिकार देना होगा।"

"जय हो, महाराज यशोधर का यश विश्वव्यापी बने।"

सब लोग बड़े आदर से महाराज के गुणों की प्रशंसा करते हुए वहाँ से निकल कर सीधे बुद्धिसेन के दरबार में पहुँचते हैं और राजा का आदेश सुना देते हैं। बुद्धिसेन भी यथोचित न्याय को पाकर हर्षातिरेक से रोमांचित हो उठते हैं अपनी प्रिया मनोवती को सारा समाचार सुनाकर पुनः गुणवती जी के महल में पहुँच कर उसे भी प्रिय हित मधुर वचनों से समझा-बुझाकर इन्द्राणी बनने के लिए तैयार करते हैं—

"देखो प्रिये! यह मनोवती मेरे साथ न आती तो मैं आज न जाने कहाँ होता! मैं तुम्हें भला कैसे पा सकता था ? इसलिए महाराज का न्याय यथोचित ही है। अब तुम किसी प्रकार का मन में विषाद मत करो और प्रसन्नमना होकर मनोवती की सहचारिणी बनो।"

3.4.3 भव्यतापूर्वक सम्पन्न हुई पंचकल्याणक प्रतिष्ठा—

प्रातःकाल से अनेकों तरह के मंगल बाजे बज रहे हैं। प्रतिष्ठा विधि का कार्यक्रम प्रारंभ हो चुका है। धनदत्त, सोमदत्त आदि छहों भाई भी ईशान, सनत्कुमार आदि इन्द्र बने हुए हैं। कुल सभी मिलकर सौ इन्द्र अपनी-अपनी इन्द्राणियों के साथ आकर विधान मंडप में उपस्थित हो चुके हैं। ऐसा लग रहा है कि मानों साक्षात् सौधर्म इन्द्र ही अपने चतुर्निकाय के सभी इन्द्रों और परिवार देवों के साथ उपस्थित हैं। पिता हेमदत्त और माता हेमश्री खुशी से फूल रहे हैं। उन्हें बुद्धिसेन के विवाह में जो आनन्द आया था, आज उससे करोड़ों गुणा अथवा यों कहिए असंख्य गुणा आनन्द आ रहा है।

सेठानी हेमश्री बार-बार मनोवती की प्रतिज्ञा की प्रशंसा कर रही है। सेठ हेमदत्त भी प्रतिज्ञा के प्रत्यक्ष फल को देख-देखकर धर्म के प्रति अपना संवेग भाव वृद्धिंगत कर रहे हैं। विधिवत् पाँचों कल्याणकों द्वारा रत्नों के जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा हो रही है। मूलनायक भगवान् ऋषभदेव का सर्वश्रेष्ठ धर्म वृद्धिंगत हो रहा है।

बुद्धिसेन कुमार के आदेश से उनके खजांची लोगों से द्रव्य लेकर, भोजन विभाग के व्यवस्थापक लोग बहुत ही सुन्दर भोजन की व्यवस्था बनाये हुए हैं। सभी यात्री लोग वहीं भोजनशाला में भोजन करते हैं। शहर के सभी स्त्री-पुरुष भी वहीं भोजनशाला में जीमते हैं। आगन्तुक दर्शकगण जो इतर—अजैन लोग हैं, उनके लिए पृथक् भोजनशालाएं खुली हुई हैं। गरीबों के लिए तथा अंधे, लंगड़े आदि के लिए अलग भोजनालय खुले हुए हैं। वहाँ पर दिन के बारह घंटे सदावर्त चल रहा है।

प्रतिष्ठा मण्डप की शोभा का वर्णन अपार है। बावन गज के चौक (चबूतरे) पर रत्नों के चूर्ण और मोतियों से मंडल पूरा गया है। सर्वत्र रत्न, हीरे, मोती, माणिक, मरकत, पन्ना, स्फटिक, वैडूर्य आदि मणियों की शोभा ही दिखाई देती है। श्री ऋषभदेव की विशाल मूर्ति उत्तम पुखराज मणि से निर्मित अतीव सुन्दर समचतुरस्र संस्थान आदि उत्तम लक्षणों से विशेष है। भामंडल आदि आठ प्रातिहार्य और आठ प्रकार के मंगल द्रव्यों से वेदिका विशेष रूप से सुसज्जित हो रही है।

सभी इन्द्रगण नाना प्रकार के रेशमी आदि दिव्य शुभ्र धोती और दुपट्टे को धारण किये हुए हैं। नाना प्रकार के अलंकार और यज्ञोपवीत से विभूषित हैं और मस्तक पर सुन्दर मुकुट बांधे हुए हैं। इन्द्राणियाँ भी दिव्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर मस्तक में मुकुट लगाए हुए अपने पति के हर एक कार्य में सहयोगिनी हो रही हैं। इस प्रकार से सात दिन तक प्रतिष्ठा विधि चलती है। अन्तिम आठवें दिन रथयात्रा का महामहोत्सव मनाया जाता है। श्री जिनबिंब को रथ में विराजमान करके सारे शहर में श्रीविहार कराया जाता है। उस समय हजारों हाथी, घोड़े, रथ, पालकी आदि उस उत्सव में आगे-आगे चल रहे हैं। महाराज यशोधर स्वयं नंगे पैर श्रीविहार के साथ-साथ चल रहे हैं। अनंतर इन्द्राणी मनोवती के

साथ सौधर्मेन्द्र बुद्धिसेन की गाँठ जोड़कर सूत फेरने की विधि उत्सव के साथ सम्पन्न की जाती है। उस समय बाजों की ध्वनि से सारा शहर और आकाश मण्डल मुखरित हो उठता है। इस तरह आनंद मंगलपूर्वक बिना किसी विघ्न-बाधा के आठ दिन में विधि-विधान का कार्य संपूर्ण किया जाता है।

नवमें दिन सभी देश-विदेश के यात्रियों का यथोचित सम्मान करते हुए बुद्धिसेन महाराज सबको विदाई दे रहे हैं किन्तु बल्लभपुर और हस्तिनापुर के सभी यात्रियों को उन्होंने और एक दिन के लिए अतीव आग्रह करके रोक लिया है। उस दिन उन सबका विशेष आदर सम्मान करके दसवें दिन उन लोगों की भी विदाई कर दी।

3.4.4 सर्वत्र मनोवती की दर्शन प्रतिज्ञा और बुद्धिसेन के पुण्य की चर्चा फैल गई—

सर्वत्र शहर में और अपने-अपने देश को वापस जाने वाले यात्रियों के समूह में बस एक ही चर्चा चल रही है।

"ओहो! देखो तो सही, मनोवती देवी यह हस्तिनापुर के जौहरी सेठ महारथ जी की सुपुत्री हैं। इनने मुनिराज के पास यह प्रतिज्ञा ली थी कि "मैं जिनेन्द्रदेव के बिम्ब के समक्ष गजमोतियों को चढ़ाकर ही भोजन करूँगी।" प्रारंभ में ससुराल में आते ही तीन उपवास कर डाले पुनः गजमोती चढ़ाकर चौथे दिन भोजन किया।.....अनंतर पति के देशनिर्वासन के बाद उनके साथ नंगे पैर पैदल चलकर इस रतनपुर बगीचे में आई। देवों द्वारा निर्मित किये गये जिनमंदिर में गजमोती चढ़ाकर आठवें दिन भोजन किया था। इसी प्रतिज्ञा के प्रभाव से ही उसने अपने पतिदेव को और अपने को आज इतने ऊँचे उन्नति के शिखर पर चढ़ाया है।"

"देखो ना! कितना विशाल जिनमंदिर बना है। कितने रत्नों का प्रकाश उसमें जगमगा रहा है। एक सौ आठ बड़े-बड़े शिखर हैं और उन्हीं में छोटे-छोटे शिखर हैं। कुल मिलाकर एक हजार आठ शिखर बने हुए हैं और सभी पर सुवर्णों के, मणियों के कलश चढ़ाये गये हैं।"

"हाँ भाई! राजा यशोधर ने इन्हें अपनी पुत्री ब्याह दी है और इन्हें अपने विशाल राज्य का चौथाई भाग दे दिया है। इसलिए ये अब सेठ पुत्र नहीं रहे हैं ये राजजमाई हैं।"

"नहीं नहीं! ये तो अब स्वयं राजा ही हैं। बहुत से गाँवों के स्वामी हैं। इनके वैभव का क्या कहना ? सच है! इन्होंने अपनी चंचला लक्ष्मी का सदुपयोग कर लिया है। जिनबिम्ब प्रतिष्ठा से और जिनमंदिर निर्माण से बढ़कर तीनों लोकों में कोई भी महान पुण्य कार्य न था, न है और न होगा। अरे भाई! यदि तीन लोकों के सारे पुण्य को इकट्ठा करके तराजू के एक पलड़े में रखो और एक जिनमंदिर बनवाकर प्रतिष्ठा कराके उसमें जिनबिंब विराजमान करने के पुण्य को एक पलड़े में रखो तो इस जिनमंदिर के पुण्य का पलड़ा ही भारी हो जावेगा।"

इस तरह नाना प्रकार से उभय दम्पत्ति की तथा मनोवती की प्रतिज्ञा की और प्रतिष्ठा संबंधी विशेषता की चर्चायें करते हुए तमाम लोग भी महान पुण्य का अर्जन करते चले जा रहे हैं।

3.5 बल्लभपुर नरेश को ज्ञात हुआ सम्पूर्ण समाचार—

बल्लभपुर नरेश महाराज मरुदत्त अपने सिंहासन पर आरूढ़ हैं। मंत्रीगण उनके निकट में बैठे हुए हैं और जैसी की वापस आए हुए प्रजाजनों के मुख से रतनपुर में हुई प्रतिष्ठा की चर्चा सुनी है, वही सुना रहे हैं—

"महाराज! उस प्रतिष्ठा की अपनी विशेषता यह रही कि राजजमाई ने सभी लाखों यात्रियों को विदाई के समय एक-एक रत्नहार भेंट में दिए हैं और वस्त्र भी दिये हैं। करोड़ों याचकों को मुँह माँगा दान दिया गया है। आठ दिन तक तो इतने लोगों ने भोजन किया है, कहते हैं कि शायद उनकी संख्या चक्रवर्ती के कटक के लोगों की संख्या से कम नहीं होगी।

"हाँ महाराज! इस समय तो यह प्रतिष्ठा अपने आप में एक अद्‌भुत ही हुई है।"

द्वारपाल आकर नमस्कार करके निवेदन करता है—

"महाराजाधिराज की जय हो। महाराज! अपने नगर के जौहरी लोग पधारे हुए हैं।"

"हाँ, अन्दर आने दो।"

सभी लोग आकर यथोचित भेंट रखकर विनय करके बैठ जाते हैं—"कहिए! जौहरी जी कहिए! आप लोग रतनपुर से सकुशल तो आ रहे हैं ? कहिए प्रतिष्ठा संबंधी कोई विशेष वार्ता कहिए!"

"महाराज! हम लोग विशेष वार्ता सुनाने ही आये हैं।"

लोग कुछ सकुचाते हैं—

"कहिए ना!"

"महाराज! लगभग एक वर्ष हुए होंगे, आपने एक दिन सभा में सभी जौहरियों को बुलाया था.....।"

"हाँ, हाँ! गजमोतियों की मांग की थी मैंने.....।"

"हाँ महाराज! उसी दिन जौहरी हेमदत्त ने भी गजमोती के बावत ना कर दिया था।"

"फिर क्या हुआ ?"

"फिर महाराज! वे घर पहुँचे और चिंतित हो गये। चूँकि उनकी छोटी बहू जो कि हस्तिनापुर से आई थी, उसकी जिन मंदिर में गजमोती चढ़ाने की प्रतिज्ञा थी और सेठ जी के घर न जाने कितने गजमोती कोठार में भरे पड़े थे। बहू आयेगी, गजमोती चढ़ायेगी तो क्या होगा ?.....इसी डर से सेठ जी ने अपने छोटे पुत्र को घर से निकाल दिया।"

आश्चर्य और खेद के साथ—

"अरे! यह क्या हुआ ? फिर वह कहाँ है ?"

"महाराज! वह हस्तिनापुर से अपनी भार्या मनोवती को लेकर रतनपुर चला गया। वहाँ पर बगीचे में मनोवती को गजमोती चढ़ाये बिना सात उपवास हो गये.....। अनन्तर देवों ने दर्शन कराकर उसकी प्रतिज्ञा निभाई और उसी समय 'नर-मादा' ऐसे दो मोती देवों ने ही उसे दिये। जिनके फलस्वरूप वह बुद्धिसेन राजा का जमाई हुआ।"

आश्चर्य से—

"अच्छा!"

"हाँ महाराज! यह प्रतिष्ठा उसी ने तो कराई है। सारे कार्य में प्रेरणा एकमात्र उस मनोवती महिलारत्न की ही है।"

"यह बात सत्य है या किंवदन्ती मात्र है ?"

"नहीं महाराज! बिल्कुल सत्य है। मैंने स्वयं देखा कि प्रतिष्ठा के आठ दिन बाद सब यात्री तो चले गये परन्तु कुमार ने बल्लभपुर के सभी यात्रियों को तथा हस्तिनापुर के यात्रियों को आग्रहपूर्वक रोक लिया और उनका विशेष सत्कार किया।"

अन्य जौहरीगण भी स्वत: देखी सुनी बातों को सुनाने लगते हैं—

"महाराज! मैंने स्वयं देखा, हस्तिनापुर के सेठ महाराज जी अपनी पुत्री मनोवती के माथे पर हाथ फेरते हुए कह रहे थे कि बेटी मनोवती! तू बिना कुछ कहे सारे जेवर आभूषण उतारकर वहीं पलंग पर डाल कर चली आई थी। तब हम लोगों के शोक का पारावार नहीं था और अब तेरी इस उन्नति को, तेरी प्रतिज्ञा के इस माहात्म्य को देखकर मेरी खुशी का भी पार नहीं है।"

"महाराज! स्वयं अपने नगर के सेठ हेमदत्त सपरिवार वहीं पर रहते हैं।"

"अरे! वे यहाँ से कब चले गये ?"

"राजन्! अपने पुत्र को निकालने के बाद वे चन्द दिनों में अपने आप ही सम्पत्ति और श्री से विहीन हो गये।"

"अपराध क्षमा हो! मैंने तो सुना है कि उन्होंने दुकानों और मकानों को तथा औरतों के जेवरों को भी कुछ बेच खाया, कुछ गिरवी रखकर उससे पेट भरा।"

"अरे! मैंने तो यहाँ तक सुना है कि उन्होंने कुछ दिन यहीं पर जंगल से सपरिवार सिर पर लकड़ियों के गट्ठर लाकर बेचे हैं।"

"हाय, हाय! यह सब बातें मुझे क्यों नहीं बताई गईं ?"

"और तो क्या महाराज! वे देश छोड़कर भीख माँगते-माँगते रतनपुर पहुँचे और वहाँ पर कुछ दिनों तक इसी मंदिर के निर्माण कार्य में मजदूरी भी की है।.....अनंतर जब कुमार बुद्धिसेन को मालूम हुआ, तब उसने इनका परिचय कराकर राजा के द्वारा इनका सम्मान कराया है।"

"ओह! मंत्री! मेरे निमित्त से मेरे शहर के इतने पुण्यशाली संपत्तिशाली जौहरी को ऐसे-ऐसे संकटों का सामना करना पड़ा। धिक्कार हो मुझे! जो कि मेरे कठोर अनुशासन के निमित्त से ऐसा नररत्न बुद्धिसेन रतनपुर में कीर्ति पताका फहरा रहा है। मंत्रिन्! अब उन सबको अपने शहर में वापस लाओ।"

"महाराज! वे बुद्धिसेन वहाँ पर यशोधर महाराज के बहुत कुछ राज्यभाग के अधिकारी हैं। अब वे वहाँ पर राज्य कर रहे हैं। वे यहाँ वापस कैसे आयेंगे ?"

"नहीं मंत्रिन्! तुम स्वयं वहाँ जाओ और कुमार बुद्धिसेन से समझाकर कहो कि महाराजा मरुदत्त सब प्रकार से क्षमायाचना करा रहे हैं और वे अब तुम्हारे वियोग से बहुत दुःखी हैं.....। वे तुम्हारे वहाँ चले बिना अब अपने प्राणों को भी धारण करने में असमर्थ हैं।"

3.5.1 सम्पूर्ण समाचार ज्ञात होने पर बल्लभपुर नरेश बुद्धिसेन से मिलने को हुए व्याकुल, मंत्री को लाने हेतु भेजा-

महाराजा मरुदत्त पश्चात्ताप से आहत हो बुद्धिसेन से मिलने के लिए विह्वल हो उठते हैं—

"मंत्रिन्! अब इस कार्य में एक क्षण की भी देरी करना उचित नहीं है।"

"जो आज्ञा महाराज! मैं स्वयं अभी-अभी प्रस्थान की तैयारी कर रहा हूँ। मैं लेकर ही आऊँगा, आप निश्चिंत होइये।"

मंत्री महोदय कुछ परिकर अपने साथ लेकर रतनपुर पहुँचते हैं। कुमार बुद्धिसेन बल्लभपुर के मंत्री महोदय का यथोचित सम्मान करते हैं।

"कुमार! अब आप अपनी जन्मभूमि बल्लभपुर शहर को पवित्र कीजिए। महाराज आपको विशेष याद कर रहे हैं।"

बुद्धिसेन किंचित् मुस्कराकर बोलते हैं—

"मंत्री महोदय! अब बल्लभपुर में हमारे पैर रखने की आवश्यकता ही क्या है ?"

"राजन् ! यद्यपि आप यहाँ पर राज्य का भार सँभाल रहे हैं फिर भी आपके महाराजा साहब आद्योपांत आपकी सारी घटना सुनकर बहुत ही खिन्न हो रहे हैं। वे इस समय आपके वियोग से बहुत ही दुःखी हैं। यदि आप नहीं चलेंगे तो वे निश्चित ही चारों प्रकार के भोजन का त्याग कर देंगे। इसी आदेश के साथ उन्होंने मुझे आपकी सेवा में भेजा है।"

बुद्धिसेन कुछ विचार में पड़ जाते हैं—

"कुमार! अब आप किंचित् भी देरी न कीजिए। महाराज अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं।"

"मंत्री महोदय! मेरा चलना तो असंभव सा ही लगता है चूंकि महाराज यशोधर भी मुझे नहीं छोड़ेंगे।.....अतः आप महाराजश्री से हाथ जोड़कर मेरा नम्र निवेदन कीजिए कि वे समय पाकर एक बार आपसे मिलने अवश्य आवेंगे किन्तु वहाँ रहने की बात तो.....।"

"बुद्धिसेन कुमार! आप महान् बुद्धिमान हैं। आपको इस विषय पर गहराई से सोचना होगा। महाराज साहब ये निर्णय कर चुके हैं कि वे मेरे अकेले वापस पहुँचते ही अन्न-जल का त्याग कर देंगे। इसमें आप बिल्कुल भी शंका न करें।"

3.5.2 बुद्धिसेन से इस संबंध में मनोवती से वार्ता की-

बुद्धिसेन कुमार मंत्री को आश्वासन देकर सीधे अपने महल पहुँचते हैं और प्रिया मनोवती के सामने सारी स्थिति रख देते हैं। मनोवती कहती है—

"स्वामिन्! अब आपको बल्लभपुर चलना ही उचित है।"

"प्रिये! मैं तो किसी भी हालत में जाने को तैयार नहीं हूँ।" हाँ! यदि माता-पिता आदि परिवार के लोग जाते हैं तो मैं रोकूँगा नहीं।"

"प्रियतम! मैं एक बात और कहूँ।"

"कहिए।"

"यहाँ पर आपको रहना कथमपि श्रेयस्कर नहीं है। देखिये! यहाँ पर सभी लोग आपको राजजमाई के नाम से ही जानते हैं। आपके पिता का नाम यहाँ नहीं चल सकता है अतः आपको अपने ही देश में चलकर अपने पिता का नाम चलाना चाहिए। ससुराल के कुल में अपनी प्रसिद्धि पाने वाले....क्या उत्तम पुरुष माने जाते हैं ?"

3.5.3 बुद्धिसेन ने सपरिवार बल्लभपुर जाने का निर्णय किया—

बुद्धिसेन कुमार सोचने लगते हैं कि बिल्कुल सच बात है। हस्तिनापुर में इसके द्वारा रोकने के आग्रह में मैंने यही हेतु उपस्थित किया था और ससुराल में रहकर अपने पिता के नाम को डुबोना उचित नहीं समझा था और अब.....यहाँ पर भी तो वही बात है अतः अब बल्लभपुर जाना ही उचित है।

"ठीक है, प्रियतमे! आपने उचित सलाह दी है। अब मैं पिताजी से मिलकर सारी स्थिति का दिग्दर्शन कराके राजा से आज्ञा लेने जाऊँगा।"

बुद्धिसेन पिता आदि को मंत्री के आने का समाचार सुनाकर उनसे मिलान करा देते हैं पुनः आप दरबार में पहुँचकर महाराज की विनय करके बैठ जाते हैं—

"महाराज! हमारे बल्लभपुर से मंत्री महोदय हमें लिवाने के लिए आये हैं, सो आप अब हमें अपने देश जाने की आज्ञा दीजिए।"

"कुमार! आपने आज ऐसी बात कही सो अब कभी नहीं कहना, क्या हम आपके बिना रह सकते हैं ?"

"महाराज! मंत्री ने ऐसा कहा कि मेरे न पहुँचने से महाराजा मरुदत्त अन्न-जल का त्याग कर देंगे.....अब हम लाचार हैं आप ही.....जैसा आदेश करेंगे, वैसा होगा।"

"ओह! यह क्या ?"

3.5.4 महाराज यशोधर ने दुखी मन से दी आज्ञा-

महाराज यशोधर कुछ देर सोचकर अंत में यह समझ लेते हैं कि अब इन्हें भेजना ही पड़ेगा ? सच है.....ऐसे पुण्यात्मा नररत्न को भला कौन छोड़ सकता है ? यह उसी बल्लभपुर का ही तो रत्न है। बाद में दीर्घ निःश्वास लेकर बोलते हैं—

"कुमार! जब राजा का ऐसा कठोर प्रण है, तब तो हमें आपको भेजना ही पड़ेगा।"

उसी क्षण वहाँ पर मंत्री महोदय आकर स्वयं राजा से सारी बातों का निवेदन करके उन सभी के प्रस्थान हेतु उत्तम मुहूर्त निश्चित करते हैं। महाराज यशोधर अपनी गुणवती कन्या को यथायोग्य शिक्षा देते हैं और कहते हैं—

"बेटी! तुम मनोवती को अपनी बड़ी बहन समझो। वह बुद्धि में, वय में, धर्मकार्य में और पद में तुमसे बड़ी है और पतिदेव को सर्वस्व समझो। सास, ससुर, जेठानी की सेवा करो। प्रत्यक्ष में मनोवती द्वारा प्राप्त किये गये धर्म के फल को देखकर धर्म में सदैव मन लगावो।"

अनन्तर महाराज यशोधर ने कुमार को बहुत सा द्रव्य, बहुत से हाथी, घोड़ा आदि सेना देकर विदाई समारोह किया। आप स्वयं अपने मंत्रीगण तथा नागरिक जनों के साथ सपरिवार कुमार को कुछ दूर पहुँचाने गये। गाजे-बाजे की ध्वनि से एक बार फिर शहर में महामहोत्सव दिखने लगा। सभी ने कुमार के गमन में अपने को दुःखी मानते हुए भरे हुए हृदय से विदाई दी और पुनः कभी वापस आने के लिए बार-बार प्रार्थना की।

कुमार बुद्धिसेन अपने पिता-माता, भाई-भावज और उभय भार्याओं के साथ तथा बहुत बड़ी सेना के साथ प्रस्थान करके रतनपुर के उसी बगीचे में आकर ठहर गये कि जहाँ पहले ठहरे थे। रात्रि विश्राम करके प्रातः नित्य-क्रिया से निवृत्त होकर शहर के लोगों से यथोचित वार्तालाप करके प्रेम से उन्हें विदा करके बल्लभपुर शहर का मार्ग पकड़ा और रास्ते में जगह-जगह पड़ाव डालते हुए बल्लभपुर के निकट बगीचे में पहुँच गये।

3.5.5 बल्लभपुर नरेश ने सभी का किया भव्यतापूर्ण स्वागत—

बल्लभपुर नरेश ने जैसे ही सुना, मंत्री महोदय साथ में बुद्धिसेन को बड़ी धूमधाम से लेकर आ रहे हैं, तो शहर में घोषणा कर दी कि हमारे साथ स्वागत के लिए सारे नागरिक स्त्री-पुरुष एकत्रित हो जावें। दूसरे दिन प्रातःकाल महाराज स्वयं सभी लोगों के साथ बगीचे में पहुँचते हैं और हाथी से उतरकर पैदल चलकर कुमार बुद्धिसेन के सामने आते हैं।

बुद्धिसेन भी राजा को सन्मुख आते हुए देखकर जल्दी से उठ खड़े होकर आगे बढ़कर राजा को प्रणाम करते हैं। राजा भी उन्हें तत्क्षण ही हृदय से लगा लेते हैं पुनः हेमदत्त सेठ से मिलते ही उनके नेत्र सजल हो जाते हैं—

"सेठ हेमदत्त! मेरे निमित्त से तुमने कितने संकटों का सामना किया है। हाय! कैसे-कैसे दुःख झेलकर तुमने अपने पुत्र को वापस पाया है। अब मेरे अपराध को क्षमा कर दो। कुमार बुद्धिसेन! मेरे निमित्त से ही तो तुम्हें देश निर्वासन का कठोर दुःख भोगना पड़ा। अब तुम भी मेरे अपराध को क्षमा करो।"

"महाराज! आपका इसमें क्या दोष है ? मेरे ही संचित कर्मों का फल मैंने भोगा है।"

सेठ हेमदत्त बोलते हैं—

"महाराज! मैंने उस समय असत्य भाषण करके एक अपराध किया फिर निरपराधी पुत्र को निकाल कर दूसरा अपराध किया। अनंतर तृतीय अपराध में बहू की प्रतिज्ञा की निंदा करके जो पाप कमाया, वह सब एक साथ उदय में आ गया।.....अस्तु अब हम सब इस बहू की प्रतिज्ञा के प्रसाद से ही पुनः इतने ऊँचे उन्नति शैल पर चढ़कर आपसे पहले जैसी स्थिति तो.....क्या ? उससे अधिक उत्तम स्थिति में मिल रहे हैं।"

3.5.6 राजा मरुदत्त ने मनोवती की दर्शन प्रतिज्ञा को सराहा—

राजा मरुदत्त मनोवती को देखकर उसे पुत्रीवत् हृदय से लगाकर माथे पर हाथ फेरकर कहते हैं—

"बेटी! तू धन्य है! तेरा जीवन धन्य है! और तेरी धर्म की श्रद्धा धन्य है! तूने साक्षात् धर्म का चमत्कार, धर्म का अचिन्त्य प्रभाव प्रत्यक्ष में ही सबको दिखा दिया है।"

इस तरह सबसे मिलकर महाराज सबको बड़े उत्सव के साथ बल्लभपुर में प्रवेश कराते हैं। पहले अपने राजभवन में ले जाकर विशेष सत्कार कर भोजन आदि कराते हैं। वस्त्रालंकार भेंट करते हैं। अनंतर राजा मरुदत्त चौथाई राज्य प्रमाण देश कुमार को भेंट रूप में देकर राजा बना देते हैं। सेठ हेमदत्त की गिरवी रखी हुई हवेली को मंत्री ने पहले से ही खाली कराकर उसे खूब सजाकर सुन्दर बनाई थी। दूसरे दिन कुमार बुद्धिसेन सपरिवार पहले जिनमंदिर में जाकर जिनदर्शन- पूजन आदि करके पुनः राजा की आज्ञा से अपने महल में प्रवेश करते हैं। आगे-आगे सेठ हेमदत्त हैं, पीछे से सेठानी हेमश्री अपने सभी सातों पुत्र और आठों बहुओं को तथा अनेकों पौत्र सभी पौत्रियों को साथ लिये हुए प्रवेश

करती हैं। घर में सर्वत्र मंगलमय वातावरण है। जिधर देखो, उधर रत्नों की जगमगाहट, मोतियों की मालाएं और सुन्दर-सुन्दर तोरण बंधे हुए हैं। सर्वत्र राजमहल की शोभा छिटक रही है।

3.5.7 प्रजा ने भी मनोवती की दर्शन प्रतिज्ञा की सराहना की, सभी ने नियम-व्रत ग्रहण किए—

बहू मनोवती के घर में पैर रखते ही जो महल के बगीचे सूखे थे, हरे-भरे हो गये हैं। सूखे सरोवरों में ऊपर तक पानी लहरें ले रहा है, कमल खिल रहे हैं और हंस मिथुन क्रीड़ा कर रहे हैं। शहर के नर-नारी चारों तरफ से आ रहे हैं। सबसे मिलकर सभी लोग अपार हर्ष का अनुभव कर रहे है। सेठ हेमदत्त का मन-मयूर खुशी से नाच रहा है और सेठानी हेमश्री अपने भाग्य की सराहना कर रही हैं। धनदत्त आदि सभी पुत्र, धनश्री आदि सभी पुत्र-वधुएं कुमार बुद्धिसेन और मनोवती के धर्म की श्रद्धा को, उसके फल को देखते हुए हर्ष विभोर हो रहे हैं।

स्थानीय नर-नारी आपस में चर्चा कर रहे हैं—

"भाई! देखो तो सही, इस मनोवती ने पूर्व जन्म में कितना पुण्य किया होगा! जो कि एक वर्ष में ही इतना वैभव, इतना सुयश प्राप्त कर लिया।"

"नहीं बंधु! आपको मालूम नहीं है इसने इस जन्म में ही अपनी दर्शन प्रतिज्ञा के बल से इतना वैभव और सुयश पाया है और फिर जिनमंदिर का निर्माण कराके अनंत पुण्य संचित करके अपने संसार की परम्परा को भी समाप्त ही कर दिया.....समझो।"

"मित्र! अभी-अभी रतनपुर में महामहोत्सव में क्या आपने महामुनि का उपदेश नहीं सुना था ? वे बता रहे थे कि इसने ब्याह के बाद एक पक्ष के अन्दर ही प्रतिज्ञा के बल से देवों द्वारा उपकार और महान सुख सम्पत्ति प्राप्त कर ली.....और बंधु! इनके ससुर आदिकों ने धर्म की निंदा से छह महीने के अंदर ही असंख्य दु:ख झेले हैं।"

"हाँ भाई! उस उपदेश को सुनकर तो मैं समझता हूँ कि सभी यात्रियों ने ही जिनदर्शन और जिनधर्मसंबंधी कुछ न कुछ नियम अवश्य ही ले लिया है। मैंने भी तो नियम लिया है कि प्रतिदिन श्री जी के चरण सानिध्य में श्रीफल चढ़ाकर ही भोजन करूँगा।

"बहन! वहाँ रतनपुर में तो सभी ने धर्मरत्न को ही लूट लिया है।"

"बहन ? तुमने क्या नियम लिया है ?"

"मैं तो प्रतिदिन मुनि को आहारदान देकर ही भोजन करूँगी और तुमने ?....."

"मैंने तो प्रतिदिन उत्तम-उत्तम अंगूर, आम्र, अनार आदि फलों से पूजा करने का नियम लिया है।"

"बहन! बहुतों ने बेला, पारिजात आदि पुष्प चढ़ाने का, बहुतों ने कमल आदि पुष्पों को चढ़ाने का, बहुतों ने सुवर्ण पुष्पों के समर्पण करने का एवं बहुतों ने प्रतिदिन लवंग, इलायची आदि चढ़ाने का, बहुतों ने अपने पुण्य वैभव के अनुसार रत्न चढ़ाने का नियम किया है तथा बहुतों ने गजमोती चढ़ाने का ही नियम लिया है।"

"क्या बताऊँ बहन! किसी ने वहाँ अणुव्रत लिए, किसी ने रात्रि भोजन त्याग व्रत, किसी ने पुष्पांजलि, मुक्तावली आदि व्रत ग्रहण किये हैं। सच है, बिना नियम के यह मनुष्य जीवन व्यर्थ ही है इसलिए कुछ न कुछ नियम अवश्य लेना ही चाहिए।"

"और फिर जब प्रत्यक्ष में प्रतिज्ञा का फल अतिशय रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है, तब तो दृढ़ श्रद्धानपूर्वक जिनदर्शन की प्रतिज्ञा लेकर अपना संसार स्वल्प कर लेना ही चाहिए।"

"हाँ हाँ, बहन! यह जिनदर्शन ही तो एक दिन अपनी आत्मा का दर्शन कराकर अपने अन्दर ही परमानन्दमय परमात्मा को प्रकट कराने वाला है.....।"

3.6 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-मनोवती ने बुद्धिसेन को क्या बनवाने को कहा ?

(क) जिनमंदिर ☐
(ख) राजमहल ☐
(ग) इनमें से कोई नहीं ☐

प्रश्न 2-हेमश्री, मनोवती की कौन थी ?

(क) दासी ☐
(ख) सास ☐
(ग) माता ☐

प्रश्न 3-महाराज यशोधर की पुत्री का क्या नाम था ?

(क) गुणवती ☐
(ख) मनोवती ☐
(ग) इनमें से कोई नहीं ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-जब बुद्धिसेन के माता-पिता (परिवार) गरीब हो गये, तो वे कहाँ आकर क्या करने लगे ?

प्रश्न 2-हेमश्री ने रानी मनोवती से ऐसा क्या कहा कि उसे महल से निकाल दिया गया ? पुनः घर पर पति-पुत्रादि को सारी घटना ज्ञात होने पर उन्होंने उसके साथ क्या व्यवहार किया ?

प्रश्न 3-बुद्धिसेन और उनके माता-पिता आदि को मिलाने के लिए मनोवती ने बुद्धिसेन से कड़े शब्दों में क्या कहा ?

प्रश्न 4-जिनमन्दिर की प्रतिष्ठा के समय महाराजा यशोधर ने सौधर्म इन्द्र और शचि इन्द्राणी किसे बनाया ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-बल्लभपुर नरेश राजा मारिदत्त को सेठ हमेदत्त, बुद्धिसेन और मनोवती आदि के साथ घटे सम्पूर्ण वृतान्त की जानकारी होने पर उन्होंने क्या किया ? सम्पूर्ण घटना का सविस्तार वर्णन कीजिए ?

इकाई–3 तीर्थंकर की धर्मसभा-समवसरण

(**नोट**–यहाँ प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के समवसरण का वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है। इसी प्रकार से समस्त तीर्थंकरों के समवसरण का वर्णन जानना चाहिए। मात्र तीर्थंकर के शरीर की अवगाहना के अनुसार उनके समवसरणों के विस्तार में अन्तर होता है।)

इस इकाई में मुख्यरूप से निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया गया है—

(1) समवसरण रचना का प्रारंभिक स्वरूप

(2) समवसरण की आठ भूमियाँ

(3) समवसरण की अन्य विशेषताएँ

पाठ 1–समवसरण रचना का प्रारंभिक स्वरूप

-मंगलाचरण-

प्रभोः ऋषभदेवस्य, समवादिसृतिर्भुवि।
श्रीविहारोऽपि देवस्य, सर्वमंगलकारणम्।।

1.1 भगवान ऋषभदेव को दिव्य केवलज्ञान की प्राप्ति–

भगवान ऋषभदेव ने पुरिमतालपुर के उद्यान में ध्यान के बल से जब घातिया कर्मों पर विजय प्राप्त कर ली तब उसी क्षण उन्हें केवलज्ञान प्रगट हो गया। तत्क्षण ही तीनों लोकों में आनंद की लहर छा गई। भगवान पृथ्वी से अधर आकाश में दो हजार हाथ ऊपर पहुँच गये। भगवान को वटवृक्ष के नीचे केवलज्ञान हुआ था, आज वह 'प्रयाग' (इलाहाबाद) में विद्यमान हैं।

उसी क्षण स्वर्गों में कल्पवासी देवों के यहाँ अपने आप बिना बजाये घंटे बजने लगे, ज्योतिषी देवों के यहाँ सिंहनाद होने लगा, व्यंतर देवों के घरों में भेरी बजने लगीं और भवनवासी देवों के यहाँ शंख ध्वनि होने लगी।

तभी समस्त इंद्रों के आसन कंपायमान हो गये, इंद्रों के मुकुट स्वयमेव झुक गये। कल्पवृक्षों से अपने आप पुष्प बरसने लगे और देवों के हाथी सूंड में कमल उठाकर ऊपर करके नाचने लगे। सभी दिशाएँ स्वच्छ हो गईं और मंद-सुगंध पवन चलने लगी।

सौधर्म इन्द्र ने तत्क्षण ही अवधिज्ञान से जान लिया कि 'भगवान ऋषभदेव' को केवलज्ञान प्रगट हो गया। तभी उसने सिंहासन से उतरकर सात पैंड आगे बढ़कर परोक्ष से ही भगवान को नमस्कार किया और कुबेर को आज्ञा दी—

हे धनपते! तुम शीघ्र ही पुरिमतालपुर के उद्यान में पहुँचकर भगवान ऋषभदेव के समवसरण की रचना कर दो। कुबेर ने उसी समय अर्धनिमिष में आकाश में अधर समवसरण की रचना कर दी। उस समवसरण में भगवान कमलासन पर चार अंगुल अधर विराजमान हो गये।

1.1.1 सौधर्म इन्द्र का आगमन—अनन्तर सौधर्मेन्द्र ने भगवान का केवलज्ञान महोत्सव मनाने के लिए मध्यलोक में चलने के लिए देवों को आज्ञा दी। तभी प्रस्थान काल की सूचना देने के लिए जोर-जोर से नगाड़े बजाये गये। उसी क्षण 'बलाहक' नाम के देव ने एक 'कामग' नाम का विमान बनाया और आभियोग्य जाति के देवों में मुख्य ऐसे 'नागदत्त' नाम के देव ने विक्रिया ऋद्धि से एक 'ऐरावत' नाम का हाथी बनाया। इस हाथी का वर्ण सफेद था।

उस ऐरावत हाथी के बत्तीस मुख थे, प्रत्येक मुख में आठ-आठ दाँत थे, एक-एक दाँत पर एक-एक सरोवर था, एक-एक सरोवर में एक-एक कमलिनी थी, एक-एक कमलिनी में बत्तीस-बत्तीस कमल थे, एक-एक कमल में

बत्तीस-बत्तीस दल थे। इन लंबे-लंबे दलों पर बत्तीस-बत्तीस अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं।

सौधर्म इन्द्र अपनी इन्द्राणी और ऐशान इंद्र के साथ-साथ ऐसे ऐरावत हाथी पर बैठकर चल पड़ा। उसी समय सभी इन्द्रगण व देवगण अपने-अपने परिवारदेव व देवियों के साथ अपने-अपने वाहनों में बैठकर इन्द्र के साथ निकल पड़े। उस समय इन्द्र के सामने भी अनेक देव अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं और किन्नरी देवियाँ श्रीऋषभदेव के विजय गीत गा रही थीं। ऐसे बत्तीस इंद्रों की सेनाएँ उस समय ध्वजा, छत्र, चंवर आदि से विभूषित हुई आकाश मंडल में छा गई थीं।

सबसे आगे किल्विषक जाति के देव जोर-जोर से सुंदर नगाड़े बजा रहे थे। उनके पीछे इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक और प्रकीर्णकजाति के देव अपने-अपने वाहनों पर आरूढ हो सौधर्मेन्द्र के पीछे-पीछे चल रहे थे। उस समय अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं, गंधर्वदेव बाजे बजा रहे थे और किन्नरी जाति की देवियाँ भगवान के गुणानुवादरूप गीत गा रही थीं।

1.1.2 इन्द्र आदि देवों के संक्षिप्त लक्षण —

इन्द्र — जो अन्य देवों में नहीं पाये जाने वाले ऐसे आज्ञा, ऐश्वर्य आदि गुणों से सहित हैं, वे 'इन्द्र' हैं।

सामानिक — जो आज्ञा और ऐश्वर्य के बिना अन्य गुणों से इन्द्र के समान हैं और इन्द्र भी जिसे बड़ा मानते हैं, वे 'सामानिक' हैं।

त्रायस्त्रिंश — जो पुरोहित, मंत्री और अमात्यों के समान होते हैं उन्हें 'त्रायस्त्रिंश' कहते हैं। ये संख्या में तेंतीस-तेंतीस ही इन्द्रों की सभा में होते हैं।

पारिषद — जो इन्द्र की सभा में उपस्थित रहते हैं और इन्द्र का उन पर अतिशय प्रेम रहता है, वे 'पारिषद' हैं।

आत्मरक्ष — जो देव अंगरक्षक के समान इन्द्र के चारों ओर तलवार लेकर घूमते रहते हैं वे 'आत्मरक्ष' हैं। यद्यपि इन्द्र को स्वर्ग में कुछ भी भय नहीं रहता है फिर भी ये इन्द्र का वैभव दिखलाने के लिए ही वहाँ रहते हैं।

लोकपाल — जो दुर्गरक्षक के समान स्वर्गलोक की रक्षा करते हैं, वे 'लोकपाल' हैं।

अनीक — जो सेना के समान हैं, वे 'अनीक' हैं। इनके सात भेद हैं — हाथी, घोड़े, रथ, पदाति, बैल, गंधर्व और नर्तकी। ये सात प्रकार के देवों की सेनाएँ हैं।

प्रकीर्णक — नगर तथा देशों में रहने वालों के समान जो देव हैं, वे 'प्रकीर्णक' कहलाते हैं।

आभियोग्य — जो नौकर-चाकरों के समान हैं, वे 'आभियोग्य' देव हैं।

किल्विषक — और जो इन्द्र की सभा से बाहर रहते हैं, वे 'किल्विषक' कहलाते हैं।

इस तरह स्वर्गों में दश प्रकार के देव होते हैं।

स्वर्ग में हाथी, बैल आदि पशु हंस, तोते आदि पक्षी नहीं होते हैं। वहाँ पर वे देव ही विक्रिया से पशु-पक्षियों के रूप बनाते हैं।

यहाँ पर जो अल्प पुण्य करते हैं, या तपस्वी साधु आदि बड़ों का अपमान करते हैं अथवा व्रतों में दूषण लगाते हैं, गुरु की आज्ञा उल्लंघन कर स्वच्छंद प्रवृत्ति करते हैं इत्यादि कारणों से ही मनुष्य अल्पपुण्य से मरकर देवगति में पहुँच जाते हैं किन्तु वहाँ पर आभियोग्य या किल्विषक देवों में जन्म ले लेते हैं, ऐसा समझना।

1.1.3 तीर्थंकर भगवान तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ हैं-

ऐसे असंख्य वैभव से सहित इन्द्र भी जिनकी सेवा करते हैं ऐसे जिनेन्द्र भगवान श्री ऋषभदेव तीनों लोकों में श्रेष्ठ माने गये हैं।

अथवा यों कहिये कि सौधर्मेन्द्र आदि सौ इन्द्रों से वंदित होने से ही भगवान तीर्थंकर श्रेष्ठ माने गये हैं।

अथवा इन्द्रों द्वारा भक्ति की जाने से, समवसरण सभा के रचे जाने से और किंकर बनकर व्यवस्था करते रहने से ही भगवान सर्वश्रेष्ठ गिने गये हैं।

श्री मानतुंगस्वामी ने कहा भी है—

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र! धर्मोपदेशन विधौ न तथा परस्य।
यादृक् प्रभा दिनकृतः प्रहतांधकारा, तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकासिनोऽपि।

हे जिनेन्द्रदेव! धर्म के उपदेश के समय समवसरण में जैसी आप की विभूति थी, वैसी अन्य किसी की नहीं हो सकती है। सो सच ही है-जैसी प्रभा सूर्य की होती है जो कि अंधकार को दूर कर देती है, वैसी प्रभा ग्रह, नक्षत्र, ताराओं की नहीं हो सकती है।

1.1.4 सौधर्म इन्द्र ने किए समवसरण के दर्शन—

इन्द्र ने ऐरावत हाथी पर बैठकर स्वर्ग से प्रयाण कर अर्धनिमिष में मध्यलोक में आकर भगवान ऋषभदेव के समवसरण को दूर से ही देखा।

यह बारह योजन—छ्यानवे मील का विस्तृत गोलाकार था और इन्द्रनील मणि से बना हुआ था।

इसको घेरकर चारों ओर पंचवर्णी रत्नों से निर्मित 'धूलिसाल' नाम का परकोटा था।

अहो! जिस समवसरण की रचना का सूत्रधार स्वयं इन्द्र था, उस समवसरण का वर्णन भला कौन कर सकता है ?

इस समवसरण में अनेक नाट्यशालाएँ बनी हुई थीं, जहाँ देवांगनाएँ भगवान के गुणों का गान करते हुए नृत्य करती रहती थीं। अनेक सुंदर उपवन-बगीचे थे जो नंदनवन से भी अधिक सुंदर थे, अनेक बावड़ियाँ थीं, अनेक स्तूप ऐसे थे जो मध्यलोक, स्वर्गलोक, तीनलोक आदि की रचनाओं को दिखला रहे थे। जगह-जगह नवनिधियाँ थीं जो सभी को इच्छित फल देने वाली थीं। इसी प्रकार कल्पवृक्षों से, अनेक ध्वजाओं से इसकी सुंदरता ऐसी अद्भुत थी कि तीन लोक में भी ऐसी दर्शनीय वस्तुएँ मिलना असंभव था।

यह सभी वैभव सभी जीवों के मन को हरण करने वाला था।

यही कारण है कि आज भी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, कल्पद्रुम विधान आदि धार्मिक कार्यक्रमों में अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम-धार्मिक नाटक, भजन, नृत्य आदि आयोजित किये जाते हैं जो कि लोगों का मनोरंजन भी करते हैं और धर्म में प्रीति एवं पापों से भय भी उत्पन्न कराते हैं।

अब यहाँ संक्षेप में तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ के आधार से समवसरण का वर्णन करते हैं—

1.2 समवसरण रचना—

समवसरण के वर्णन में इक्तीस प्रकरण अधिकार जानने योग्य हैं-1. सामान्य भूमि का प्रमाण 2. सोपानों का प्रमाण 3. विन्यास 4. वीथी 5. धूलिसाल कोट 6. चैत्यप्रासाद भूमि 7. नृत्यशाला 8. मानस्तंभ 9. वेदी 10. खातिकाभूमि 11. वेदी 12. लताभूमि 13. साल 14. उपवनभूमि 15. नृत्यशाला 16. वेदी 17. ध्वजाभूमि 18. साल 19. कल्पभूमि 20. नृत्यशाला 21. वेदी 22. भवनभूमि 23. स्तूप 24. साल 25. श्रीमंडपभूमि 26. ऋषि आदि द्वादशगणों का विन्यास 27. वेदी 28. प्रथम कटनी 29. द्वितीय कटनी 30. तृतीय कटनी 31. गंधकुटी का प्रमाण।

अथवा सरलता से समझने के लिए इसमें चार परकोटे, पाँच वेदियाँ, आठ भूमियाँ एवं तीन कटनी हैं। तीसरी कटनी पर गंधकुटी है। इसमें भी आठ भूमियों को समझ लेने से सब समझ में आ जाता है।

1.2.1 सामान्य भूमि— सामान्यरूप से यह समवसरण भूमि गोल है, आकाश में अधर है, इन्द्रनीलमणिमयी है और बारह योजन प्रमाण है। इसके आगे भगवान अजितनाथ से लेकर भगवान नेमिनाथपर्यन्त आधा-आधा योजन अर्थात् दो-दो कोश कम होती गई है तथा पार्श्वनाथ एवं महावीर भगवान की योजन के चतुर्थ भाग—एक-एक कोश कम थी। यह जो सामान्य भूमि का प्रमाण बतलाया है, वह अवसर्पिणी काल के तीर्थंकरों की समवसरण भूमि का है।

उत्सर्पिणी काल में इससे विपरीत है। विदेह क्षेत्र के सभी तीर्थंकरों की समवसरण भूमि का प्रमाण बारह योजन ही है क्योंकि वहाँ हमेशा चतुर्थकाल के प्रारंभ जैसी ही कर्मभूमि की व्यवस्था रहती है।

1. भगवान ऋषभदेव का समवसरण	12 योजन (96 मील)
2. भगवान अजितनाथ का समवसरण	11 (1/2 योजन) (92 मील)
3. भगवान संभवनाथ का समवसरण	11 योजन (88 मील)
4. भगवान अभिनंदननाथ का समवसरण	10 1/2 योजन (84 मील)
5. भगवान सुमतिनाथ का समवसरण	10 योजन (80 मील)
6. भगवान पद्मप्रभु का समवसरण	9 1/2 योजन (76 मील)
7. भगवान सुपार्श्वनाथ का समवसरण	9 योजन (72 मील)
8. भगवान चंद्रप्रभु का समवसरण	8 1/2 योजन (68 मील)
9. भगवान पुष्पदंतनाथ का समवसरण	8 योजन (64 मील)
10. भगवान शीतलनाथ का समवसरण	7 1/2 योजन (60 मील)
11. भगवान श्रेयांसनाथ का समवसरण	7 योजन (56 मील)
12. भगवान वासुपूज्यनाथ का समवसरण	6 1/2 योजन (52 मील)
13. भगवान विमलनाथ का समवसरण	6 योजन (48 मील)
14. भगवान अनंतनाथ का समवसरण	5 1/2 योजन (44 मील)
15. भगवान धर्मनाथ का समवसरण	5 योजन (40 मील)
16. भगवान शांतिनाथ का समवसरण	4 1/2 योजन (36 मील)
17. भगवान कुंथुनाथ का समवसरण	4 योजन (32 मील)
18. भगवान अरनाथ का समवसरण	3 1/2 योजन (28 मील)
19. भगवान मल्लिनाथ का समवसरण	3 योजन (24 मील)
20. भगवान मुनिसुव्रतनाथ का समवसरण	2 1/2 योजन (20 मील)
21. भगवान नमिनाथ का समवसरण	2 योजन (16 मील)
22. भगवान नेमिनाथ का समवसरण	1 1/2 योजन (12 मील)
23. भगवान पार्श्वनाथ का समवसरण	1 1/4 योजन (10 मील)
24. भगवान महावीर का समवसरण	1 योजन (8 मील)

1.2.2 सोपान रचना — यह समवसरण इस भूमितल से 50 धनुष अर्थात् 200 हाथ ऊँचाई पर रहता है अतः पृथ्वी तल से एक हाथ ऊपर से सीढ़ियाँ शुरू हो जाती हैं। देव, मनुष्य और तिर्यंचों के चढ़ने के लिए आकाश में चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में ऊपर-ऊपर, एक-एक हाथ ऊँची ऐसी सुवर्णमयी बीस हजार सीढ़ियाँ बनी हुई हैं।

समवसरण का ऐसा माहात्म्य है कि अंधे, लंगड़े, लूले, बालक, वृद्ध, युवा, बीमार आदि सभी जन इन सीढ़ियों को अंतर्मुहूर्त — 48 मिनट में ही पार कर जाते हैं।

1.2.3 विन्यास — इस समवसरण में चार कोट, पाँच वेदियाँ, इनके बीच में आठ भूमियाँ थीं, पुनः तीन कटनी थीं।

समवसरण में चारों दिशाओं में वीथी — गलियाँ बनी थीं, ये गलियाँ दो-दो कोश विस्तार वाली हैं। यह वीथियों का प्रमाण श्री ऋषभदेव के समवसरण का है।

आठों भूमियों के मूल में वज्रमय कपाटों से सुशोभित एवं देव, मनुष्य और तिर्यंचों के गमनागमन से सहित ऐसे बहुत से तोरणद्वार बने हुए थे।

1.2.4 धूलिसाल परकोटा—इस समवसरण भूमि में, जो कि आकाश में अधर है उसमें सबसे बाहर 'धूलिसाल' नाम का परकोटा है। यह पंचवर्णी रत्नों से निर्मित है, इसमें मार्ग बने हैं, अट्टालिकाएँ हैं और पताकाएँ फहरा रही हैं। इस परकोटे में पूर्व आदि दिशाओं में क्रम से विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित नाम के चार गोपुर द्वार होते हैं। ये द्वार तीन खन के थे और मणिमय माला आदि से सुंदर सजे हुए थे।

प्रत्येक 'गोपुर' के बाहर और मध्य भाग में द्वार के दोनों पार्श्व भागों में आठ मंगल द्रव्य, नवनिधियाँ रखी रहती हैं। बहुत पुत्तलिकाएँ बनी हुई थीं जिनके मस्तक पर धूपघट रखे हुए थे। इन धूपघटों में हमेशा अग्नि जलती रहती थी व देवगण धूप खेया करते थे।

1.2.5 अन्य वर्णन—

मंगलद्रव्य—झारी, कलश, दर्पण, चामर, ध्वजा, व्यजन, छत्र और सुप्रतिष्ठ ये आठ मंगलद्रव्य प्रत्येक 108-108 वहाँ रहते हैं।

नवनिधियाँ—काल, महाकाल, पांडु, माणवक, शंख, पद्म, वैडूर्य, पिंगल और नानारत्न ये नवनिधियाँ प्रत्येक 108-108 समवसरण में रहती हैं। ये काल आदि निधियाँ क्रम से ऋतु के योग्य द्रव्य, (मालादिक) भाजन, धान्य, आयुध, वादित्र, वस्त्र, महल, आभूषण और संपूर्ण रत्नों को देती हैं।

एक-एक पुतली के मस्तक पर एक-एक धूपघट रहता है[1]।

नाट्यशालाएँ—इन गोपुर द्वारों के बीच दोनों पार्श्वभागों में नाट्यशालाएँ बनी थीं, रत्नों से निर्मित इन नाट्यशालाओं में हमेशा देवांगनाएँ नृत्य करती रहती थीं।

इस धूलिसाल कोट की ऊँचाई भगवान ऋषभदेव की ऊँचाई से चौगुनी थी। इसके तोरणों की ऊँचाई चौगुनी परकोटे की ऊँचाई से अधिक थी एवं गोपुर द्वारों की ऊँचाई उनसे भी अधिक थी।

द्वाररक्षक देव—इस धूलिसाल के चारों गोपुरद्वारों पर उत्तम दण्डरत्नों को हाथ में लेकर ज्योतिषी देव द्वाररक्षक थे।

1.3 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-भगवान आदिनाथ के केवलज्ञान वृक्ष का नाम ?

(क) वटवृक्ष ☐ (ख) जम्बूवृक्ष ☐ (ग) शाल्मलि वृक्ष ☐

प्रश्न 2-भगवान आदिनाथ का समवसरण सर्वप्रथम कहाँ रचा गया ?

(क) अयोध्या ☐ (ख) पुरिमतालपुर ☐ (ग) अष्टापद ☐

प्रश्न 3-जो नौकर-चाकरों के समान हैं, वे.....देव कहलाते हैं ?

(क) किल्विषक ☐ (ख) प्रकीर्णक ☐ (ग) आभियोग्य ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-भगवान ऋषभदेव को केवलज्ञान कहाँ पर हुआ ? केवलज्ञान के पश्चात् भगवान पृथ्वी से कितने ऊपर पहुँच गए ?

प्रश्न 2-'इन्द्र' और सामानिक देवों को परिभाषित कीजिए ?

प्रश्न 3-कैसे कार्य करने से यह जीव 'आभियोग्य' या 'किल्विषक' देवों में जन्म लेता है ?

प्रश्न 4-समवसरण के वर्णन में जो इकतीस प्रकरण अधिकार जानने योग्य हैं, उनमें से किन्हीं पाँच के नाम लिखिए ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-ऋषभदेवादि चौबीसों तीर्थंकरों के समवसरण का विस्तार बताइए ?

पाठ-2 – समवसरण की आठ भूमियाँ

आठ भूमियाँ समवसरण में — 1. चैत्यप्रासाद भूमि 2. खातिका भूमि 3. लताभूमि 4. उपवनभूमि 5. ध्वजाभूमि 6. कल्पभूमि 7. भवनभूमि 8. श्रीमंडपभूमि ये आठ भूमियाँ मानी हैं।

2.1 चैत्यप्रासादभूमि —

धूलिसाल के अभ्यंतर भाग में चारों तरफ से वेष्टित ऐसी प्रथम चैत्यप्रासादभूमि है। इसमें एक-एक जिनमंदिर ऊँचे-ऊँचे बने थे और एक-एक मंदिर के अन्तराल में पाँच-पाँच प्रासाद बने थे। ये नाना प्रकार के उद्यान, बावड़ी, कूप आदि से मनोहर थे। इन जिनमंदिरों की और देवप्रासादों की ऊँचाई तीर्थंकर ऋषभदेव की ऊँचाई से बारहगुनी मानी है।

2.1.1 नाट्यशालाएँ — इस प्रथमभूमि में चारों तरफ गलियों में दोनों पार्श्वभागों में सुवर्ण-रत्नों से निर्मित दो-दो नाट्यशालाएँ बनी रहती हैं। प्रत्येक नाट्यशाला में बत्तीस रंगभूमियाँ हैं और एक-एक रंगभूमि में बत्तीस-बत्तीस भवनवासिनी देवांगनाएँ तीर्थंकरों के विजयगीत गाती हुई नृत्य करती रहती हैं और पुष्पांजलि क्षेपण करती हैं। प्रत्येक नाट्यशाला में नाना प्रकार की सुगंधि से युक्त दो-दो धूपघट रहते हैं।

2.1.2 मानस्तंभ — प्रथम पृथिवी के बहुमध्यभाग में चारों गलियों के बीचों-बीच मानस्तंभ भूमियाँ हैं। इन मानस्तंभ भूमि के चारों तरफ गोपुर द्वारों से सहित परकोटा है। इसके मध्य वनखंड हैं। इनके मध्य पूर्व आदि दिशाओं में क्रम से 'सोम, यम, वरुण और कुबेर' इन लोकपालों से सुंदर क्रीड़ानगर बने रहते हैं। इसके अभ्यंतर भाग में 'कोट' है उसके आगे वन वापिकाएँ हैं जिनमें कमल खिले रहते हैं। उनके बीच में अपनी-अपनी दिशा और विदिशाओं में भी दिव्य क्रीड़नपुर बने रहते हैं। उनके अभ्यंतर भाग में चार गोपुरों से सहित तीसरा 'कोट' है।

इसके बीच में अर्थात् तीन परकोटों में से अभ्यंतर कोट के बीच में मानस्तंभ के लिए प्रथम, द्वितीय और तृतीय पीठ अर्थात् तीन कटनी बनी हुई हैं।

प्रथम कटनी वैडूर्यमणिमय, द्वितीय कटनी सुवर्णमय और तृतीय कटनी नाना रत्नों से निर्मित नानावर्णमय होती है। प्रथम कटनी में आठ सीढ़ियाँ हैं, दूसरी में चार एवं तीसरी पर चढ़ने के लिए भी चार ही सीढ़ियाँ हैं। तीसरी कटनी पर बीचों बीच में 'मानस्तंभ' खड़े हुए हैं। ये मानस्तंभ अपने तीर्थंकर की ऊँचाई से बारह गुने ऊँचे रहते हैं। भगवान ऋषभदेव के शरीर की ऊँचाई पाँच सौ धनुष — दो हजार हाथ थी अतः ये मानस्तंभ छह हजार धनुष ऊँचे — चौबीस हजार हाथ ऊँचे थे अर्थात् तीन कोश ऊँचे थे।

प्रत्येक मानस्तंभ के मूलभाग का विस्तार दो हजार धनुष है, वज्रमय द्वारों से युक्त है और मध्यभाग स्फटिकमणि से निर्मित है और गोलाकार है। मानस्तंभ के उपरिम भाग वैडूर्यमणिमय हैं इनमें चंवर, घंटा, किंकणी, रत्नहार एवं ध्वजाएँ शोभा बढ़ाती रहती हैं।

इन मानस्तंभों में ऊपरी भाग में प्रत्येक दिशा में एक-एक जिनेन्द्र प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इन प्रतिमाओं में आठ-आठ प्रातिहार्य रहते हैं। ऊपर में शिखर बने हुए हैं जिनमें ध्वजाएँ फहरा रही हैं।

इन मानस्तंभों के देखने मात्र से मिथ्यादृष्टी एवं महामानियों का भी मान गलित हो जाता है इसीलिए इनका 'मानस्तंभ' यह सार्थक नाम है।

अन्यत्र ग्रंथ में लिखा है —

"ये मानस्तंभ बारह योजन की दूरी से (96 मील से) दिखाई देते हैं। पालिका के अग्रभाग पर जो कमल हैं उन्हीं पर स्थित हैं। इनका मूल भाग हीरे का, मध्यभाग स्फटिक मणि का और अग्रभाग वैडूर्यमणि का है। ये मानस्तंभ दो-दो हजार कोणों से दो-दो हजार पहलू वाले हैं। चारों दिशाओं में ऊपर में सिद्धों की प्रतिमाएँ विराजमान हैं तथा उनकी रत्नमयी बड़ी-

बड़ी पालिकाएँ हैं। पालिकाओं के अग्रभाग पर जो कमल हैं उन पर सुवर्ण के देदीप्यमान घट हैं, उन घटों के अग्रभाग से लगी हुई सीढ़ियाँ हैं तथा उन सीढ़ियों पर लक्ष्मी देवी के अभिषेक की शोभा दिखलाई गई है। वे मानस्तंभ लक्ष्मी देवी के चूड़ारत्न के समान अपनी कांति से 'बीस योजन' तक का क्षेत्र प्रकाशमान करते हैं तथा जिनका मन अहंकार से युक्त है ऐसे देव और मनुष्यों को वहीं रोक देने वाले हैं।"

2.1.3 सोलह सरोवर—पूर्वदिशा के मानस्तंभ की चारों दिशाओं में तीनों परकोटों के बाहर क्रम से नन्दोत्तरा, नंदा, नंदिमती और नंदिघोषा ये चार द्रह (वापिकाएँ) हैं। दक्षिण दिशा के मानस्तंभ में चारों दिशाओं में विजया, वैजयंता, जयंता और अपराजिता नाम की बावड़ियाँ हैं। पश्चिम दिशा के मानस्तंभ के चारों तरफ अशोका, सुप्रबुद्धा, कुमुदा और पुण्डरीका नाम की वापिकाएँ हैं। उत्तर के मानस्तंभ में चारों दिशाओं में क्रम से हृदयानंदा, महानंदा, सुप्रतिबुद्धा और प्रभंकरा ये चार द्रह हैं।

ये सभी द्रह समचतुष्कोण हैं, वेदिका और तोरण द्वारों से सहित हैं। इसमें कमल आदि फूल खिल रहे हैं और हंस आदि क्रीड़ा कर रहे हैं।

प्रत्येक द्रहों में तटों पर जलक्रीड़ा के योग्य मणिमयी सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इन द्रहों में भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और कल्पवासी देव क्रीड़ा किया करते हैं और मनुष्यों के लिए भी वे क्रीड़ा के लिए हैं। प्रत्येक द्रह के आश्रित निर्मल जल से परिपूर्ण दो-दो कुंड होते हैं जिसमें देव, मनुष्य और तिर्यंच अपने पैरों की धूलि धोकर आगे जाते हैं।

2.1.4 आदिपुराण में वर्णित मानस्तंभ—इन मानस्तंभों के ऊपर तीन छत्र फिर रहे थे, इन्द्र के द्वारा बनाये जाने के कारण उनका (मानस्तंभों का) 'इन्द्रध्वज' यह नाम भी रूढ़ हो गया था। उनके दर्शन से मिथ्यादृष्टी जीवों का सब मान नष्ट हो जाता है, वे बहुत ऊँचे प्रमाण वाले थे और तीनों लोकों के जीव उनका सम्मान करते थे इसलिए उनका 'मानस्तंभ' यह नाम सार्थक था।

कहा भी है—

हिरण्मयांगाः प्रोत्तुंगा मूर्ध्निच्छत्रत्रयांकिताः।
सुरेन्द्रनिर्मितत्त्वाच्च प्राप्तेन्द्रध्वजरूढिकाः।।101।।
मानस्तंभान्महामान-योगात्त्रैलोक्यमाननात्।
अन्वर्थसंज्ञया तज्ज्ञैर्मानस्तंभाः प्रकीर्तिताः।।102।।

2.1.5 प्रथम वेदी—इस चैत्यप्रासादभूमि को वेढ़कर प्रथम वेदी है। इसमें भी रत्नमय ध्वजाएँ हैं, तोरण द्वार हैं। उन पर तोरण बंधे हुए हैं और घंटे लटक रहे हैं। इस वेदी के भी चार गोपुर द्वार हैं, द्वारों के आजू-बाजू 108-108 मंगलद्रव्य व नवनिधियाँ शोभित हो रही हैं, पुत्तलिकाओं के मस्तक पर धूपघट शोभायमान हैं। इसके मूल और उपरिम भाग का विस्तार धूलिसाल के मूल विस्तार के समान है और ऊँचाई तीर्थंकर देव की ऊँचाई से चौगुनी—धूलिसाल के समान है।

2.2 द्वितीयखातिकाभूमि—

इस प्रथम वेदी के आगे स्वच्छजल से भरी खातिका—खाई है। यह अपने तीर्थंकर की ऊँचाई से चतुर्थ भाग प्रमाण गहरी है। इसमें मणिमय सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। कुमुद, कुवलय आदि फूल खिल रहे हैं और हंस आदि पक्षी कलरव ध्वनि कर रहे हैं। चैत्यप्रासादभूमि के विस्तार के समान ही इस भूमि का विस्तार है।

कोई-कोई आचार्य 'चैत्यप्रासाद' भूमि नहीं स्वीकार करते। उनके आदेशानुसार भगवान ऋषभदेव के समवसरण में खातिका भूमि का विस्तार एक योजन प्रमाण था और शेष तीर्थंकरों का क्रम से हीन था।

महापुराण में श्रीजिनसेनस्वामी ने भी चैत्यप्रासादभूमि नहीं मानी है।

2.2.1 द्वितीयवेदी — दूसरी वेदी इस खातिकाभूमि को वेष्टित किये है यह प्रथम वेदी के समान ही है, मात्र इसका विस्तार प्रथम वेदी से दुगुना है।

2.3 तृतीय लताभूमि—

इस वेदी के आगे लताभूमि है इसमें पुन्नाग, नाग, कुम्बक, शतपत्र आदि की बेलें पुष्पों से सुंदर दिखती हैं। इसमें अनेक क्रीड़ा पर्वत बने हुए हैं और जलभरी बावड़ियाँ भी बनी हुई हैं इनमें भी फूल खिले हुए हैं तथा मणियों की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं।

2.3.1 द्वितीय कोट — इस लतावन को घेरकर आगे दूसरा कोट — परकोटा है। यह सुवर्णमयी है और ऊँचाई, गोपुरद्वार आदि में धूलिसाल के समान है। परन्तु इतना विशेष है कि इसका विस्तार दुगुना है एवं द्वार रजतमयी है। इनके रक्षक यक्षजाति के देव हैं।

हरिवंशपुराण में कहा है—

इस कोट के गोपुर द्वारों के रक्षक व्यन्तर जाति के देव द्वारपाल हैं जो कटक आदि आभूषणों से सुंदर हैं, हाथ में मुद्गर लिये रहते हैं और अपने प्रभाव से अयोग्य व्यक्तियों को दूर हटाते रहते हैं।

इस परकोटे के गोपुर द्वारों के मणिमय तोरणों के दोनों ओर 108-108 मंगल द्रव्य आदि हैं। इस कोट के आगे गली के दोनों ओर तीन-तीन खण्ड की दो-दो नाट्यशालाएँ हैं, जिसमें बत्तीस-बत्तीस देवांगनाएँ नृत्य करती रहती हैं।

2.4 चतुर्थ उपवन भूमि—

इसके आगे चौथी उपवन भूमि है इसमें पूर्व आदि के क्रम से अशोक, सप्तच्छद, चंपा और आम के बगीचे हैं। इन चारों वनों — बगीचों में छोटी-छोटी नदियाँ हैं, उन पर पुल बने हुए हैं, कहीं क्रीड़ा पर्वत हैं तो कहीं पर बावड़ियाँ बनी हुई हैं और कहीं-कहीं सुंदर हिंडोले लगे हुए हैं।

2.4.1 चैत्यवृक्ष — इन चारों वनों के बीच-बीच में एक-एक चैत्यवृक्ष हैं। ये तीर्थंकर देव की ऊँचाई से बारहगुने ऊँचे हैं। इन चैत्यवृक्षों में एक-एक में चारों दिशाओं में एक-एक अर्हंत देव की मणिमय प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इन प्रतिमाओं के आश्रित आठ महाप्रातिहार्य बने हुए हैं।

एक-एक चैत्यवृक्ष के आश्रित — प्रतिमाओं के सामने एक-एक मानस्तंभ बने हुए हैं, ये मानस्तंभ तीन परकोटे से वेष्टित व तीन कटनी के ऊपर रहते हैं। एक-एक मानस्तंभ में भी चार-चार प्रतिमाएँ विराजमान हैं अर्थात् एक चैत्यवृक्ष में चार प्रतिमाएँ और चार मानस्तंभ हो गये हैं।

ये चैत्यवृक्ष वनस्पतिकायिक नहीं हैं प्रत्युत् पृथिवीकायिक रत्नों से निर्मित होते हैं। इन मानस्तंभों के आश्रित भी वापियाँ होती हैं। वहाँ कहीं पर रमणीय भवन, कहीं क्रीड़नशाला और कहीं नाट्यशालाएँ बनी हुई हैं। अनेक रत्नों से निर्मित भवनों में देव-मनुष्य आदि विचरण करते हैं।

उपवनभूमि में बनी वापिकाओं में स्नान करने से मनुष्य अपना एक भव देख लेते हैं और उन वापिकाओं के जल में अपना मुख देखने से वे अपने पूर्व के तीन, वर्तमान का एक और भविष्यत् के तीन ऐसे सात भव देख लेते हैं।

2.4.2 हरिवंश पुराण में बाबड़ियों का वर्णन-

हरिवंशपुराण में बावड़ियों का वर्णन बहुत ही सुन्दर है—

उपवनभूमि में पूर्व दिशा के अशोक वन में नन्दा, नन्दोत्तरा, आनन्दा, नन्दवती, अभिनंदिनी और नंदिघोषा ये छह बावड़ियाँ हैं। दक्षिण के सप्तपर्ण वन में विजया, अभिजया, जैत्री, वैजयंती, अपराजिता और जयोत्तरा ये छह वापिकाएँ हैं। पश्चिम में चंपकवन में कुमुदा, नलिनी, पद्मा, पुष्करा, विश्वोत्पला और कमला ये छह वापिकाएँ हैं। उत्तर में आम्रवन

में प्रभासा, भास्वती, भासा, सुप्रभा, भानुमालिनी और स्वयंप्रभा ये छह वापिकाएँ हैं। पूर्व दिशा की वापिकाएँ अपनी पूजा करने वाले मनुष्यों को उदयफल प्रदान करती हैं। दक्षिण दिशा की वापियाँ विजय फल को, पश्चिम दिशा की वापियाँ प्रीति फल को एवं उत्तर दिशा की वापियाँ ख्याति फल को देती हैं। इन-इन फलों के इच्छुक मनुष्य इन वापिकाओं की पूजा करते हैं। अर्थात् इनके जल का आदरपूर्वक सेवन करते हैं।

क्रम के जानने वाले भक्तजन उन बावड़ियों से फूलों को लेकर क्रम-क्रम से स्तूपों तक जिनेन्द्रदेव की प्रतिमाओं की पूजा करते हुए आगे प्रवेश करते हैं।

उदय और प्रीतिरूप फल को देने वाली वापिकाओं के बीच के मार्ग के दोनों ओर तीन खंड वाली सुवर्णमय बत्तीस नाट्यशालाएँ हैं। ये डेढ़ कोश चौड़ी हैं, इनकी भूमियाँ रत्नों से निर्मित हैं और दीवालें स्फटिक की हैं। उनमें ज्योतिषी देवों की बत्तीस-बत्तीस देवांगनाएँ नृत्य करती रहती हैं।

महापुराण में लिखा है कि अशोक चैत्यवृक्ष में नीलमणियों के पत्ते हैं और पद्मरागमणियों से निर्मित फूलों के गुच्छे शोभित हो रहे हैं एवं सुवर्ण से बनी हुई ऊँची-ऊँची शाखाएँ हैं, ये हवा के झकोरे से हिलते हैं, इस चैत्यवृक्ष के मूलभाग में चारों दिशाओं में जिनेन्द्रदेव की चार प्रतिमाएँ हैं, जिनका इन्द्र स्वयं अभिषेक-पूजन करते हैं।

इस वृक्ष के ऊपर घंटे लटक रहे हैं, ध्वजाएँ फहरा रही हैं और मोतियों की झालरों से सहित छत्रत्रय लगे हुए हैं।

नाट्यशालाएँ—इन चारों वनों के आश्रित चारों गलियों के दोनों पार्श्वभागों में दो-दो नाट्यशालाएँ हैं ऐसे सोलह नाट्यशालाएँ हो गईं। इनमें से आदि की आठ नाट्यशालाओं में भवनवासिनी देवांगनाएँ एवं आगे की आठ नाट्यशालाओं में कल्पवासिनी देवकन्याएँ (देवांगनाएँ) नृत्य किया करती हैं।

इस उपवनभूमि का विस्तार प्रथम चैत्यप्रासाद भूमि से दूना माना गया है।

2.4.3 तृतीय वेदी—यह तीसरी वेदी इस चतुर्थ उपवनभूमि को घेरकर स्थित है। इसका भी पूरा वर्णन दूसरी वेदी के समान है।

यहाँ पर द्वाररक्षक यक्षेन्द्र देव हैं।

2.5 पंचमी ध्वजाभूमि—

इस तृतीयवेदी के आगे 'ध्वजाभूमि' है, इसमें दिव्यध्वजाएँ हैं। ये दश प्रकार के चिन्हों से चिन्हित हैं। सिंह, गज, बैल, गरुड़, मयूर, चन्द्र, सूर्य, हंस, पद्म और चक्र ये दश चिन्ह माने गये हैं। चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में इन दश प्रकार की ध्वजाओं में से एक-एक प्रकार की एक सौ आठ-एक सौ आठ रहती हैं। इनमें से भी प्रत्येक ध्वजा अपनी एक सौ आठ क्षुद्रध्वजाओं से सहित होती हैं।

इस प्रकार भगवान ऋषभदेव के समवसरण में (महाध्वजा 10×108×4=4320। क्षुद्रध्वजा 10×108×10×4=466560। समस्त ध्वजा 4320+466560=470880) कुल चार लाख सत्तर हजार आठ सौ अस्सी हैं।

ये ध्वजाएँ रत्नों से निर्मित होकर भी हवा से हिलती हैं, नाना प्रकार के रत्नों से सुंदर हैं। ये ध्वजाएँ रत्नों से खचित सुवर्णमय स्तंभों में लगी हुई हैं। इन स्तंभों की ऊँचाई भी तीर्थंकर ऋषभदेव की ऊँचाई से बारह गुणी है।

यहाँ पर लताभूमि के विस्तार से दूना ध्वजाभूमि का विस्तार समझना चाहिए।

तृतीयकोट—इस ध्वजाभूमि के आगे चांदी के समान तीसरा कोट—परकोटा है। यह कोट धूलिसाल से दूना है और गोपुरद्वार, मंगलद्रव्य, नवनिधि, धूपघट, नाट्यशाला आदि की व्यवस्था पूर्ववत् हैं। इसके द्वाररक्षक भवनवासी देव हैं।

2.6 छठी कल्पभूमि—

इस तृतीय रजत परकोटे के बाद कल्पभूमि है। इसमें दश प्रकार के कल्पवृक्ष लगे हुए हैं।

यह भूमि अपनी ध्वजभूमि के सदृश विस्तार वाली है। इसमें भी उत्तम वापिकाएँ हैं जिनमें कमल फूल रहे हैं। कहीं पर सुंदर प्रासाद हैं, कहीं पर क्रीड़नशालाएँ, कहीं प्रेक्षणशालाएँ — चित्रशालाएँ आदि बनी हुई हैं। इस भूमि में पानांग, तूर्यांग, भूषणांग, वस्त्रांग, भोजनांग, आलयांग, दीपांग, भाजनांग, मालांग और तेजांग नाम के कल्पवृक्ष हैं। ये अपने-अपने नाम के अनुसार ही वस्तुएँ प्रदान करते रहते हैं।

इस भूमि में भी चारों दिशाओं में क्रम से एक-एक सिद्धार्थ वृक्ष हैं। उनके नाम क्रम से नमेरू, मंदार, संतानक और पारिजात हैं। ये सिद्धार्थवृक्ष तीन कोटों के अंदर हैं और तीन मेखलाओं के ऊपर स्थित हैं।

इनमें से प्रत्येक वृक्ष के मूलभाग में चारों दिशाओं में एक-एक, ऐसी चार सिद्धों की प्रतिमाएँ विराजमान हैं जो कि वंदना करने वालों के समस्त पाप नष्ट करने वाली हैं। एक-एक सिद्धार्थवृक्ष के आश्रित तीन कोटों से सहित व तीन कटनी के ऊपर चार-चार मानस्तंभ बने हुए हैं अर्थात् एक-एक सिद्धप्रतिमा के सामने एक-एक मानस्तंभ हैं। ये सिद्धार्थ वृक्ष भी भगवान ऋषभदेव की ऊँचाई से बारहगुने ऊँचे हैं।

नाट्यशालाएँ — कल्पतरुभूमि के पार्श्व भागों में प्रत्येक वीथी — गली के आश्रित चार-चार नाट्यशालाएँ हैं। ये चैत्यवृक्षों के सदृश ऊँची हैं, पाँच खण्ड वाली हैं, बत्तीस रंगभूमियों से सहित हैं। इनमें ज्योतिषी देवियाँ नृत्य करती रहती हैं।

चतुर्थ वेदी — इस छठी भूमि को घेरकर चौथी वेदी बनी हुई है। यह अपनी प्रथम वेदी के सदृश ही है।

यहाँ भवनवासी देव द्वारों की रक्षा करते हैं।

2.7 सातवीं भवनभूमि —

इस चतुर्थवेदी के आगे भवनभूमि है। इसमें ऊँचे-ऊँचे भवन बने हुए हैं जो कि रत्नों से निर्मित हैं, ध्वजाओं से सहित हैं और तोरणों से युक्त हैं। इन भवनों में जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं, देवगण जिनका नित्य अभिषेक करते रहते हैं। इस भूमि में भी उपवन, लताएँ, क्रीड़ाग्रह, क्रीड़ापर्वत आदि बने हुए हैं।

स्तूपरचना — भवनभूमि के पार्श्वभागों में प्रत्येक वीथी — गली के मध्य में जिन और सिद्धों की अनुपम प्रतिमाओं से सहित नौ-नौ स्तूप हैं। इन स्तूपों पर छत्र फिर रहे हैं, ध्वजाएँ फहरा रही हैं और आठ मंगल द्रव्य रखे हुए हैं। ये स्तूप रत्नों से निर्मित हैं।

एक-एक स्तूप के बीच में मकर के आकार के सौ-सौ तोरण होते हैं। इन स्तूपों की ऊँचाई अपने चैत्यवृक्षों के बराबर है। इन स्तूपों की लम्बाई और विस्तार का प्रमाण इस समय नष्ट हो चुका है।

भव्यजीव इन स्तूपों का अभिषेक, पूजन और प्रदक्षिणा करते रहते हैं।

ये स्तूप ऐसे दिखते थे कि मानों भगवान की नौ केवललब्धियाँ ही हों।

हरिवंशपुराण में कहा है — ये नौ-नौ स्तूप पद्मराग मणियों से निर्मित हैं तथा उनके समीप नाना प्रकार के सभागृह हैं जो कि स्वर्ण और रत्नों के बने हुए हैं। ये मुनियों के योग्य और देवों के योग्य हैं।

चतुर्थकोट — इस भवनभूमि को घेरकर आकाशस्फटिक से निर्मित चतुर्थ कोट है इसके चारों गोपुरद्वार मरकत मणि से बने हुए हैं।

इन गोपुरद्वारों पर कल्पवासी देव हाथ में रत्नदण्ड लेकर द्वारपाल बनकर खड़े रहते हैं।

2.8 आठवीं श्रीमंडपभूमि —

स्फटिक परकोटे से आगे श्रीमण्डपभूमि है। इसमें बारह कोठे बने हुए हैं। निर्मल स्फटिक मणि से सोलह दीवालों के बीच में ये बारह कोठे हैं क्योंकि चारों दिशाओं में जो विशाल वीथी — गलियाँ हैं उनके भी आजू-बाजू में दीवाले हैं अतः सोलह हो गई हैं अर्थात् चार-चार दीवालों के बीच तीन-तीन कोठे होने से बारह कोठे होते हैं।

2.8.1 द्वादशगण व्यवस्था—इन बारह कोठों में पूर्वदिशा आदि से—प्रदक्षिणा के क्रम से ऋषि आदि बारहगण बैठते हैं—

1. प्रथम कोठे में अक्षीण ऋद्धि आदि के धारक गणधरदेव आदि दिगम्बर मुनि बैठते हैं। 2. स्फटिकमणि की दीवाल से व्यवहित दूसरे कोठे में कल्पवासिनी देवियाँ बैठती हैं। 2. स्फटिकमणि की दीवाल से व्यवहित दूसरे कोठे में कल्पवासिनी देवियाँ बैठती हैं। 3. तीसरे कोठे में आर्यिकाएँ तथा श्राविकाएँ बैठती हैं इसी में क्षुल्लिकाएँ, ब्रह्मचारिणियाँ शामिल हैं। 4. चतुर्थ कोठे में ज्योतिषी देवियाँ। 5. पाँचवें में व्यन्तर देवियाँ। 6. छठे में भवनवासिनी देवियां। 7. सातवें में भवनवासी देव। 8. आठवें में व्यन्तर देव। 9. नवमें में ज्योतिष्क देव। 10. दसवें में सौधर्म स्वर्ग से लेकर सोलहवें स्वर्ग तक के कल्पवासी देव। 11. ग्यारहवें में चक्रवर्ती, मांडलिक आदि राजागण व श्रावक बैठते हैं इसी में ऐलक, क्षुल्लक सम्मिलित हैं, जो कि यथायोग्य बैठते हैं और 12. बारहवें कोठे में हाथी, सिंह, व्याघ्र, हरिण आदि पशुगण बैठते हैं।

इन सभी कोठों में बैठने वाले भव्यजीव पूर्व बैर को छोड़कर परस्पर में मैत्री भाव को धारण कर लेते हैं।

2.8.2 पाँचवीं वेदी—इसके आगे स्फटिक पाषाण से निर्मित पाँचवीं वेदी है जो कि चतुर्थ कोट के सदृश विस्तार वाली है।

हरिवंशपुराण में स्तूपों का कुछ विशेष वर्णन आया है उसे यहाँ संक्षेप से दिखाते हैं।

स्फटिकमणि से निर्मित तृतीय कोट है। इसके चारों गोपुरद्वारों के क्रम से विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित ये नाम हैं।

इन द्वारों के पसवाड़ों में उत्तम रत्नमय आसनों के मध्य में स्थित मंगलरूप दर्पण हैं जो देखने वालों के पूर्वभव दिखलाते हैं। ये दर्पण गाढ़ अंधकार को दूर करते हैं। 'विजय' आदि गोपुरों में यथायोग्य 'जय हो, कल्याण हो' इन शब्दों का उच्चारण करते हुए कल्पवासी देव द्वारपाल रहते हैं। उसके आगे नानावृक्षों और लतागृहों से व्याप्त मंच, प्रेंखागिरि और प्रेक्षागृहों से सुशोभित अन्तर्वन हैं।

कल्याणजय—वीथियों—गलियों के बीच में 'कल्याणजय' नाम का आँगन है, उसमें केले के वृक्ष लगे हुए हैं। उन्हीं के भीतर नाटकशाला है जिसमें लोकपाल की देवांगनाएँ नृत्य करती हैं। उनके मध्य दूसरा 'पीठ' है। उसके आगे 'सिद्धार्थवृक्ष' हैं इसमें सिद्धों की प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

बारहस्तूप—उसके आगे एक मंदिर है जिसे पृथिवी के आभूषणस्वरूप 'बारहस्तूप' सुशोभित कर रहे हैं। इनके आगे चारों दिशाओं में शुभ वापिकाएँ हैं-नन्दा, भद्रा, जया और पूर्णा ये इनके नाम हैं उन वापिकाओं में स्नान करने से जीव अपना पूर्वभव जान लेते हैं। इनमें अपना प्रतिबिम्ब देखने से जीव अपने सात भव देख लेते हैं।

जयांगण—वापिकाओं से आगे एक 'जयांगण' बना हुआ है जो कि एक कोश ऊँचा और एक योजन चौड़ा है। इसमें तोरण बंधे हुए हैं, यह तीन लोक की विजय का आधार है, इसमें बीच-बीच में मूंगाओं की लाल-लाल बालुका का अंतर देकर मोतियों की सफेद बालू बिछी हुई है। वह 'जयांगण' अनेक चित्रावली, अनेक भवन, मंडप व निवास स्थानों से सहित है।

इन्द्रध्वज—उस जयांगण के मध्य स्वर्णमयी पीठ पर 'इन्द्रध्वज' सुशोभित है। उस पर मणियों से सुंदर एक ऊँची 'पताका' लगी हुई है। रत्नों की माला, किंकणी आदि से सुशोभित वह पताका जब आकाश में फहराती है, तब इन्द्रादिक देव भी बड़े ही कौतुक से उसे देखते हैं।

श्रुतदेवता—उसके आगे एक हजार खंभों पर खड़ा हुआ 'महोदय' नाम का मंडप है जिसमें 'मूर्तिमती श्रुतदेवता' विद्यमान रहती हैं। उस श्रुतदेवता को दाहिने भाग में करके 'श्रुतकेवली' महामुनि श्रुत का व्याख्यान करते रहते हैं।

महोदय मंडप से आधे विस्तार वाले चार परिवार मंडप और हैं जिसमें कथा कहने वाले 'आक्षेपणी आदि कथाएँ कहते रहते हैं। इन मंडपों के समीप में नाना प्रकार के और स्थान भी बने रहते हैं जिनमें बैठकर महाऋद्धियों के धारक ऋषिगण इच्छुकजनों के लिए उनकी इष्ट वस्तुओं का निरूपण करते हैं।

उसके आगे एक सुवर्णमय पीठ है जिसकी भव्यजीव समयानुसार पूजा करते हैं। उस पीठ का 'श्रीपद' नाम का द्वार है, उस द्वार के दोनों ओर 'प्रभासक' नाम के दो मंडप हैं जिनमें निधियों के स्वामी दो देव स्थित हैं।

प्रमदा नाट्यशालाएँ—उनके आगे 'प्रमदा' नाम की दो विशाल नाट्यशालाएँ हैं जिनमें कल्पवासिनी अप्सराएँ नृत्य करती रहती हैं।

1. **लोकस्तूप**—विजयांगण के कोनों में चार 'लोकस्तूप' होते हैं जो एक योजन ऊँचे हैं, इन पर पताकाएँ फहराती रहती हैं। ये लोकस्तूप तीन लोक की रचना दिखलाते हैं। ये नीचे वेत्रासन के समान, मध्य में झालर के समान, ऊपर मृदंग के समान और अंत में तालवृक्ष के समान लंबी 'त्रसनाली' से सहित हैं। इनका स्वच्छ स्फटिक के समान रूप है अतः ये अपने भीतर की रचना स्पष्ट झलकाते हैं।

2. **मध्यलोकस्तूप**—इन लोकस्तूपों से आगे 'मध्यलोक' नाम से प्रसिद्ध स्तूप है। जिनमें मध्यलोक की रचना स्पष्ट दिखती है।

3. **मन्दरस्तूप**—आगे मंदराचल के समान 'मंदरस्तूप' हैं जिन पर चारों दिशाओं में भगवान की प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

4. **कल्पवासस्तूप**—उनके आगे कल्पवासियों की रचना से युक्त 'कल्पवासस्तूप' है जो देखने वालों को कल्पवासी देवों की विभूति दिखलाते हैं।

5. **ग्रैवेयकस्तूप**—उनके आगे ग्रैवेयकों के समान आकार वाले 'ग्रैवेयकस्तूप' हैं जो मनुष्यों को ग्रैवेयकों की शोभा दिखाते हैं।

6. **अनुदिशस्तूप**—उनके आगे 'अनुदिश' नाम के नौ स्तूप सुशोभित हैं जिनमें प्राणी नौ अनुदिशों को प्रत्यक्ष देख लेते हैं।

7. **सर्वार्थसिद्धिस्तूप**—आगे चलकर चारों दिशाओं में विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित विमानों से सुशोभित समस्त प्रयोजनों को सिद्ध करने वाले 'सर्वार्थसिद्धि' स्तूप हैं।

8. **सिद्धस्तूप**—उनके आगे स्फटिक के समान निर्मल 'सिद्धस्तूप' हैं जिनमें सिद्धों के स्वरूप को प्रगट करने वाली दर्पणों की छाया दिखाई देती है।

9. **भव्यकूट**—उनके आगे देदीप्यमान शिखरों से युक्त 'भव्यकूट' नाम के स्तूप रहते हैं जिन्हें अभव्यजीव नहीं देख पाते हैं क्योंकि इनके प्रभाव से उनके नेत्र अंधे हो जाते हैं।

10. **प्रमोहस्तूप**—उनके आगे 'प्रमोहस्तूप' हैं जिन्हें देखकर लोग अत्यधिक भ्रम में पड़ जाते हैं और चिरकाल से अभ्यस्त भी गृहीत वस्तु को भूल जाते हैं।

11. **प्रबोधस्तूप**—आगे चलकर 'प्रबोधस्तूप' हैं जिन्हें देखकर लोग प्रबोध को प्राप्त हो जाते हैं और तत्त्व को प्राप्तकर साधु बनकर भी संसार से छूट जाते हैं।

इस प्रकार जिनकी वेदिकाएँ एक-दूसरे से सटी हुई हैं तथा जो तोरणों से समुद्भासित हैं, ऐसे अत्यंत ऊँचे दश स्तूप क्रम-क्रम से परिधि तक सुशोभित हैं।

वहाँ पर गणधर महामुनि की इच्छा करते ही एक 'दिव्यपुर' बन जाता है उसके त्रिलोकसार, श्रीकांत आदि अनेक नाम माने गये हैं। भगवान के प्रभाव से वह पुर तीनलोक के समस्त पदार्थों को धारण करने में समर्थ होता है।

अब तीन कटनी का वर्णन करते हैं—

2.8.3 1. प्रथम कटनी—इस स्फटिकमयी पाँचवीं वेदी के आगे 'वैडूर्यमणि' से निर्मित प्रथम पीठ—कटनी है। बारह कोठों से आगे और चारों वीथियों के आगे सोलह स्थानों के सामने प्रथम कटनी पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं, ये सीढ़ियाँ भी सोलह-सोलह हैं।

धर्मचक्र—प्रथम कटनी पर चारों दिशाओं में एक-एक यक्षेन्द्र अपने मस्तक पर 'धर्मचक्र' को लेकर स्थित रहते हैं। इसी कटनी पर अष्टमंगलद्रव्य और पूजाद्रव्य रखे हुए हैं।

गणधर गुरु, अनेक ऋषिगण, देव-देवियाँ आदि इसी प्रथम कटनी पर चढ़कर भगवान की प्रदक्षिणा देकर जिनेन्द्रदेव के सन्मुख होते हुए पूजा करते हैं।

इस प्रथम कटनी की ऊँचाई चार धनुष—सोलह हाथ की है।

2. द्वितीय कटनी—प्रथम कटनी के ऊपर चारों दिशाओं में चढ़ने के लिए आठ-आठ सीढ़ियाँ होती हैं। इस द्वितीय कटनी पर मणिमय स्तंभों पर लटकती हुई महाध्वजाएँ रहती हैं इन ध्वजाओं के चिन्ह—सिंह, बैल, कमल, चक्र, माला, गरुड़, हाथी और ध्वजा ये आठ प्रकार के माने हैं। यह कटनी स्वर्णमयी मानी गई है।

3. तृतीय कटनी—इस द्वितीय कटनी के ऊपर उतनी ही ऊँची तीसरी कटनी है, यह अनेक रत्नों से निर्मित है। दूसरी कटनी से चढ़ने के लिए इसमें भी आठ-आठ सीढ़ियाँ होती हैं।

2.8.4 गंधकुटी—इसी तृतीय पीठ पर एक सुंदर 'गंधकुटी' होती है। इस गंधकुटी की चौड़ाई और लम्बाई भगवान ऋषभदेव के समवसरण में छह सौ धनुष प्रमाण थी और ऊँचाई नौ सौ धनुष थी।

इस गंधकुटी में चंवर, किंकिणी, वंदनमाला, हार आदि सुशोभित रहते हैं और सुंदर ध्वजाएँ फहराती रहती हैं। मलय, चंदन, गोशीर, कालागरु आदि सुगंधित धूपों से सहित धूप घट रखे रहते हैं।

इस गंधकुटी के मध्य स्फटिक मणि से निर्मित भगवान की ऊँचाई के योग्य रमणीय सिंहासन है। भगवान ऋषभदेव उस सिंहासन के ऊपर आकाश में चार अंगुल अधर विराजमान थे।

श्री विष्णुसेन द्वारा रचित समवसरण स्तोत्र में सिंहासन के ऊपर कमल का वर्णन आया है।

तन्मध्यस्थितसिंहासन-मध्ये शोणमंबुजं रमणीयं।
दशशतदलसंयुक्तं, तन्मध्ये कनककर्णिकायामुपरि।।

गंधकुटी के मध्य सिंहासन है उस सिंहासन के बीच में लाल कमल है जो अतिशय सुंदर है, उसमें एक हजार दल हैं, उस कमल की कर्णिका के ऊपर चार अंगुल अधर तीर्थंकर प्रभु विराजमान रहते हैं।

गंधकुटी के ऊपर शिखर रहते हैं, जिन पर करोड़ों विजयपताकाएँ—ध्वजाएँ बंधी हुई हैं, ऐसे ऊँचे शिखरों से सहित वह गंधकुटी नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित है।

इससे स्पष्ट है कि समवसरण में गंधकुटी वेदी के समान शिखरों से सहित होती है।

2.9 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-समवसरण की पाँचवीं भूमि का नाम-

(क) श्रीमण्डप ☐
(ख) खातिका ☐
(ग) ध्वजाभूमि ☐

प्रश्न 2-मानस्तंभ की प्रथम कटनी किससे बनी होती है ?

(क) वैडूर्यमणिमय ☐
(ख) सुवर्णमय ☐
(ग) नानावर्णमय ☐

प्रश्न 3-"समवसरण स्तोत्र" के रचयिता कौन हैं ?

(क) आ. वादिराज ☐
(ख) श्री विष्णुसेन ☐
(ग) आ. मानतुंग स्वामी ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-समवसरण में कितनी भूमियाँ होती हैं ? नाम सहित बताइए ?

प्रश्न 2-समवसरण में स्थित 'नाट्यशालाओं' का वर्णन कीजिए ?

प्रश्न 3-आदिपुराण में मानस्तंभ को किस प्रकार वर्णित किया है ? बताइए ?

प्रश्न 4-दस स्तूप कौन-कौन से हैं ? नाम बताइए ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-समवसरण में कितनी सभाएँ होती हैं एवं उन सभाओं में कौन-कौन बैठते हैं ? क्रम से बताइए ?

पाठ-3 – समवसरण की अन्य विशेषताएँ

3.1 आठ प्रातिहार्य—

भगवान के समवसरण में आठ प्रातिहार्य होते हैं-अशोक वृक्ष, सुरपुष्पवृष्टि, छत्रत्रय, चामर, देवदुंदुभि, भामंडल, सिंहासन और दिव्यध्वनि।

1. जिस वृक्ष के नीचे भगवान को केवलज्ञान होता है, वही वृक्ष अशोक वृक्ष कहलाता है। भगवान ऋषभदेव का यह वृक्ष वटवृक्ष है।

2. देवों द्वारा कल्पवृक्षों के सुंदर-सुंदर पुष्प बरसाये जाते हैं।

3. भगवान के मस्तक के ऊपर तीन छत्र फिरते हैं ये भगवान के तीन लोक की प्रभुता बतलाते हैं।

4. भगवान के आजू-बाजू यक्षेन्द्र चौंसठ चंवर ढोरते हैं। तीर्थंकरों के सिवाय अन्य चक्रवर्ती आदि के चंवरों की संख्या उनके-उनके राजदरबार में आधी-आधी मानी गई है।

5. देवगण आकाश में स्थित होकर जो पणव, शंख, नगाड़े आदि करोड़ों प्रकार के वाद्य बजाते हैं, वह 'देवदुंदुभि' है।

6. भगवान के पीछे कांति के समूह से निर्मित, करोड़ों देवों के तेज को फीका करता हुआ भामंडल देदीप्यमान होता है, इसमें भव्यजीव अपने सात भव देख लेते हैं।

7. रत्नों से निर्मित सिंहासन होता है जिस पर भगवान विराजमान रहते हैं।

8. भगवान के मुख से दिव्यध्वनि प्रगट होती है। यह एक प्रकार की होकर भी समस्त मनुष्यों की भाषाओं में श्रोताओं के भेद से अनेक प्रकार की हो जाती है। यह दिव्यध्वनि अक्षररूप ही है।

तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में इस दिव्यध्वनि को केवलज्ञान के अतिशय में लिया है और प्रातिहार्य में इस स्थान पर कहा है—

"गाढ़ भक्ति में आसक्त देव मनुष्य आदि द्वादशगण के भव्यजीव, हाथ जोड़े हुए, प्रसन्नमुख होकर तीर्थंकर भगवान को घेरकर स्थित रहते हैं, यह एक प्रातिहार्य है।"

3.2 तीर्थंकर भगवान के चौतीस अनिशय—

तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में चौंतीस अतिशयों का वर्णन बहुत ही सुंदर है-

3.2.1 जन्म के अतिशय— तीर्थंकर भगवान के जन्म से ही दश अतिशय विशेष माने हैं-1. स्वेद रहित होना—पसीना नहीं होना 2. मल-मूत्र रहितशरीर 3. दूध के समान श्वेत रुधिर 4. वज्रऋषभनाराच संहनन 5. समचतुरस्र संस्थान 6. अनुपम रूप 7. नवचंपक के समान उत्तम अतिशय सुगंधित शरीर 8. शरीर में एक हजार आठ उत्तम लक्षण 9. अनंत बल 10 और हित-मित-प्रियवचन।

3.2.2 केवलज्ञान के 10 अतिशय— तीर्थंकर भगवान को जब केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है, तब दश अतिशय प्रगट हो जाते हैं—

1. अपने पास से चारों दिशाओं में एक सौ योजन—आठ सौ मील तक सुभिक्ष रहता है। 2. भगवान का आकाश में गमन होता है। 3. वहाँ हिंसा नहीं होती—किसी जीव को कोई मार नहीं सकता है। 4. भगवान भोजन—आहार नहीं करते हैं। 5. भगवान के ऊपर कोई उपसर्ग नहीं कर सकता है। 6. भगवान का पूर्व या उत्तर में एक ही मुख रहता है फिर भी चारों तरफ मुख दीखने से सभी ऐसा समझते हैं कि भगवान का मुख मेरी ओर है। यह चतुर्मुख हो जाना भी एक अतिशय है। 7. भगवान के शरीर की छाया नहीं पड़ती है। 8. भगवान की पलकें नहीं झपकती हैं। 9. भगवान सर्व

विद्याओं के ईश्वर होते हैं — तीन लोक की सर्वविद्याओं के स्वामी होते हैं। 10. भगवान के केवलज्ञान के बाद नख और केश नहीं बढ़ते हैं। 11. भगवान की दिव्यध्वनि सात सौ लघु भाषा और अठारह महाभाषारूप से खिरती है तथा और भी जो संज्ञी — मनसहित जीवों की अक्षर-अनक्षर भाषाएँ हैं उन सबमें भगवान की दिव्यध्वनि परिणत हो जाती है इसलिए यह 'सर्वभाषामय' मानी गई है।

भगवान की दिव्यध्वनि जिस समय खिरती है, उस समय भगवान के तालु, दांत, कंठ और ओष्ठ नहीं हिलते हैं। भगवान की वह ध्वनि अस्खलित और अनुपम है, तीनों संध्या कालों में नव मुहूर्तों तक खिरती है — एक-एक बार तीन-तीन मुहूर्त तक खिरती है और एक योजन — आठ मीलपर्यन्त जाती है।

कहीं-कहीं चार बार मानने से अर्धरात्रि में भी तीन मुहूर्त तक खिरती है, ऐसा माना है। वहाँ समवसरण में दिन-रात्रि का भेद नहीं रहता है। वहाँ भगवान के प्रभामंडल के प्रकाश में व दिव्य रत्नों के प्रकाश में अनेक सूर्यों के प्रकाश भी फीके पड़ जाते हैं।

यह दिव्यध्वनि स्वभाव से तीन या चार बात तो खिरती ही है इससे अतिरिक्त समय में श्रीगणधर देव, इन्द्र या चक्रवर्ती के प्रश्नों के निमित्त से असमय में भी खिर जाती है।

भगवान को केवलज्ञान होने के बाद उनकी इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं अतएव भगवान की दिव्यध्वनि बिना इच्छा के स्वयमेव भव्यजीवों के पुण्य के निमित्त से खिर जाती है, यह ऐसा स्वभाविक ही है। कहा भी है-

अनात्मार्थं बिना रागैः, शास्ता शास्ति सतो हितम्।
ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शान्-मुरजः किमपेक्षते।।

किसी के प्रति किंचित् भी राग — प्रेम के बिना और अपने किसी भी प्रयोजन के बिना भी शास्ता — सच्चे उपदेशक भगवान सज्जन पुरुषों के हित के लिए उपदेश देते हैं जैसे कि शिल्पी के हाथ से ताड़ित हुआ मृदंग स्वयं कुछ भी अपेक्षा नहीं करता है।

यह दिव्यध्वनि भव्यजीवों को छह द्रव्य, नव पदार्थ, सात तत्त्व आदि का उपदेश देती है, स्वर्ग और मोक्ष के मार्ग का उपदेश देती है श्रावक और मुनिधर्म का कथन करती है, भव्यजीवों के लिए उनके पूर्व भव-भविष्यकाल आदि का वर्णन करती है स्वर्ग, नरक, मध्यलोक, जम्बूद्वीप, कर्मभूमि, भोगभूमि आदि समस्त तीनलोक का कथन करती है।

भगवान को जब केवलज्ञान हो जाता है, उस काल में एक समय मात्र में भगवान तीनों लोकों और तीनों कालों को युगपत् जान लेते हैं।

इस प्रकार तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में केवलज्ञान के ग्यारह अतिशय माने हैं और अन्यत्र ग्रंथों में दश अतिशय माने हैं अतः तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में भगवान के केवलज्ञान के अनन्तर देवों द्वारा किए गए तेरह अतिशय ही माने हैं।

3.2.3 देवकृत तेरह अतिशय — 1. तीर्थंकर भगवान के माहात्म्य से संख्यात योजनों तक वन-उद्यान असमय में पत्ते, फूल और फलों से वृद्धिंगत हो जाते हैं। 2. सुखदायक हवा चलने लगती है जो कि धूलि, कंटक आदि को दूर कर देती है। 3. सभी जीव पूर्व वैर को छोड़कर मैत्रीभाव धारण कर लेते हैं। 4. भूमि दर्पण के समान स्वच्छ और रत्नमय हो जाती है। 5. सौधर्मेन्द्र की आज्ञा से मेघकुमार देव सुगंधित जल की वर्षा करते हैं। 6. देवगण विक्रिया से फलों के भार से झुकी हुई शालि, जौ आदि की खेती को बना देते हैं। 7. सर्व जीवों को नित्य ही आनंद उत्पन्न होता रहता है। 8. वायुकुमार देव विक्रिया से शीतल पवन चलाते हैं। 9. कुएँ, तालाब, सरोवर आदि निर्मल जल से परिपूर्ण हो जाते हैं। 10. आकाश धुएँ आदि से रहित निर्मल हो जाता है। 11. सभी जीवों को रोगादि की बाधाएँ नहीं होती हैं। 12. यक्षेन्द्र मस्तक पर किरणों से देदीप्यमान हजार आरों वाले धर्मचक्र को धारण करते हैं। 13. तीर्थंकर के चारों दिशाओं व विदिशाओं में छप्पन सुवर्णकमल, एक पादपीठ एवं विविध प्रकार के पूजन द्रव्य होते हैं।

अन्यत्र—नंदीश्वर भक्ति में चौदह अतिशय निम्न प्रकार से हैं—

अर्द्धमागधी भाषा होती, सब जन मैत्री भाव सदा।
सब ऋतु के फल-फूल खिले, तरुलता सुशोभित हुए मुदा।।42।।
पृथ्वी रत्नमयी दर्पणवत्, शोभित हुई चमकशाली।
परमानन्द करें सब जन को, मंद सुगंधित पवन चली।।43।।
वायुकुमार सुगंधित वायु, से योजन तक पृथ्वी को।
धूलि-कंटक-तृण-पत्थर से, रहित स्वच्छ कर दिया अहो।।44।।
मेघकुमार देव भी विद्युन्माला की बहु शोभा से।
इन्द्राज्ञा से सुरभि सुगंधित, गंधोदक वृष्टि करते।।45।।
जहाँ चरण प्रभु धरें वहाँ है, उत्तम स्वर्ण कमल खिलते।
आगे पीछे सात-सात, सौगंधित अतुल सुखद होते।।46।।
शालि आदिक खेती के फल, भारों से झुकती पृथ्वी।
त्रिभुवनपति का वैभव लखकर, हर्षित हो रोमांच हुई।।47।।
शरद ऋतु सम विमल सरोवर, सम निर्मल आकाश अहो।
सभी दिशाएँ तत्क्षण ही, तमरहित प्रकाशें सब थल को।।48।।
आओ!आओ! देव! भवन-व्यंतर-ज्योतिष-वैमानिक सब।
इंद्राज्ञा से सभी तरफ से, त्वरित बुलावें सुरगण तब।।49।।
हजार आरों से सुंदर बहु, रत्न किरणयुत अति चमके।
रविमंडल को हंसने वाला, धर्मचक्र चलता आगे।।50।।
इस विधि मंगल आठ कहें, दर्पण आदिक अनुपम सुविशेष।
भक्तिराग युत देवेन्द्रों से, कल्पित बहुविध महा विशेष।।51।।

भगवान के समवसरण में भगवान के सान्निध्य में यक्ष-यक्षिणी विद्यमान रहते हैं इन्हें शासन देव-देवी भी कहते हैं—उनके नाम तिलोयपण्णत्ति में कहे हैं—

''गोवदणमहाजक्खा.....

1. गोवदन 2. महायक्ष 3. त्रिमुख 4. यक्षेश्वर 5. तुंबुरव 6. मातंग 7. विजय 8. अजित 9. ब्रह्म 10. ब्रह्मेश्वर 11. कुमार 12. षण्मुख 13. पाताल 14. किन्नर 15. किंपुरुष 16. गरुड़ 17. गंधर्व 18. कुबेर 19. वरुण 20. भ्रकुटि 21. गोमेध 22. पार्श्व 23. मातंग—धरणेन्द्र 24. गुह्यक।

इस प्रकार ये भक्ति से संयुक्त चौबीस यक्ष हैं। ये ऋषभ आदि तीर्थंकरों के पास में स्थित रहते हैं।

1. चक्रेश्वरी 2. रोहिणी 3. प्रज्ञप्ति 4. वज्रशृंखला 5. वज्रांकुशा 6. अप्रतिचक्रेश्वरी 7. पुरुषदत्ता 8. मनोवेगा 9. काली 10. ज्वालामालिनी 11. महाकाली 12. गौरी 13. गांधारी 14. वैरोटी 15. सोलसा 16. मानसी 17. महामानसी 18. जया 19. विजया 20. अपराजिता 21. बहुरूपिणी 22. कूष्मांडी—अम्बिका 23. पद्मावती और 24. सिद्धायिनी, ये यक्षिणियाँ भी क्रमशः ऋषभादि चौबीस तीर्थंकरों के समीप रहा करती हैं।

3.3 समवसरण की महिमा—

यद्यपि समवसरण का क्षेत्र और वहाँ बने हुए बारह कोठों का स्थान सीमा में रहता है फिर भी वहाँ असंख्यातों देव, देवियाँ, संख्यातों मनुष्य और संख्यातों तिर्यंच समा जाते हैं। ये सभी भव्यजीव जिनेन्द्र भगवान के माहात्म्य से ही एक-दूसरे से अस्पृष्ट — अबाधित रहते हैं।

जिनेन्द्रदेव की महिमा ही ऐसी है कि वहाँ अवगाहनशक्ति विशेष हो जाती है।

एक अक्षीणमहालय ऋद्धिधारी मुनि जहाँ बैठते हैं, उनके चारों ओर छोटे से स्थान में भी असंख्यातों जीव बैठकर उपदेश सुन सकते हैं तो पुनः अर्हंत देव तीर्थंकर की महिमा से यह सब अतिशय हो जावे, तो आश्चर्य ही क्या है ?

समवसरण के माहात्म्य से बालक, वृद्ध आदि सभी जीव वहाँ प्रवेश करने अथवा निकलने में अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर ही संख्यात योजन चले जाते हैं और उन्हें थकान नहीं होती है।

वहाँ कोठों में मिथ्यादृष्टि, अभव्य और मनरहित असंज्ञी जीव कदापि नहीं होते हैं तथा संदेह आदि से सहित व विपरीत बुद्धि वाले जीव नहीं रहते हैं तथा वहाँ पर जिनेन्द्र भगवान के प्रभाव से आतंक, रोग, मरण, उत्पत्ति, वैर, कामबाधा, क्षुधा, तृषा और तृष्णा आदि नहीं होते हैं।

हरिवंशपुराण में भी कहा है—

वहाँ समवसरण में पापी, विरोधी, विरुद्ध कार्य करने वाले, शुद्र, पाखंडी, नपुंसक, विकलांग, दो इन्द्रिय, तीन इंद्रिय, चार इन्द्रिय जीव तथा भ्रान्तचित्त के धारक मनुष्य बाहर ही घूमते रहते हैं, ये अन्दर प्रवेश नहीं कर पाते हैं।

वहाँ समवसरण के भीतर भगवान के प्रभाव से न मोह रहता है, न राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं, न उत्कंठा, रति एवं मात्सर्य रहते हैं, न अंगड़ाई और जमुहाई आती है, न नींद आती है, न तन्द्रा सताती है, न क्लेश होता है, न भूख लगती है, न प्यास लगती है और न सदा समस्त दिन कभी अन्य समस्त प्रकार के अमंगल ही होते हैं।

3.4 समवसरण में गणधरदेव—

इधर भगवान ऋषभदेव को केवलज्ञान प्रगट हुआ, उधर अयोध्या में भरत को तीन समाचार एक साथ प्राप्त हुए — पिता को केवलज्ञान, आयुधशाला में चक्ररत्न की उत्पत्ति और अन्तःपुर में पुत्ररत्न की प्राप्ति। भरत महाराज ने निर्णय किया कि पहले पिता श्री ऋषभदेव भगवान के केवलज्ञान की पूजा करना है अतः वे तत्क्षण ही समवसरण में आ गये और विधिवत् भगवान की वंदना-पूजा की।

इधर पुरिमताल नगर के स्वामी भरत के छोटे भाई ऋषभसेन समवसरण में आये, भगवान के दर्शन कर जैनेश्वरी दीक्षा लेकर भगवान के प्रथम गणधर हो गये। उसी समय हस्तिनापुर के राजा सोमप्रभ, श्रेयांसकुमार भी दीक्षित हो गणधर हो गये।

भरत की छोटी बहन ब्राह्मी एवं बाहुबली की छोटी बहन सुंदरी ने भी आर्यिका दीक्षा ले ली, तभी "प्रथम पुत्री" ब्राह्मी सर्व आर्यिकाओं में प्रधान गणिनी हो गईं। उस समय अनेक राजाओं ने एवं राजकन्याओं ने-महिलाओं ने दीक्षा ली थी। भरत के भाई अनंतवीर्य ने भी दीक्षा ले ली। वे इस अवसर्पिणी में सर्वप्रथम मोक्ष गये हैं। भगवान की दीक्षा के समय जो चार हजार राजा दीक्षित होकर तप से भ्रष्ट हो गये थे, उनमें से 'मरीचिकुमार' को छोड़कर सभी ने वहाँ समवसरण में दीक्षा ले ली।

3.4.1 दिव्यध्वनि— भगवान की दिव्यध्वनि से असंख्य भव्यप्राणियों ने धर्मामृत का पान किया। वहीं पर 'श्रुतकीर्ति' नाम के पुरुष ने श्रावक के उत्तम व्रत ग्रहण कर श्रावकों में प्रमुख कहलाये। प्रियव्रता नाम की श्राविका, श्रावक के उत्तम व्रतों को धारण करके श्राविकाओं में प्रमुख हुईं एवं उस समवसरण के मुख्य श्रोता भरतचक्रवर्ती प्रसिद्ध हुए हैं।

3.4.2 सहस्त्रनामस्तोत्र—वहाँ इन्द्रराज ने भगवान की स्तुति करते हुए एक हजार आठ नामों से भगवान की स्तुति की थी। महापुराण में वर्णित स्तुति ही 'सहस्त्रनाम स्तोत्र' नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त है।

भगवान का श्रीविहार—जब भगवान ऋषभदेव के श्रीविहार का समय आया तब सौधर्मेन्द्र ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—

"हे भगवन्! भव्यजीवरूप धान्य पापरूपी अनावृष्टि से सूख रहे हैं, सो हे प्रभो! आप 'तीर्थविहार' करके धर्मरूपी अमृत से उन्हें सींचकर उनके लिए आप ही शरण होइये।" हे त्रैलोक्यनाथ! आपकी विजय के उद्योग को सिद्ध करने वाला यह 'धर्मचक्र' तैयार है।

इस प्रकार प्रार्थना करने के बाद भगवान का 'तीर्थविहार' प्रारंभ हुआ।

वास्तव में भगवान न तो इच्छापूर्वक विहार करते हैं और न इन्द्र की प्रार्थना से भी करते हैं, उनका श्रीविहार निसर्गतः होता है फिर भी यह सब व्यवस्था नियोगरूप ही है।

जैसे ही भगवान तीर्थविहार के लिए खड़े हुए, वैसे ही करोड़ों देव इधर-उधर व्यवस्था में लग गए। इंद्रगण भी भगवान के दिग्विजय के समय आगे-आगे हो गए।

उस समय आगे-आगे की पृथिवी दर्पण के समान स्वच्छ हो गई। पवनकुमार जाति के देवों ने एक योजन तक की भूमि को धूलि आदि से साफ कर दिया। मेघकुमार देवों ने सुगंधित जल की कण-कणरूप से वर्षा कर पृथ्वी को रजरहित सुगंधित कर दिया।

शालि आदि खेत लहलहाने लगे। सभी वृक्षों व लताओं में एक साथ छहों ऋतुओं के फल, फूल आ गए। सभी मनुष्य व पशु-पक्षीगण भी आपस में मैत्री भाव को प्राप्त हो गए। भगवान के माहात्म्य से चार सौ कोश तक पृथ्वी पर सुभिक्ष हो गया, सब प्रकार से कल्याण व आरोग्य हो गया। पृथ्वी प्राणियों की हिंसा से रहित हो गई, करोड़ों ध्वजाएं फहराने लगीं। देवों ने गंभीर दुंदुभि बजाना प्रारंभ कर दिया। आकाशरूपी रंगभूमि में देवांगनाएँ नृत्य करने लगीं। किन्नर जाति के देव मनोहर गीत गा रहे थे और गंधर्व आदि देव वीणा बजा रहे थे।

3.4.3 धर्मचक्र—उस समय हजार आरों से सहित करोड़ों सूर्यों की प्रभा को लज्जित करने वाला धर्मचक्र भगवान के आगे-आगे चल रहा था।

भगवान के चरण कमलों के नीचे सुगंधित सुवर्णमयी कमल खिलते जा रहे थे। देवों के जय-जयकारों से आकाश भी व्याप्त हो गया था।

हरिवंशपुराण में लिखा है—

भगवान के श्रीविहार के समय कुबेर ने घोषणा शुरू कर दी कि-'जिसको जिस वस्तु की इच्छा हो, यहाँ आकर ले ले।' उस समय कामधेनु के समान इच्छित फल देने वाली भूमि मणिमयी बनाई गई।

आकाश से धन की बड़ी मोटी धारा मेघ के जल के समान बरसने लगी, जिससे वसुंधरा अपने सार्थक नाम को प्राप्त हो गई।

प्रावृषेण्याम्बुधारेव, वसुधारा वसुंधरां।
दिवोऽन्वर्थाभिधानत्वं, नयतीन्यपतत्पथि।।5।।

सभी लोकपाल देव समस्त दिग्भागों के साथ सबकी रक्षा कर रहे थे। कितने ही देव समस्त हिंसक जीवों को दूर से ही भगा रहे थे।

जिनके परिवार की देवियों ने मंगलद्रव्य धारण किए हुए थे तथा जिन्होंने अपने हाथों में कमल लिए हुए थे, ऐसी पद्मा और सरस्वती देवी भगवान की प्रदक्षिणा देकर उनके आगे-आगे चल रही थीं।

इन्द्र हाथ जोड़कर वहाँ-वहाँ के राजाओं के साथ आगे-आगे चल रहे थे। उस समय कुबेर मार्ग को सुशोभित करता हुआ आगे चल रहा था।

आकाशमार्ग में धर्मचक्र भगवान के आगे-आगे चल रहा था। ऋषिगण भगवान के पीछे चल रहे थे। इन्द्र प्रतीहार बनकर आठ वसुदेवों के साथ भगवान के आगे-आगे चलते थे। इन्द्र के आगे तीन लोक की उत्कृष्ट विभूति से युक्त 'लक्ष्मी' नामक देवी, मंगलद्रव्य लिए शची देवी के साथ-साथ जा रही थी। तदनंतर श्री देवी से सहित समस्त एवं परिपूर्ण मंगलद्रव्य विद्यमान थे, क्योंकि मंगलमय भगवान की मंगलमय यात्रा मंगलद्रव्यों से युक्त ही होती है। उनके आगे जिन पर देदीप्यमान मुकुट के धारक प्रमुख देव बैठे थे, ऐसी शंख और पद्म नाम की दो निधियाँ चलती थीं। ये निधियाँ समस्त जीवों को इच्छित वस्तुएँ प्रदान करने वाली थीं तथा सुवर्ण और रत्नों की वर्षा करती जाती थीं। उनके आगे फणाओं पर चमकते हुए मणियों की किरणरूप दीपकों से युक्त नागकुमार जाति के देव चलते थे। उनके आगे धूपघटों को धारण करने वाले समस्त अग्निकुमार देव चल रहे थे। धूपघटों में खेयी गई सुगंधित धूप की सुगंधि लोक के अन्त तक फैल रही थी। वह जिनेन्द्रदेव के यश की सुगंधि को ही फैला रही थी। तदनंतर शांत और तेज गुण को धारण करने वाले, भगवान के भक्त चन्द्र और सूर्य जाति के देव अपनी प्रभा के समूहरूप मंगलमय दर्पण को धारण करते हुए चल रहे थे।

धर्मचक्र का माहात्म्य — जहाँ-जहाँ भगवान का धर्मचक्र चल रहा था, वहाँ-वहाँ किसी का असमय में मरण नहीं होता था। भगवान के विहार क्षेत्र में स्थित समस्त त्रस और स्थावर जीव सुख को प्राप्त हो रहे थे। जो जीव भगवान की इस दिव्ययात्रा में साथ-साथ जाते थे, पृथ्वी पर उन्हें धन आदि समस्त आश्चर्यों की प्राप्ति हो जाती थी। जिस देश में भगवान का श्रीविहार होता था, उस देश में भगवान की आज्ञा न होने से ही मानों किसी को न तो मानसिक और शारीरिक पीड़ाएँ होती थीं और न अतिवृष्टि आदि ईतियाँ ही होती थीं। वहाँ अंधे रूप देखने लगते थे, बहरे शब्द सुनने लगते थे, गूंगे स्पष्ट बोलने लगते थे और लंगड़े चलने लगते थे। वहाँ न अत्यधिक गर्मी होती थी, न अत्यधिक ठंड पड़ती थी, न दिन-रात का विभाग होता था और न अन्य अशुभ कार्य अपनी अधिकता दिखला सकते थे। सब ओर शुभ ही शुभ कार्यों की वृद्धि होती थी।

भगवान जिस-जिस दिशा में पहुँचते थे, उसी-उसी दिशा के दिक्पाल पूजन की सामग्री लेकर भगवान के स्वागत के लिए आ पहुँचते थे। भगवान जिस-जिस दिशा से वापस जाते थे, उस-उस दिशा के दिक्पाल मंगलद्रव्य लिये अपनी-अपनी सीमा तक पहुँचाने आते थे, क्योंकि भगवान तीनलोक के सार्वभौम स्वामी थे।

सो ठीक ही है क्योंकि — **"तित्थयरस्स विहारो लोयसुहो।"**

तीर्थंकर भगवान श्री ऋषभदेव का श्रीविहार सम्पूर्ण लोक के सुख के लिए ही होता है। हरिवंशपुराण में लिखा है —

आसंवत्सर-मात्मांगैः, प्रथयन्प्राभवीं गतिं।
भासते रत्नवृष्ट्याध्वा-भरोत्यैरावतो यथा।।105।।
विहारानुगृहीतायां, भूमौ न डमरादयः।
दशाभ्यस्तयुगं भर्तुरहोऽत्र महिमा महान्।।108।।

अर्थात् जिस मार्ग से भगवान का विहार हो जाता है वह मार्ग, अपने चिन्हों से एक वर्ष तक यह प्रगट करता था कि यहाँ भगवान का विहार हुआ है तथा रत्नवृष्टि से वह मार्ग ऐसा सुशोभित होता था जैसे नक्षत्रों के समूह से ऐरावत हाथी सुशोभित होता है। उस समय मंद बुद्धि के धारक मनुष्य तीक्ष्ण बुद्धि के धारक हो गये थे। समस्त हिंसक जीव प्रभावहीन हो गये थे और भगवान के समीप रहने वालों को खेद, पसीना, पीड़ा और चिंता आदि कुछ भी उपद्रव नहीं होते थे। भगवान से अनुगृहीत भूमि में दो सौ योजन तक विप्लव आदि नहीं होते थे। अथवा दश से गुणित युग अर्थात् पचास वर्ष तक उस भूमि में कोई भी उपद्रव आदि नहीं होते थे। यह भगवान की बहुत ही महान महिमा समझनी चाहिए।[1]

3.5 भगवान के समवसरण में दर्शन का प्रभाव—

एक बार भगवान के समवसरण में विवर्द्धनकुमार आदि नव सौ तेईस राजकुमार, जो कि चक्रवर्ती भरत के पुत्र थे, यह वहाँ पहुँचकर दर्शन कर बोल पड़े और भगवान की स्तुति कर दीक्षा ग्रहण कर ली। ये निगोद से आये थे, इन्होंने इसके पूर्व कभी त्रसपर्याय पाई ही नहीं थी। समवसरण के प्रभाव से वे प्रतिबोध को प्राप्त हो गये और एकदम दीक्षा ले ली, ये उसी भव से मोक्ष गये हैं।

सूर्यवंश— भगवान ऋषभदेव इच्छ्वाकुवंशी थे। भरत के पुत्र अर्ककीर्ति के नाम से इसी वंश को सूर्यवंश नाम से भी जाना जाने लगा।

भगवान के भरत चक्रवर्ती, कामदेव बाहुबली, वृषभसेन गणधर आदि सभी एक सौ पुत्रों ने दीक्षा ली है और मोक्षपद प्राप्त किया है।

इस वंश में भरत को आदि लेकर चौदह लाख राजा लगातार मोक्ष गये हैं। इसके बाद एक राजा दीक्षा लेकर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ, फिर अस्सी राजा मोक्ष गये, इत्यादिरूप से स्वर्ग-मोक्ष की परम्परा चलती रही है।

3.5.1 जिनप्रतिमा के दर्शन का फल अचिन्त्य है—

यदि कोई कहे कि साक्षात् भगवान के समवसरण की जो महिमा है, सो आज पंचमकाल में जिनप्रतिमा के दर्शन से नहीं हो सकती है ?

यद्यपि यह सत्य है, फिर भी जिनप्रतिमा के दर्शन का फल भी अचिन्त्य है। उदाहरण के लिए देखिए— 'षट्खण्डागम' महान ग्रंथराज की 'धवला' टीका में लिखा है—

जिणबिंबदंसणेण, णिधत्तणिकाचिदस्स वि।
मिच्छत्तादिकम्मकलावस्स खयदंसणादो।।

जिनप्रतिमा के दर्शन से निधत्त और निकाचित भी मिथ्यात्वादि कर्मसमूह का विनाश देखा जाता है, अतएव जिनबिम्बदर्शन प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति में बहिरंग कारण माना गया है।

दर्शनेन जिनेन्द्राणां, पापसंघातकुंजरम्।
शतधा भेदमायाति, गिरिर्वज्रहतो यथा।।

जिनेन्द्रदेव के दर्शन से पापों के समूह के सौ-सौ खंड हो जाते हैं जैसे कि वज्र के प्रहार से पर्वत के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं।

द्युति नाम के महान् आचार्य अयोध्या में श्रीरामचन्द्र के वन में चले जाने के बाद खिन्नमना 'भरत' को समझाते हुए कहते हैं कि—

हे भरत! जब रामचंद्र वन से लौटकर आयेंगे, तब तुम दीक्षा ले लोगे तुमने यह प्रतिज्ञा की है, सो तो ठीक ही है फिर उनके आने तक तुम गृहस्थ धर्म का पालन करो क्योंकि यह गृहस्थधर्म— श्रावक धर्म भी मुनिधर्म का छोटा भाई है। उसी के अन्तर्गत वे आचार्यदेव जिनदर्शन की महिमा का फल बतलाते हुए कहते हैं—

फलं ध्यानाच्चतुर्थस्य, षष्ठस्योद्यानमात्रतः।
अष्टमस्य तदारम्भे, गमने दशमस्य तु।।
द्वादशस्य ततः किंचिन्मध्ये पक्षोपवासजम्।
फलं मासोपवासस्य, लभते चैत्यदर्शनात्।।
चैत्यांगणं समासाद्य, याति षाण्मासिकं फलम्।
फलं वर्षोपवासस्य, प्रविश्य द्वारमश्नुते।।

फलं प्रदक्षिणीकृत्य, भुक्ते वर्षशतस्य तु।
दृष्ट्वा जिनबिम्बमाप्नोति, फलं वर्षसहस्रजम्।।
अनन्तफलमाप्नोति, स्तुतिं कुर्वन् स्वभावतः।
नहि भक्तेजिनेन्द्राणां, विद्यते परमुत्तमम्।।
कर्म भक्त्या जिनेन्द्राणां, क्षयं भरत गच्छति।
क्षीणकर्मा पदं याति, यस्मिन्ननुपमं सुखं।।''

"जो मनुष्य जिनप्रतिमा के दर्शन का चिंतवन करता है वह बेला का, जो गमन का अभिलाषी होता है वह तेला का, जो जाने का आरंभ करता है वह चौला का, जो जाने लगता है वह पाँच उपवास का, जो कुछ दूर पहुँच जाता है वह बारह उपवास का, जो बीच में पहुँच जाता है, वह पन्द्रह उपवास का, जो मंदिर के दर्शन करता है वह मासोपवास का, जो मंदिर के आँगन में प्रवेश करता है वह छह मास के उपवास का, जो द्वार में प्रवेश करता है वह वर्ष के उपवास का, जो प्रदक्षिणा देता है वह सौ वर्ष के उपवास का, जो जिनेन्द्रदेव के मुख का दर्शन करता है वह हजार वर्ष के उपवास का, और जो स्वभाव से स्तुति करता है वह अनन्त उपवास का फल प्राप्त करता है। यथार्थ में जिनभक्ति से बढ़कर उत्तम पुण्य नहीं है। आचार्य कहते हैं कि हे भरत! जिनेन्द्रदेव की भक्ति से कर्म क्षय को प्राप्त हो जाते हैं और जिसके कर्म क्षीण हो जाते हैं, वह अनुपम सुख से सम्पन्न परम पद को प्राप्त कर लेता है।"

3.5.2 जिनमंदिर की व जिनप्रतिमा की पूजा के फल में अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं—

जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह में वत्सकावती देश में 'सुसीमा' नगरी है। उसके राजा चक्रवर्ती वरदत्त थे। एक समय नगर के बाहर "गंधमादन" पर्वत पर 'शिवघोष' तीर्थंकर भगवान के समवसरण में चक्रवर्ती आदि भव्य जीव दर्शन करने लगे। वहाँ पहुँचकर वंदना-पूजा करके अपने-अपने कोठे में बैठ गए। उसी समय स्वर्ग से प्रधान देवों ने 'दो देवियों' को साथ में लाकर सौधर्मेन्द्र से कहा—हे इन्द्रराज! ये आपकी देवियाँ हैं। ऐसा कहकर उन्हें समर्पित कर दिया। यह देख चक्रवर्ती ने पूछा—

भगवन्! इन देवियों को पीछे से क्यों लाया गया है ? तभी तीर्थंकर की दिव्यध्वनि सुनकर गणधर देव ने कहा—

सम्राट्! सुनो, इनका चरित मैं सुनाता हूँ। इसी नगर में कुसुमावती और पुष्पलता नाम की दो बहनें एक माली की कन्याएँ थीं। वे प्रतिदिन 'पुष्पकरंडक' वन से पुष्पों को चुनकर ले जाते समय मार्ग में स्थित जिनमंदिर की देहली पर एक-एक पुष्प चढ़ाकर दर्शन करके घर जाती थीं। आज उस वन में पहुँचने पर उन दोनों को सर्प ने काट दिया, इससे मरकर वे अन्तर्मुहूर्त में ही प्रथम स्वर्ग में देवियाँ उत्पन्न हुई हैं।

3.5.3 दूसरी कथा इस प्रकार है—इसी आर्यखंड में कुंतलपुर देश में एक 'तेरपुर' नगर था। वहाँ वसुमित्र सेठ के ग्वाले ने एक बार एक तालाब से एक 'सहस्रदल—हजार पांखुडी वाला कमल तोड़ दिया। तभी एक देवी ने प्रगट होकर कहा-जो सबसे अधिक पूज्य हो, उसे ही यह कमल देना। ग्वाले ने आकर अपने सेठ से कहा, सेठ ने राजा से कहा—राजा सेठ और ग्वाले को साथ लेकर 'सहस्रकूट' जिनमंदिर पहुँचे, वहाँ विराजमान 'सुगुप्त' मुनि से पूछा-भगवन्! लोक में सर्वश्रेष्ठ कौन हैं ? मुनि ने कहा-सर्वश्रेष्ठ जिनेन्द्र भगवान हैं जिनकी प्रतिमाएँ यहाँ मंदिर में विराजमान हैं। तभी ग्वाले ने जिनेन्द्र भगवान के सामने वह कमल चढ़ा दिया और नमस्कार करके घर आ गया। कालान्तर में यह ग्वाला इस पुण्य के फल से राजा 'करकण्डु' हुआ है।

इसकी कथा 'पुण्यास्रव' कथाकोश से पढ़ना चाहिए।

3.5.4 जिनेन्द्र प्रतिमा के अपमान का कुफल—

ऐसे ही जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा के अपमान से कितने कटुकर्म बंधते हैं। उसकी संक्षिप्त कथा सुनो—

जब अंजना ने गर्भवती अवस्था में वसंतमाला सखी के साथ घोर जंगल में एक गुफा में विराजमान मुनिराज के दर्शन करके अपने पूर्वभव पूछे, तब महामुनि ने अपने अवधिज्ञान से कहा-पुत्रि! पूर्व भव में तू महारानी 'कनकोदरी' थी। लक्ष्मीमती नामक अपनी सौत से क्रोध करके अभिमानवश हो उसके घर चैत्यालय में विराजमान जिनप्रतिमा को उठवाकर घर के बाहर फिकवा दिया। इसी बीच वहाँ 'संयमश्री' आर्यिका आहार के लिए आई थीं। इस घटना को जानकर उन्होंने मौन छोड़कर आहार का त्यागकर दिया और रानी कनकोदरी को समझाया और कहा—

हे रानी! तू इस पाप से नरकों में जाकर घोर कष्ट को भोगेगी अत: मेरे कहने से तू इस पाप का प्रायश्चित्त कर और धर्म में चित्त लगा। आर्यिकाश्री के सम्बोधन से रानी नरक जाने से डर गई और 'जिनप्रतिमा' को वापस मँगाकर यथास्थान विराजमान करा दिया पुन: आर्यिकाश्री से धर्मश्रवण कर अपनी शक्ति के अनुसार व्रत-तप आदि स्वीकार किये। इस पुण्य के फल से वह आयु के अंत में मरकर स्वर्ग में देवी हुई पुन: वहाँ से च्युत हो महेन्द्रनगर के राजा महेन्द्र की रानी मनोयोगा से पुत्री अंजना हुई है। पूर्वभव के जिनप्रतिमा के अपमान से इसने बाईस वर्ष तक पति के वियोग का दु:ख सहा है। पुनरपि पाप शेष रहने से यह झूठा कलंक लगाकर सास के द्वारा निकाली गई है अब इसके पुत्र रत्न के जन्म के पश्चात् सर्वसुख प्राप्त होंगे। इत्यादि।

इस प्रकार जिनप्रतिमा के दर्शन, पूजन की महिमा को जानकर व उनके अपमान का महान दु:खदायी फल जानकर संसार के दु:ख से डरने वालों को भगवान की भक्ति करके मनुष्यपर्याय को सफल करना चाहिए।

3.6 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-भगवान के समवसरण में कितने प्रातिहार्य होते हैं ?

(क) चार ☐ (ख) आठ ☐ (ग) दो ☐

प्रश्न 2-भगवान के आजू-बाजू यक्षेन्द्र कितने चंवर ढोरते हैं ?

(क) चार ☐ (ख) चौंसठ ☐ (ग) पाँच ☐

प्रश्न 3-अर्हन्त भगवान के कितने अतिशय होते हैं ?

(क) 34 ☐ (ख) 10 ☐ (ग) 14 ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-भगवान के समवसरण में कितने प्रातिहार्य होते हैं ? नाम बताइए ?

प्रश्न 2-तीर्थंकर भगवान के जन्म के कितने अतिशय होते हैं ? नाम सहित बताइए ?

प्रश्न 3-जब भगवान ऋषभदेव को केवलज्ञान हुआ, तब अयोध्या में भरत को कितने और कौन से समाचार एक साथ प्राप्त हुए ?

प्रश्न 4-चक्रवर्ती भरत के नौ सौ तेईस पुत्रों के समवसरण में दर्शन करते हुए क्या चमत्कार हुआ ? वे किस पर्याय से आए थे ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-तीर्थंकर भगवान के कितने अतिशय होते हैं, उनमें से देवकृत अतिशय कितने और कौन से हैं, नाम सहित बताइए ?

इकाई–4 आद्य सिद्धान्त ग्रंथ-सामान्य परिचय

इस इकाई में मुख्यरूप से निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया गया है—

(1) कषायप्राभृत-युग की प्रथम कृति

(2) षट्खण्डागम-जैनागम का प्राण

(3) महाबन्ध-षट्खण्डागम का छठा खण्ड

(4) द्वादशांग श्रुत की रचना गणधर ही कर सकते हैं

पाठ-1 — कषायप्राभृत-युग की प्रथम कृति

1.1 कषायपाहुड ग्रन्थ रचना—भगवान महावीर की दिव्यध्वनि को सुनकर श्री गौतमस्वामी ने उसे द्वादशांगरूप से निबद्ध किया। यह द्वादशांग श्रुत अंतिम श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु आचार्य तक पूर्णरूप से विद्यमान रहा पुनः धीरे-धीरे ह्रास होते हुए अंग और पूर्व के एकदेशरूप ही रह गया तब श्रुतरक्षा की भावना से प्रेरित हो कुछ आचार्यों ने उसे ग्रन्थरूप से निबद्ध किया।

श्रीगुणधराचार्य को पाँचवें ज्ञानप्रवाद पूर्व की दशवीं वस्तु के तीसरे पेज्जदोसपाहुड का परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त था जबकि षट्खण्डागम आदि ग्रन्थों के प्रणेताओं को उक्त ग्रन्थों की उत्पत्ति के आधारभूत "महाकम्मपयडिपाहुड" का आंशिक ही ज्ञान प्राप्त हुआ था। इस प्रकार से गुणधराचार्य ने "कसायपाहुड" जिसका अपरनाम "पेज्जदोसपाहुड" भी है, उसकी रचना की है। 16000 पद प्रमाण कसायपाहुड के विषय को संक्षेप से एक सौ अस्सी गाथाओं में ही उपसंहृत कर दिया है।

1.2 विषय परिचय—

पेज्ज नाम प्रेयस् या राग का है और दोस नाम द्वेष का है। यतः क्रोधादि चारों कषायों में माया, लोभ को रागरूप से और क्रोध, मान को द्वेषरूप से, ऐसे ही नव नोकषायों का विभाजन भी राग और द्वेषरूप में किया है अतः प्रस्तुत ग्रन्थ का मूल नाम "पेज्जदोसपाहुड" है और उत्तर नाम "कसायपाहुड" है। कषायों की विभिन्न अवस्थाओं का एवं इनसे छूटने का विस्तृत विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है अर्थात् किस कषाय के अभाव से सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होती है, किस कषाय के क्षयोपशम आदि से देशसंयम और सकलसंयम की प्राप्ति होती है, यह बतला करके कषायों की उपशमना और क्षपणा का विधान किया गया है। तात्पर्य यही है कि इस ग्रन्थ में कषायों की विविध जातियां बतला करके उनके दूर करने का मार्ग बतलाया गया है।

इस ग्रन्थ की रचना गाथासूत्रों में की गई है। आचार्य गुणधरदेव स्वयं कहते हैं—"वोच्छामि सुत्तगाहा जपिगाहा जम्मि अत्थम्मि" जिस अर्थाधिकार में जितनी-जितनी सूत्र गाथायें प्रतिबद्ध हैं, उन्हें मैं कहूँगा। इस ग्रन्थ में कुल 233 गाथायें हैं, जिन्हें "कसायपाहुड" सुत्त की प्रस्तावना में पं. हीरालाल जी ने श्रीगुणधराचार्य रचित ही माना है अर्थात् 53 गाथाओं में विवाद होकर भी गुणधराचार्य रचित ही निर्णय मान्य होता है।

"इस प्रकार के उपसंहृत एवं गाथासूत्र निबद्ध द्वादशांग जैन वाङ्मय के भीतर अनुसंधान करने पर यह ज्ञात हुआ है कि कसायपाहुड ही सर्वप्रथम निबद्ध हुआ है। इससे प्राचीन अन्य कोई रचना अभी तक उपलब्ध नहीं है" अतः श्री गुणधराचार्य दिगम्बराचार्य की परम्परा में प्रथम सूत्रकार माने जाते हैं।

1.3 ग्रंथ रचयिता आचार्य श्री गुणधरदेव—

श्रुतधर आचार्यों की परम्परा में सर्वप्रथम आचार्य कौन हैं ? ऐसा प्रश्न होने पर इतिहासकारों ने बड़े आदर से महान

आचार्यश्री "गुणधर देव" का नाम लिया है। श्रीगुणधर और धरसेन ये दोनों आचार्य श्रुत के प्रतिष्ठापकरूप से प्रसिद्ध हुए हैं फिर भी गुणधरदेव, धरसेनाचार्य की अपेक्षा अधिक ज्ञानी थे और लगभग उनके दो सौ वर्ष पूर्व हो चुके हैं ऐसा विद्वानों का अभिमत है अतएव आचार्य गुणधर को दिगम्बर परम्परा में लिखितरूप से प्राप्त श्रुत का प्रथम श्रुतकार माना जा सकता है। धरसेनाचार्य ने किसी ग्रन्थ की रचना नहीं की जबकि गुणधराचार्य ने "पेज्जदोसपाहुड" ग्रन्थ की रचना की है।

आचार्य का समय—

ये गुणधराचार्य किनके शिष्य थे इत्यादि रूप से इनका परिचय यद्यपि आज उपलब्ध नहीं है तो भी उनकी महान कृति से ही उनकी महानता जानी जाती है। यथा—

गुणधरधरसेनान्वयगुर्वोः पूर्वापरक्रमोऽस्माभिः।
न ज्ञायते तदन्वयकथकागममुनिजनाभावात्।।51।।

गुणधर और धरसेन की पूर्वापर गुरु परम्परा हमें ज्ञात नहीं है क्योंकि इसका वृत्तांत न तो हमें किसी आगम में मिला और न किसी मुनि ने ही बतलाया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इन्द्रनंदि आचार्य के समय तक आचार्य गुणधर और धरसेन का गुरु शिष्य परम्परा का अस्तित्व स्मृति के गर्भ में विलीन हो चुका था फिर भी इतना स्पष्ट है कि श्री अर्हद्बलि आचार्य द्वारा स्थापित संघों में "गुणधर संघ" का नाम आया है। नंदिसंघ की प्राकृत पट्टावली में अर्हद्बलि का समय वीर नि.सं. 556 अथवा वि. सं. 95 है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि गुणधर देव अर्हद्बलि के पूर्ववर्ती हैं पर कितने पूर्ववर्ती हैं, यह निर्णयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। यदि आ. श्री गुणधर की परम्परा को ख्याति प्राप्त करने में सौ वर्ष का समय मान लिया जाए तो षट्खंडागम के प्रवचनकर्ता धरसेनाचार्य से "कसायपाहुड" के प्रणेता गुणधराचार्य का समय लगभग दो सौ वर्ष पूर्व सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार आचार्य गुणधर का समय विक्रम पूर्व प्रथम शताब्दी सिद्ध होता है।

1.4 ग्रन्थ की महत्ता—

आचार्य इन्द्रनंदि ने अपने श्रुतावतार में कहा है कि "कसायपाहुड" ग्रन्थ पर आचार्य यतिवृषभ ने 6,000 श्लोक प्रमाण चूर्णिसूत्र रचे हैं।

उच्चारणाचार्य ने 12,000 श्लोक प्रमाण में उच्चारणावृत्ति रची है। शामकुन्डाचार्य ने 48,000 श्लोक प्रमाण में 'पद्धति' नाम से व्याख्या रची है। तुम्बलूराचार्य ने 84,000 श्लोक प्रमाण में चूड़ामणि टीका रची है और आचार्यश्री वीरसेन तथा जिनसेन ने 60,000 श्लोक प्रमाण में "जयधवला" नाम से टीका लिखी है। उपलब्ध जैन वाङ्मय में से कसायपाहुड पर ही सबसे अधिक व्याख्यायें और टीकायें रची गई हैं। यदि उक्त समस्त टीकाओं के परिमाण को सामने रखकर मात्र 233 गाथाओं वाले कसायपाहुड को देखा जाए तो वह दो लाख प्रमाण से भी ऊपर सिद्ध होता है। वर्तमान में मूल गाथाएँ, यतिवृषभाचार्यकृत चूर्णिसूत्र और जयधवला टीका ही उपलब्ध है, बाकी टीकाएँ उपलब्ध नहीं हैं।

चूर्णिसूत्रकार ने और जयधवलाकार ने तो इनकी गाथाओं को बीजपदरूप और अनंतार्थगर्भी कहा है। "कसायपाहुड की किसी-किसी गाथा के एक-एक पद को लेकर एक-एक अधिकार का रचा जाना तथा तीन गाथाओं का पांच अधिकारों में निबद्ध होना ही गाथाओं की गम्भीरता और अनंत अर्थगर्भिता को सूचित करता है। वेदक अधिकार की जो जंसंकामेदिय" (गाथांक 62) गाथा के द्वारा चारों प्रकार के बंध, चारों प्रकार के संक्रमण, चारों प्रकार के उदय, चारों प्रकार की उदीरणा और चारों प्रकार के सत्व सम्बन्धी अल्पबहुत्व की सूचना निश्चयतः उसके गांभीर्य और अनन्तार्थगर्भित्व की साक्षी है। यदि इन गाथा सूत्रों में अंतर्निहित अनंत अर्थ को चूर्णिकार व्यक्त न करते तो आज उनका अर्थबोध होना असम्भव था।

1.5 इस ग्रंथ का भगवान महावीर स्वामी से सीधा सम्बन्ध है—

स्वयं जयधवलाकार प्रस्तुत ग्रंथ के गाथासूत्रों और चूर्णिसूत्रों को किस श्रद्धा और भक्ति से देखते हैं, यह उन्हीं के शब्दों में देखिए। एक स्थल पर शिष्य के द्वारा यह शंका किए जाने पर कि "यह कैसे जाना ?" इसके उत्तर में वीरसेनाचार्य कहते हैं—

"एदम्हादो विउलगिरिमत्थ यत्थवड्ढमाणादिवायरादो विणिग्गमिय गोदमलोहज्जजंबुसामियादि आइरियपरंपराए आगंतूण गुणहराइरियं पाविय गाहासरूवेण परिणमिय अज्जमंखुणागहत्थी हितो जसिवसहमुहणयिय चुण्णिसुत्तायारेण परिणमिद दिव्वज्झुणिकिरणादो णव्वदे।"

अर्थात् "विपुलाचल के शिखर पर विराजमान वर्धमान दिवाकर से प्रकट होकर गौतम, लोहार्य (सुधर्मा स्वामी) और जम्बूस्वामी आदि की आचार्य परम्परा से आकर और गुणधराचार्य को प्राप्त होकर गाथास्वरूप से परिणत हो पुनः आर्यमंक्षु और नागहस्ति द्वारा यतिवृषभ को प्राप्त होकर और उनके मुख कमल से चूर्णिसूत्र के आकार से परिणत दिव्यध्वनिरूप किरण से जानते हैं।"

वस्तुतः जो दिव्यध्वनि भगवान महावीर से प्रगट हुई है वही गौतमादि के द्वारा प्रसारित होती हुई गुणधराचार्य को प्राप्त हुई और फिर उनके द्वारा गाथारूप से परिणत होकर आचार्य परम्परा द्वारा आर्यमंक्षु और नागहस्ति को प्राप्त होकर उनके द्वारा यतिवृषभ को प्राप्त हुई इसलिए चूर्णिसूत्रों में निर्दिष्ट प्रत्येक बात दिव्यध्वनिरूप ही है। इसमें किसी प्रकार के संदेह या शंका की कुछ भी गुंजाइश नहीं है। अस्तु! कसायपाहुड और उसके चूर्णिसूत्रों में जिस ढंग से वस्तुतत्त्व का निरूपण किया गया है, उसी से वह सर्वज्ञ कथित है" यह सिद्ध होता है।

इस उपर्युक्त प्रकरण से आचार्य परम्परा और श्रुत परम्परा का अविच्छेद भी जाना जाता है।

जयधवलाकार तो इस कषायपाहुड के ऊपर रचे गए चूर्णिसूत्रों को षट्खण्डागम सूत्रों के सदृश सूत्र रूप और प्रमाण मानते हैं। देखिए—किसी स्थल पर चूर्णिकार यतिवृषभ और षट्खंडागम के कर्ता भूतबलि के मत में कुछ अन्तर होने पर श्री वीरसेनाचार्य कहते हैं कि "**एदेसिं दोण्हमुवदेसाणं मज्झे सच्चेणेक्केणेव होदव्वं। तत्थ सच्चत्तणेगदरणिण्णओ णत्थि त्ति दोण्हं पि संगहो कायव्वो।**" इन दोनों उपदेशों में से सत्य तो एक ही होना चाहिए किन्तु किसी एक की सत्यता का निर्णय आज केवली या श्रुतकेवली के न होने से सम्भव नहीं है अतएव दोनों का ही संग्रह करना चाहिए।

श्री वीरसेनाचार्य ने भगवान की दिव्यध्वनि को सूत्र कहा है पुनः श्रीगणधरदेव और गणधरदेव के वचनों को भी सूत्र सम कहकर प्रमाणता दी है तथा सूत्र के लक्षण के बाद प्रश्न होता है कि—

"इस वचन से ये गाथाएँ सूत्र नहीं हैं क्योंकि गणधर, प्रत्येक बुद्ध, श्रुतकेवली और अभिन्न दशपूर्वी के वचन सूत्र माने गए हैं किन्तु भट्टारक गणधरादि नहीं हैं तो आचार्य कहते हैं कि नहीं, गुणधर भट्टारक की गाथाएँ निर्दोष, अल्पाक्षर एवं सहेतुक होने से सूत्र के समान हैं अतः इन्हें सूत्र ही माना गया है।" ऐसे ही कई स्थलों पर जयधवला में उल्लेख है।

इन सभी बातों से आचार्य गुणधर देव कितने महान थे और उनका यह कसायपाहुड ग्रन्थ कितना महान है, इसका बोध सहज ही हो जाता है।

1.6 चूर्णिसूत्र में आचार्य श्री यतिवृषभ ने कषायों के ये आठ भेद गिनाए हैं—

नामकषाय, स्थापनाकषाय, द्रव्यकषाय, भावकषाय, प्रत्ययकषाय, समुत्पत्तिककषाय, आदेशकषाय और रसकषाय। ये भेद आचारांगनिर्युक्ति (गा. 190) तथा विशेषावश्यकभाष्य में भी पाए जाते हैं। इन आठ भेदों में ऐसे सभी पदार्थों का संग्रह हो जाता है जिनमें किसी भी दृष्टि से कषाय व्यवहार किया जा सकता है। इनमें भावकषाय ही मुख्य कषाय है।

इस कषायपाहुड ग्रंथ में इस भावकषाय का तथा इसको उत्पन्न करने में प्रबल कारण कषायद्रव्य कर्म अर्थात् प्रत्ययकषाय का सविस्तार वर्णन है। मुख्यतः इस कषायपाहुड में चारित्रमोहनीय और दर्शनमोहनीय कर्म का विविध अनुयोग द्वारों में प्ररूपण है।

1.7 कषाय प्राभृत के पन्द्रह अधिकार—

1.7.1 पेज्जदोष विभक्ति—

प्रकृत कषायप्राभृत पन्द्रह अधिकारों में बटा हुआ है। उनमें से पहला अधिकार पेज्जदोष विभक्ति है। मालूम होता है यह अधिकार कषायप्राभृत के पेज्जदोषप्राभृत दूसरे नाम की मुख्यता से रखा गया है। अगले चौदह अधिकारों में जिस प्रकार कषाय की बन्ध, उदय, सत्त्व आदि विविध दशाओं के द्वारा कषायों का विस्तृत व्याख्यान किया है उस प्रकार पेज्जदोष का विविध दशाओं के द्वारा व्याख्यान न करके केवल उदय की प्रधानता से व्याख्यान किया गया है तथा अगले चौदह अधिकारों में कषाय का व्याख्यान करते हुए यथासंभव तीन दर्शनमोहनीय को गर्भित करके और कहीं पृथक् रूप से उनकी विविध दशाओं का भी जिस प्रकार व्याख्यान किया है उस प्रकार पेज्जदोषविभक्ति अधिकार में नहीं किया गया है किन्तु वहाँ उसके व्याख्यान को सर्वथा छोड़ दिया गया है।

अगले चौदह अधिकार ये हैं—

स्थितिविभक्ति, अनुभागविभक्ति, प्रदेशविभक्ति–झीणाझीण–स्थित्यन्तिक, बन्धक, वेदक, उपयोग, चतुःस्थान, व्यञ्जन, दर्शनमोहोपशामना, दर्शनमोहक्षपणा, संयमासंयमलब्धि, संयम लब्धि, चारित्रमोहोपशामना और चारित्रमोहक्षपणा।

इनमें से प्रारंभ के तीन अधिकारों में सत्त्व में स्थित मोहनीय कर्म का, बन्धक में मोहनीय के बन्ध और संक्रम का, वेदक और उपयोग में मोहनीय के उदय, उदीरणा और वेदक काल का, चतुःस्थान में चार प्रकार की अनुभाग शक्ति का, व्यञ्जन में क्रोधादिक के एकार्थक नामों का मुख्यतया कथन है। शेष सात अधिकारों का विषय उनके नामों से ही स्पष्ट हो जाता है।

संक्षेप में इन अधिकारों का बँटवारा किया जाय तो यह कहना होगा कि प्रारंभ के आठ अधिकारों में संसार के कारणभूत मोहनीय कर्म की विविध दशाओं का वर्णन है। अन्तिम सात अधिकारों में आत्म परिणामों के विकास से शिथिल होते हुए मोहनीय कर्म की जो विविध दशाएँ होती हैं उनका वर्णन है।

1.7.2 स्थिति विभक्ति—

जब कोई एक विवक्षित पदार्थ किसी दूसरे पदार्थ को आवृत करता है या उसकी शक्ति का घात करता है तब साधारणतया आवरण करने वाले पदार्थ में आवरण करने का स्वभाव, आवरण करने का काल, आवरण करने की शक्ति का हीनाधिकभाव और आवरण करने वाले पदार्थ का परिमाण ये चार अवस्थाएँ एक साथ प्रकट होती हैं। चूंकि आत्मा आव्रियमाण है और कर्म आवरण, अतः कर्म के द्वारा आत्मा के आवृत होने पर कर्म की भी उक्त चार अवस्थाएँ होती हैं जो कि आवरण करने के पहले समय में ही सुनिश्चित हो जाती हैं। आगम में इनको प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशबन्ध कहा है। इस प्रकार कर्म की चार अवस्थाएँ हैं फिर भी श्री गुणधर भट्टारक ने प्रकृतिबन्ध को स्वतन्त्र अधिकार नहीं माना है क्योंकि प्रकृति, स्थिति और अनुभाग का अविनाभावी है अतः उसका उक्त अधिकारों में अन्तर्भाव कर लिया है। इस प्रकार यद्यपि दूसरे अधिकार का नाम स्थिति विभक्ति है पर उसमें प्रकृति विभक्ति और स्थिति विभक्ति दोनों का वर्णन किया है।

विभक्ति शब्द का अर्थ विभाग है। यह विभक्ति नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, गणना, संस्थान और भाव के भेद से अनेक प्रकार की है परन्तु प्रकृत में द्रव्यविभक्ति के तद्व्यतिरिक्त भेद का जो कर्मविभक्ति भेद है वह लिया गया है। यद्यपि इस कषायप्राभृत में एक मोहनीय कर्म का ही विशद वर्णन है पर वह आठ कर्मों में से एक है अतः उसके साथ

विभक्ति शब्द के लगाने में कोई आपत्ति नहीं है। मोहनीय का स्वभाव सम्यक्त्व और चारित्र का विनाश करना है। इस प्रकृति विभक्ति के मूलप्रकृतिविभक्ति और उत्तर प्रकृति विभक्ति ये दो भेद हैं।

इनमें से मूलप्रकृति विभक्ति का सादि आदि अनुयोगद्वारों के द्वारा विवेचन किया है। उत्तरप्रकृतिविभक्ति के एकैक उत्तरप्रकृतिविभक्ति और प्रकृतिस्थान उत्तरप्रकृतिविभक्ति ये दो भेद हैं। जहाँ मोहनीय की अट्ठाईस प्रकृतियों का पृथक्-पृथक् कथन किया है उसे एकैक उत्तरप्रकृतिविभक्ति कहते हैं तथा जहाँ मोहनीय के अट्ठाईस, सत्ताईस आदि प्रकृति रूप सत्त्वस्थानों का कथन किया है उसे प्रकृतिस्थान उत्तरप्रकृतिविभक्ति कहते हैं। इनमें से एकैक उत्तरप्रकृतिविभक्ति का समुत्कीर्तना आदि अनुयोगद्वारों के द्वारा और प्रकृतिस्थान उत्तरप्रकृतिविभक्ति का स्थानसमुत्कीर्तना आदि के द्वारा कथन किया है।

स्थिति विभक्ति—जिसमें चौदह मार्गणाओं का आश्रय लेकर मोहनीय के अट्ठाईस भेदों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति बतलाई है उसे स्थितिविभक्ति कहते हैं। इसके मूलप्रकृतिस्थितिविभक्ति और उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्ति इस प्रकार दो भेद हैं। एक समय में मोहनीय के जितने कर्मस्कन्ध बंधते हैं उनके समूह को मूलप्रकृति कहते हैं और इसकी स्थिति को मूलप्रकृतिस्थिति कहते हैं तथा अलग-अलग मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की स्थिति को उत्तरप्रकृतिस्थिति कहते हैं। इनमें से मूलप्रकृतिस्थितिविभक्ति का सर्वविभक्ति आदि अनुयोगद्वारों के द्वारा कथन किया है और उत्तर प्रकृतिस्थिति का श्रद्धाच्छेद आदि अनुयोगद्वारों के द्वारा कथन किया है।

1.7.3 अनुभाग विभक्ति—

कर्मों में जो अपने कार्य के करने की शक्ति पाई जाती है उसे अनुभाग कहते हैं। इसका विस्तार से जिस अधिकार में कथन किया है उसे अनुभागविभक्ति कहते हैं। इसके भी मूलप्रकृति अनुभागविभक्ति और उत्तरप्रकृति अनुभागविभक्ति ये दो भेद हैं। सामान्य मोहनीय कर्म के अनुभाग का विस्तार से जिसमें कथन किया है उसे मूलप्रकृति अनुभागविभक्ति कहते हैं तथा मोहनीयकर्म के उत्तर भेदों के अनुभाग का विस्तार से जिसमें कथन किया है उसे उत्तर प्रकृति अनुभागविभक्ति कहते हैं। इनमें से मूलप्रकृति अनुभागविभक्ति का संज्ञा आदि अनुयोग द्वारों के द्वारा और उत्तप्रकृतिअनुभागविभक्ति का संज्ञा आदि अधिकार में कथन किया है।

1.7.4 प्रदेशविभक्ति-झीणाझीण-स्थित्यन्तिक—

प्रदेशविभक्ति के दो भेद हैं—मूलप्रकृति प्रदेशविभक्ति और उत्तरप्रकृतिप्रदेशविभक्ति। मूलप्रकृतिप्रदेशविभक्ति का भागाभाग आदि अधिकारों में कथन किया है तथा उत्तर प्रकृतिप्रदेशविभक्ति का भी भागाभाग आदि अधिकारों में कथन किया है।

झीणाझीण—किस स्थिति में प्रदेश उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण और उदय के योग्य और अयोग्य हैं, इसका झीणाझीण अधिकार में कथन किया गया है। जो प्रदेश उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण और उदय के योग्य हैं उन्हें झीण तथा जो उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण और उदय के योग्य नहीं हैं उन्हें अझीण कहा है। इस झीणाझीण का समुत्कीर्तना आदि चार अधिकारों में वर्णन है।

स्थित्यन्तिक—स्थिति को प्राप्त होने वाले प्रदेश स्थितिक या स्थित्यन्तिक कहलाते हैं अतः उत्कृष्ट स्थिति को प्राप्त, जघन्य स्थिति को प्राप्त आदि प्रदेशों का इस अधिकार में कथन है। इसका समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व इन तीन अधिकारों में कथन किया है। जो कर्म बन्धसमय से लेकर उस कर्म की जितनी स्थिति है उतने काल तक सत्ता में रह कर अपनी स्थिति के अन्तिम समय में उदय में दिखाई देता है वह उत्कष्ट स्थितिप्राप्त कर्म कहा जाता है। जो कर्म बन्ध के समय जिस स्थिति में निक्षिप्त हुआ है अनन्तर उसका उत्कर्षण या अपकर्षण होने पर भी उसी स्थिति को प्राप्त होकर जो उदयकाल में दिखाई देता है उसे निषेकस्थितिप्राप्त कर्म कहते हैं। बन्ध के समय जो कर्म

जिस स्थिति में निक्षिप्त हुआ है उत्कर्षण और अपकर्षण न होकर उसी स्थिति में रहते हुए यदि वह उदय में आता है तो उसे अधानिषेकस्थिति प्राप्त कर्म कहते हैं। जो कर्म जिस किसी स्थिति को प्राप्त होकर उदय में आता है उसे उदयनिषेकस्थिति प्राप्त कर्म कहते हैं। इस प्रकार इन सबका कथन इस अधिकार में किया है।

1.7.5 बन्धक—

बन्ध और संक्रम इस प्रकार बन्ध के दो भेद हैं। मिथ्यात्वादि कारणों से कर्मभाव के योग्य कार्माण पुद्गल स्कन्धों का जीव के प्रदेशों के साथ एक क्षेत्रावगाह संबंध को बन्ध कहते हैं। इसके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश ये चार भेद हैं। जिस अनुयोग द्वार में इसका कथन है उसे बन्ध अनुयोगद्वार कहते हैं। इस प्रकार बंधे हुए कर्मों के यथायोग्य अपने अवान्तर भेदों में संक्रान्त होने को संक्रम कहते हैं। इसके प्रकृतिसंक्रम आदि अनेक भेद हैं। इसका जिस अनुयोगद्वार में विस्तार से कथन किया है उसे संक्रम अनुयोगद्वार कहते हैं। बन्ध अनुयोगद्वार में इन दोनों का कथन किया है। बन्ध और संक्रम दोनों की बन्ध संज्ञा होने का यह कारण है कि बन्ध के अकर्मबन्ध और कर्मबन्ध ये दो भेद हैं। नवीन बन्ध को अकर्मबन्ध और बंधे हुए कर्मों के परस्पर संक्रान्त होकर बंधने को कर्मबन्ध कहते हैं अतः दोनों को बन्ध संज्ञा देने में कोई आपत्ति नहीं है।

इस अधिकार में एक सूत्रगाथा आती है, जिसके पूर्वार्ध द्वारा प्रकृतिबन्ध आदि चार प्रकार के बन्धों की और उत्तरार्ध द्वारा प्रकृतिसंक्रम आदि चार प्रकार के संक्रमों की सूचना की है। बन्ध का वर्णन तो इस अधिकार में नहीं किया है। उसे अन्यत्र से देख लेने की प्रेरणा की गई है किन्तु संक्रम का वर्णन खूब विस्तार से किया है। प्रारम्भ में संक्रम का निक्षेप करके प्रकृत में प्रकृति संक्रम से प्रयोजन बतलाया है और उसका निरूपण तीन गाथाओं के द्वारा किया है। उसके पश्चात् 32 गाथाओं से प्रकृतिस्थान संक्रम का वर्णन किया है। एक प्रकृति के दूसरी प्रकृतिरूप हो जाने को प्रकृतिसंक्रम कहते हैं, जैसे—मिथ्यात्व प्रकृति का सम्यक्त्व और सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति में संक्रम हो जाता है और एक प्रकृतिस्थान के अन्य प्रकृतिस्थान रूप हो जाने को प्रकृतिस्थानसंक्रम कहते हैं। जैसे—मोहनीयकर्म के सत्ताईस प्रकृतिक सत्त्वस्थान का संक्रम अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि में होता है। किस प्रकृति का किस प्रकृतिरूप संक्रम होता है और किस प्रकृतिरूप संक्रम नहीं होता तथा किस प्रकृतिस्थान का किस प्रकृतिस्थान में संक्रम होता है और किस प्रकृतिस्थान में संक्रम नहीं होता, आदि बातों का विस्तार से विवेचन इस अध्याय में किया गया है। यह अधिकार बहुत विस्तृत है।

1.7.6 वेदक—

इस अधिकार में उदय और उदीरणा का कथन है। कर्मों का अपने समय पर जो फलोदय होता है उसे उदय कहते हैं और उपायविशेष से असमय में ही उनका जो फलोदय होता है उसे उदीरणा कहते हैं। चूँकि दोनों ही अवस्थाओं में कर्मफल का वेदन—अनुभवन करना पड़ता है इसलिये उदय और उदीरणा दोनों को ही वेदक कहा जाता है। इस अधिकार में चार गाथाएँ हैं, जिनके द्वारा ग्रंथकार ने उदय-उदीरणाविषयक अनेक प्रश्नों का समवतार किया है और चूर्णिसूत्रकार ने उनका आलम्बन लेकर विस्तार से विवेचन किया है। पहली गाथा के द्वारा प्रकृति उदय, प्रकृति उदीरणा और उनके कारण द्रव्यादि का कथन किया है। दूसरी गाथा के द्वारा स्थिति उदीरणा, अनुभाग उदीरणा, प्रदेश उदीरणा तथा उदय का कथन किया है। तीसरी गाथा के द्वारा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशविषयक भुजाकार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य का कथन किया है अर्थात् यह बतलाया है कि कौन बहुत प्रकृतियों की उदीरणा करता है और कौन कम प्रकृतियों की उदीरणा करता है तथा प्रतिसमय उदीरणा करने वाला जीव कितने समय तक निरन्तर उदीरणा करता है, आदि। चौथी गाथा के द्वारा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशविषयक बंध, संक्रम, उदय, उदीरणा और सत्त्व के अल्पबहुत्व का कथन किया गया है। यह अधिकार भी विशेष विस्तृत है।

1.7.7 उपयोग—

इस अधिकार में क्रोधादि कषायों के उपयोग का स्वरूप बतलाया गया है। इसमें सात गाथाएँ हैं जिनमें बतलाया गया है कि एक जीव के एक कषाय का उदय कितने काल तक रहता है ? किस जीव के कौन सी कषाय बार-बार उदय में आती है ? एक भव में एक कषाय का उदय कितनी बार होता है और एक कषाय का उदय कितने भवों तक रहता है ? जितने जीव वर्तमान में जिस कषाय में विद्यमान हैं क्या वे उतने ही पहले भी उसी कषाय में विद्यमान थे और क्या आगे भी विद्यमान रहेंगे ? आदि कषायविषयक बातों का विवेचन इस अधिकार में किया गया है ?

1.7.8 चतुःस्थान—

घाति कर्मों में शक्ति की अपेक्षा लता आदि रूप चार स्थानों का विभाग किया जाता है। उन्हें क्रमशः एक स्थान, द्विस्थान, त्रिस्थान और चतुःस्थान कहते हैं। इस अधिकार में क्रोध, मान, माया और लोभकषाय के उन चारों स्थानों का वर्णन है इसलिये इस अधिकार का नाम चतुःस्थान है। इसमें 16 गाथाएँ हैं। पहली गाथा के द्वारा क्रोध, मान, माया और लोभ के चार-चार प्रकार होने का उल्लेख किया है और दूसरी, तीसरी तथा चौथी गाथा के द्वारा वे प्रकार बतलाये हैं। पत्थर, पृथिवी, रेत और पानी में हुई लकीर के समान क्रोध चार प्रकार का होता है। पत्थर का स्तम्भ, हड्डी, लकड़ी और लता के समान चार प्रकार का मान होता है, आदि। चारों कषायों के इन सोलह स्थानों में कौन किससे अधिक होता है कौन किससे हीन होता है ? कौन स्थान सर्वघाती है और कौन स्थान देशघाती है ? क्या सभी गतियों में सभी स्थान होते हैं या कुछ अन्तर है ? किस स्थान का अनुभवन करते हुए किस स्थान का बंध होता है और किस स्थान का अनुभवन नहीं करते हुए किस स्थान का बंध नहीं होता ? आदि बातों का वर्णन इस अधिकार में है।

1.7.9 व्यञ्जन—

इस अधिकार में पाँच गाथाओं के द्वारा क्रोध, मान, माया और लोभ के पर्यायवाची शब्दों को बतलाया है। जैसे- क्रोध के क्रोध, रोष, द्वेष आदि, मान के मद, दर्प, स्तम्भ आदि, माया के निकृति, वंचना आदि और लोभ के काम, राग, निदान आदि। इनके द्वारा ग्रंथकार ने यह बतलाया है किस-किस कषाय में कौन-कौन बातें आती हैं। इन पर्याय शब्दों से प्रत्येक कषाय का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

1.7.10 दर्शनमोहोपशामना—

इस अधिकार में दर्शनमोहनीय कर्म की उपशमना का वर्णन है। दर्शनमोहनीय की उपशमना के लिये जीव तीन करण करता है—अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। प्रारम्भ में ग्रंथकार ने चार गाथाओं के द्वारा अधः- प्रवृत्तकरण के प्रथम समय से लेकर नीचे का और ऊपर की अवस्थाओं में होने वाले कार्यों का प्रश्नरूप में निर्देश किया है। जैसे पहली गाथा में प्रश्न किया गया है कि दर्शनमोहनीय की उपशमना करने वाले जीव के परिणाम कैसे होते हैं ? उनके कौन योग, कौन कषाय, कौन उपयोग, कौन लेश्या और कौन सा वेद होता है आदि ? इन सब प्रश्नों का समाधान करके चूर्णिसूत्रकार ने तीनों करणों का स्वरूप तथा उनमें होने वाले कार्यों का विवेचन किया है। इसके बाद पन्द्रह गाथाओं के द्वारा दर्शनमोह के उपशामक की विशेषताएँ तथा सम्यग्दृष्टि का स्वभाव आदि बतलाया है।

1.7.11 दर्शनमोह की क्षपणा—

इस अधिकार के प्रारम्भ में पांच गाथाओं के द्वारा बतलाया है कि दर्शनमोह की क्षपणा का प्रारम्भ कर्मभूमिया मनुष्य करता है। उसके कम से कम तेजोलेश्या अवश्य होती है, क्षपणा का काल अन्तर्मुहूर्त होता है। दर्शनमोह की क्षपणा होने पर जिस भव में क्षपणा का प्रारम्भ किया है उसके सिवाय अधिक से अधिक तीन भव धारण करके मोक्ष हो जाता है आदि। दर्शनमोह के क्षपण के लिये भी अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण का होना आवश्यक है

अतः चूर्णिसूत्रकार ने इन तीनों करणों का विवेचन तथा उनमें होने वाले कार्यों का दिग्दर्शन इस अधिकार में भी विस्तार से किया है और बतलाया है कि जीव दर्शनमोह की क्षपणा का प्रस्थापक कब होता है तथा वह मरकर कहाँ-कहाँ जन्म ले सकता है ?

1.7.12 देशविरत—

इस अधिकार में संयमासंयमलब्धि का वर्णन है। अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय के अभाव से देशचारित्र को प्राप्त करने वाले जीव के जो विशुद्ध परिणाम होते हैं उसे संयमासंयमलब्धि कहते हैं। जो उपशम सम्यक्त्व के साथ संयमासंयम को प्राप्त करता है उसके तीनों ही करण होते हैं किन्तु उसकी विवक्षा यहाँ नहीं की है क्योंकि उसका अन्तर्भाव सम्यक्त्व की उत्पत्ति में ही कर लिया गया है अतः उसे छोड़कर जो वेदक सम्यग्दृष्टि या वेदकप्रायोग्य मिथ्यादृष्टि संयमासंयम को प्राप्त करता है उसका प्ररूपण इस अधिकार में किया है। उसके प्रारम्भ के दो ही करण होते हैं, तीसरा अनिवृत्तिकरण नहीं होता है अतः इस अधिकार में दोनों करणों में होने वाले कार्यों का विस्तार से विवेचन किया गया है। इस अधिकार में केवल एक ही गाथा है।

1.7.13 संयमलब्धि—

जो गाथा 12 वें देशविरत अधिकार में है वही गाथा इस अधिकार में भी है। संयमासंयमलब्धि के ही समान विवक्षित संयमलब्धि में भी दो ही करण होते हैं, जिनका विवेचन संयमासंयमलब्धि की ही तरह बतलाया है। अन्त में संयमलब्धि से युक्त जीवों का निरूपण आठ अनुयोग द्वारों से किया है।

1.7.14 चारित्रमोहनीय की उपशामना—

इस अधिकार में आठ गाथाएं हैं। पहली गाथा के द्वारा, उपशामना कितने प्रकार की है, किस-किस कर्म का उपशम होता है, आदि प्रश्नों का अवतार किया गया है। दूसरी गाथा के द्वारा, निरुद्ध चारित्रमोह प्रकृति की स्थिति के कितने भाग का उपशम करता है, कितने भाग का संक्रमण करता है, कितने भाग की उदीरणा करता है आदि प्रश्नों का अवतार किया गया है। तीसरी गाथा के द्वारा निरुद्ध चारित्रमोहनीय प्रकृति का उपशम कितने काल में करता है, उपशम करने पर संक्रमण और उदीरणा कब करता है, आदि प्रश्नों का अवतार किया गया है। चौथी गाथा के द्वारा, आठ करणों में से उपशामक के कब, किस करण की व्युच्छित्ति होती है आदि प्रश्नों का अवतार किया गया है। जिनका समाधान चूर्णिसूत्रकार ने विस्तार से किया है। इस प्रकार इन चार गाथाओं के द्वारा उपशामक का निरूपण किया गया है और शेष चार गाथाओं के द्वारा उपशामक के पतन का निरूपण किया गया है, जिसमें प्रतिपात के भेद आदि का सुन्दर विवेचन है।

1.7.15 चारित्रमोह की क्षपणा—

यह अधिकार बहुत विस्तृत है। इसमें क्षपकश्रेणी का विवेचन विस्तार से किया गया है। अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के बिना चारित्रमोह का क्षय नहीं हो सकता अतः प्रारम्भ में चूर्णिकार ने इन तीनों करणों में होने वाले कार्यों का विस्तार से वर्णन किया है। नौवें गुणस्थान के अवेदभाग में पहुंचने पर जो कार्य होता है उसका विवेचन गाथा सूत्रों से प्रारम्भ होता है। इस अधिकार में मूलगाथाएँ 28 हैं और उसकी भाष्य गाथाएँ 86 हैं। इस प्रकार इसमें कुल गाथाएँ 114 हैं। जिसका बहुभाग मोहनीय कर्म की क्षपणा से सम्बन्ध रखता है। अन्त की कुछ गाथाओं में कषाय का क्षय हो जाने के पश्चात् जो कुछ कार्य होता है उसका विवेचन किया है। अन्त की गाथा में लिखा है कि जब तक यह जीव कषाय का क्षय हो जाने पर भी छद्मस्थ पर्याय से नहीं निकलता है तब तक ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का नियम से वेदन करता है। उसके पश्चात् दूसरे शुक्लध्यान से समस्त घातिकर्मों को समूल नष्ट करके सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होकर विहार करता है। कषायप्राभृत यहाँ समाप्त हो जाता है किन्तु सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो जाने के बाद भी जीव के चार अघातिया कर्म शेष रह जाते हैं अतः उनके क्षय का विधान चूर्णिसूत्रकार ने पश्चिमस्कन्ध नामक

अनुयोगद्वार के द्वारा किया है और वह द्वार चारित्रमोह की क्षपणा नामक अधिकार की समाप्ति के बाद प्रारम्भ होता है। इसमें चार अघाति कर्मों का क्षय बतलाकर जीव को मोक्ष की प्राप्ति होने का कथन किया गया है।

1.8 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न—

प्रश्न 1-द्वादशांग श्रुत की रचना किसने की ?

(क) भगवान महावीर ने ☐
(ख) श्री गौतम स्वामी ने ☐
(ग) भद्रबाहु स्वामी ने ☐

प्रश्न 2-पेज्ज कहते हैं—

(क) राग को ☐
(ख) द्वेष को ☐
(ग) मोह को ☐

प्रश्न 3-..... के बिना राग और द्वेष नहीं रह सकते हैं।

(क) पाप ☐
(ख) कषाय ☐
(ग) इनमें से कोई नहीं ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न—

प्रश्न 1-कषायप्राभृत के रचियता कौन थे एवं इनका काल कौन सा रहा ?

प्रश्न 2-"प्रकृति विभक्ति" शब्द का क्या अर्थ है ?

प्रश्न 3-"संक्रम" किसे कहते हैं ?

प्रश्न 4-"चूर्णिसूत्र" में आचार्य श्री यतिवृषभ ने कषाय के कितने भेद गिनाए हैं ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न—

प्रश्न 1-कषायप्राभृत के पन्द्रह अधिकारों के नाम बताते हुए किन्हीं तीन अधिकारों का वर्णन कीजिए ?

पाठ-2 – षट्खण्डागम-जैनागम का प्राण

2.1 ग्रंथ नाम—

आचार्य श्री पुष्पदन्त और भूतबलि द्वारा जो ग्रंथ रचा गया उसका नाम क्या था ? स्वयं सूत्रों में तो ग्रंथ का कोई नाम हमारे देखने में नहीं आया किन्तु धवलाकार ने ग्रंथ की उत्थानिका में ग्रंथ के मंगल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कर्ता, इन छह ज्ञातव्य बातों का परिचय कराया है। वहां इसे '**खंडसिद्धान्त**' कहा है और इसके खंडों की संख्या छह बतलाई है। इस प्रकार धवलाकार ने इस ग्रंथ का नाम '**षट्खंड सिद्धान्त**' प्रकट किया है। उन्होंने यह भी कहा है कि सिद्धान्त और आगम एकार्थवाची हैं। धवलाकार के पश्चात् इन ग्रंथों की प्रसिद्धि आगम **परमागम** व षट्खंडागम नाम से ही विशेषतः हुई। अपभ्रंश महापुराण के कर्ता आचार्य श्री पुष्पदन्त ने धवल और जयधवला को **आगम सिद्धान्त,** गोम्मटसार के टीकाकार ने परमागम तथा श्रुतावतार के कर्ता आचार्य श्री इन्द्रनन्दि ने षट्खंडागम कहा है और इन ग्रंथों को आगम कहने की बड़ी भारी सार्थकता भी है। **सिद्धान्त** और **आगम** यद्यपि साधारणतः पर्यायवाची गिने जाते हैं, किन्तु निरूपित और सूक्ष्मार्थ की दृष्टि से उनमें भेद है। कोई भी निश्चित या सिद्ध मत सिद्धान्त कहा जा सकता है किन्तु आगम वही सिद्धान्त कहलाता है जो आप्तवाक्य है और पूर्व परम्परा से आया है। इस प्रकार सभी आगम को सिद्धान्त कह सकते हैं किन्तु सभी सिद्धान्त आगम नहीं कहला सकते। सिद्धान्त सामान्य संज्ञा है और आगम विशेष।

इस विवेचन के अनुसार प्रस्तुत ग्रंथ पूर्णरूप से **आगम सिद्धान्त** ही है। धरसेनाचार्य ने पुष्पदन्त और भूतबलि को वे ही सिद्धान्त सिखाये जो उन्हें उनसे **पूर्ववर्ती आचार्यों** द्वारा प्राप्त हुए और जिनकी परम्परा महावीर स्वामी तक पहुँचती है। श्री आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलि ने भी उन्हीं आगम सिद्धान्तों को पुस्तकारूढ़ किया और टीकाकार ने भी उनका विवेचन पूर्व मान्यताओं और पूर्व आचार्यों के अनुसार ही किया है जैसा कि उनकी टीका में स्थान-स्थान पर प्रकट है। आगम की यह भी विशेषता है कि उसमें हेतुवाद नहीं चलता क्योंकि आगम अनुमान आदि की अपेक्षा नहीं रखता किन्तु स्वयं प्रत्यक्ष के बराबर का प्रमाण माना जाता है।

आचार्य श्री पुष्पदन्त व भूतबलि की रचना तथा उस पर आचार्य श्री वीरसेन की टीका इसी पूर्व परम्परा की मर्यादा को लिये हुए है इसीलिये आचार्य श्री इन्द्रनन्दि ने उसे आगम कहा है और इसी सार्थकता को मान देकर आचार्य श्री इन्द्रनन्दि द्वारा निर्दिष्ट नाम **षट्खंडागम** स्वीकार किया गया है।

2.2 छह खण्डों के नाम व विषय विवेचन—

2.2.1 'जीवट्ठाण'—

षट्खंडों में प्रथम खंड का नाम '**जीवट्ठाण**' है। उसके अन्तर्गत 1 सत् , 2 संख्या, 3 क्षेत्र, 4 स्पर्शन, 5. काल, 6. अन्तर, 7. भाव और 8. अल्पबहुत्व, ये आठ अनुयोगद्वार तथा 1 प्रकृति समुत्कीर्तना, 2 स्थानसमुत्कीर्तना, 3-5 तीन महादण्डक, 6 जघन्य स्थिति, **जीवट्ठाण 7 उत्कृष्ट स्थिति,** 8 सम्यक्त्वोत्पत्ति और 9 गति–आगति ये नौ चूलिकाएँ हैं। इस खंड का परिमाण धवलाकार ने अठारह हजार पद कहा है। पूर्वोक्त आठ अनुयोग द्वार और नौ चूलिकाओं में गुणस्थान और मार्गणाओं का आश्रय लेकर यहाँ विस्तार से वर्णन किया गया है।

2.2.2 खुद्दाबंध—दूसरा खंड **खुद्दाबंध** (क्षुल्लकबंध) है। इसके ग्यारह अधिकार हैं—1 स्वामित्व, 2 काल, 3 अन्तर, 4 भंगविचय, 5 द्रव्यप्रमाणानुगम, 6 क्षेत्रानुगम, 7 स्पर्शनानुगम, 8 नाना–जीव–काल, 9 नाना–जीव–अन्तर, 10 भागाभागानुगम और 11 अल्पबहुत्वानुगम। इस खंड में इन ग्यारह प्ररूपणाओं द्वारा कर्मबन्ध करने वाले जीव का कर्मबन्ध के भेदों सहित वर्णन किया गया है।

2.2.3 बंधस्वामित्वविचय—तीसरे खंड का नाम **बंधस्वामित्वविचय** है। कितनी प्रकृतियों का किस जीव के कहां तक बंध होता है, किसके नहीं होता है, कितनी प्रकृतियों की किस गुणस्थान में व्युच्छित्ति होती है, स्वोदय बंधरूप प्रकृतियाँ कितनी हैं और परोदय बंधरूप कितनी हैं, इत्यादि कर्मबंध संबंधी विषयों का बंधक जीव की अपेक्षा से इस खंड में वर्णन है।

2.2.4 वेदना—चौथे खंड का नाम वेदना है। इसके आदि में पुनः मंगलाचरण किया गया है। इसी खंड के अन्तर्गत कृति और वेदना अनुयोगद्वार हैं किन्तु वेदना के कथन की प्रधानता और अधिक विस्तार के कारण इस खंड का नाम वेदना रखा गया है।

कृति में औदारिकादि पांच शरीरों की संघातन और परिशातनरूप कृति का तथा भव के प्रथम और अप्रथम समय में स्थित जीवों के कृति, नोकृति और अवक्तव्य रूप संख्याओं का वर्णन है। 1. नाम, 2. स्थापना, 3 द्रव्य, 4. गणना, 5 ग्रंथ, 6 कारण और 7 भाव, ये कृति के सात प्रकार हैं, जिनमें से प्रकृत में गणनाकृति मुख्य बतलाई गई है।

वेदना में 1. निक्षेप, 2. नय, 3. नाम, 4. द्रव्य, 5. क्षेत्र, 6. काल, 7. भाव, 8. प्रत्यय, 9. स्वामित्व, 10. वेदना, 11. गति, 12. अनन्तर, 13 सन्निकर्ष, 14 परिमाण, 15. भागा–भागानुगम और 16. अल्पबहुत्वानुगम, इन सोलह अधिकारों के द्वारा वेदना का वर्णन है।

इस खंड का परिमाण **सोलह हजार** पद बतलाया गया है।

2.2.5 वर्गणा—पांचवें खंड का नाम वर्गणा है। इसी खंड में बंधनीय के अन्तर्गत वर्गणा अधिकार के अतिरिक्त स्पर्श, कर्म, प्रकृति और बन्धन का पहला भेद बंध, इन अनुयोग द्वारों का भी अन्तर्भाव कर लिया गया है।

स्पर्श में निक्षेप, नय आदि सोलह अधिकारों द्वारा तेरह प्रकार के स्पर्शों का वर्णन करके प्रकृत में कर्म स्पर्श से प्रयोजन बतलाया है।

कर्म में पूर्वोक्त सोलह अधिकारों द्वारा 1. नाम, 2. स्थापना, 3. द्रव्य, 4. प्रयोग, 5. समवधान, 6. अधः, 7 ईर्यापथ, 8. तप, 9. क्रिया और 10. भाव, इन दश प्रकार के कर्मों का वर्णन है।

प्रकृति में शील और स्वभाव को प्रकृति के पर्यायवाची बताकर उसके नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव, इन चार भेदों में से कर्म द्रव्य प्रकृति का पूर्वोक्त 16 अधिकारों द्वारा विस्तार से वर्णन किया गया है।

इस खंड का प्रधान अधिकार **बंधनीय** है, जिसमें 23 प्रकार की वर्गणाओं का वर्णन और उनमें से कर्मबन्ध के योग्य वर्गणाओं का विस्तार से कथन किया है।

2.2.6 महाबंध—आचार्य श्री इन्द्रनन्दि ने श्रुतावतार में कहा है कि आचार्य श्री भूतबलि ने पांच खंडों के आचार्य श्री पुष्पदन्त विरचित सूत्रों सहित छह हजार सूत्र रचने के पश्चात् महाबंध नाम के छठवें खंड की तीस हजार श्लोक प्रमाण रचना की।

धवला में जहाँ वर्गणाखंड समाप्त हुआ है वहां सूचना की गई है कि–

'जं तं बंधविहाणं तं चउव्विहं, पयडिबंधो ट्ठिदिबंधो अनुभागबंधो पदेसबंधो चेदि। एदेसिं चदुण्हं बंधाणं विहाणं भूदबलि–भडारएण **महाबंधे** सप्पवंचेण लिहिदं ति अम्हेहि एत्थ ण लिहिदं। तदो सयले महाबंधे एत्थ परूविदे बंधविहाणं समप्पदि'।

अर्थात् बंधविधान चार प्रकार का है—प्रकृति बंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध और प्रदेशबंध। इन चारों प्रकार के बंधों का विधान भूतबलि भट्टारक ने महाबंध में सविस्तार रूप से लिखा है, इस कारण हमने (वीरसेनाचार्य ने) उसे यहाँ नहीं लिखा। इस प्रकार से समस्त महाबंध के यहां प्ररूपण हो जाने पर बंध विधान समाप्त होता है।

ऐसा ही एक उल्लेख जयधवला में भी पाया जाता है जहाँ कहा गया है कि प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध

का वर्णन विस्तार से महाबंध में प्ररूपित है और उसे वहां से देख लेना चाहिये क्योंकि जो बात प्रकाशित हो चुकी है उसे पुनः प्रकाशित करने में कोई फल नहीं। यथा—

सो पुण पयडिट्ठिदिअणुभागपदेसबंधो बहुसो परूविदो (चूर्णिसूत्र)। सो उण गाहाए पुव्वद्धम्मि णिलीणो पयडि–ट्ठिदि–अणुभाग–पदेस–विसओ बंधो बहुसो गंथंतरेसु परूविदो त्ति तत्थेव वित्थरो दट्ठव्वो, ण एत्थ पुणे परूविज्जदे, पयासियपयासणे फलविसेसाणुवलंभादो। तदो महाबंधाणुसारेणेत्थ पयडि–ट्ठिद–अणुभाग–पदेसबंधेसु विहासियसमत्तेसु तदो बंधो समत्तो होई।

इससे आचार्य श्री इन्द्रनन्दि के कथन की पुष्टि होती है कि छठवां खंड स्वयं भूतबलि आचार्य द्वारा रचित सविस्तार पुस्तकारूढ़ है।

2.3 सत्कर्म पाहुड—

किन्तु आचार्य इन्द्रनन्दि ने श्रुतावतार में आगे चलकर कहा है कि वीरसेनाचार्य ने एलाचार्य से सिद्धान्त सीखने के अनन्तर निबन्धनादि अठारह अधिकारों द्वारा सत्कर्म नामक छठवें खंड का संक्षेप से विधान किया और इस प्रकार छहों खंडों की बहत्तर हजार ग्रंथ प्रमाण धवला टीका रची गई।

धवला में वर्गणाखंड की समाप्ति तथा उपर्युक्त आचार्य श्री भूतबलिकृत महाबंध की सूचना के पश्चात् निबंधन, प्रक्रम, उपक्रम, उदय, मोक्ष, संक्रम, लेश्या, लेश्याकर्म, लेश्यापरिणाम, सातासात, दीर्घः ह्रस्व, भवधारणीय, पुद्गलात्म, निधत्त–अनिधत्त, निकाचित–अनिकाचित, कर्मस्थिति, पश्चिमस्कंध और अल्पबहुत्व, इन अठारह अनुयोगद्वारों का कथन किया गया है और इस समस्त भाग को चूलिका कहा है। यथा—

एत्तो उवरिम गंथो चूलिया णाम।

आचार्य श्री इन्द्रनन्दि के उपर्युक्त कथनानुसार यही चूलिका संक्षेप से छठवां खंड ठहरता है और इसका नाम सत्कर्म प्रतीत होता है तथा इसके सहित धवला षट्खंडागम 72 हजार श्लोक प्रमाण सिद्ध होता है। विबुध श्रीधर के मतानुसार आचार्य श्री वीरसेनकृत 72 हजार प्रमाण समस्त धवला टीका का ही नाम सत्कर्म है। यथा—

अत्रान्तरे एलाचार्य भट्टारकपार्श्वे सिद्धांतद्वयं वीरसेननामा मुनिः पठित्वाऽपराण्यपि अष्टादशाधिकाराणि प्राप्य पंच खंडे षट् खण्डे संकल्प्य संस्कृतप्राकृतभाषया **सत्कर्मनामटीकां** द्वासप्ततिसहस्रप्रमितां **धवल**नामांकितां लिखाप्य विंशतिसहस्र कर्मप्राभृतं विचार्य वीरसेनो मुनिः स्वर्ग यास्यति। (विबुध श्रीधर, श्रुतावतार मा. ग्रं. मा. 21, पृ. 318)

दुर्भाग्यतः महाबंध (महाधवल) हमें उपलब्ध नहीं है, इस कारण महाबंध और सत्कर्म नामों की इस उलझन को सुलझाना कठिन प्रतीत होता है किन्तु मूडबिद्री में सुरक्षित महाधवल का जो थोड़ा सा परिचय उपलब्ध हुआ है उससे ज्ञात होता है कि यह ग्रंथ भी सत्कर्म नाम से है और उस पर एक पंचिकारूप विवरण है जिसके आदि में ही कहा गया है–

'वोच्छामि **संतकम्मे** पंचियरूवेण विवरणं सुमहत्थं। ..... चोव्वीसमणियोगद्दारेसु तत्थ कदिवेदणा त्ति जाणि अणियोगद्दाराणि **वेदणाखंडम्हि** पुणो फास (कम्म–पयडि–बंधणाणि) चत्तारि अणियोगद्दारेसु तत्थ बंध–बंधणिज्जणामणियोगेहि सह वग्गणाखंडम्हि, पुणो बंध–विधाणणामाणियोगो खुद्दाबंधम्हि सप्पवंचेण परूविदाणि। तो वि तस्सइगंभीरत्तादो अत्थ–विसम पदाणमत्थे थोरुद्धयेण (?) पंचियसरूवेण भणिस्सामो।

इसका भावार्थ यह है कि महाकर्मप्रकृति पाहुड के चौबीस अनुयोगद्वारों में से कृति और वेदना का वेदना खंड में, स्पर्श, कर्म, प्रकृति और बन्ध के बंध और बंधनीय का **वर्गणाखंड** में और बंधविधान नामक अनुयोगद्वार का खुद्दाबंध में विस्तार से वर्णन किया जा चुका है। इनसे शेष अठारह अनुयोगद्वार सब सत्कर्म में प्ररूपित किये गये हैं तो भी उनके अतिगंभीर होने से उसके विषय पदों का अर्थ संक्षेप में पंचिकारूप से यहां कहा जाता है।

इससे जान पड़ा कि महाधवल का मूलग्रंथ संतकम्म (सत्कर्म) नाम का है और उसमें महाकर्मप्रकृतिपाहुड के चौबीस अनुयोगद्वारों में से वेदना और वर्गणाखंड में वर्णित प्रथम छह को छोड़कर शेष निबंधनादि अठारह अनुयोगद्वारों का प्ररूपण है।

2.3.1 महाधवल या सत्कर्म की उक्त पंचिका कब की और किसकी है ?—

संभवतः यह वही पंचिका है जिसको आचार्य श्री इन्द्रनन्दि ने आचार्य श्री समन्तभद्र से भी पूर्व तुम्बुलूराचार्य द्वारा सात हजार श्लोक प्रमाण विरचित कहा है।

किन्तु जयधवला में एक स्थान पर स्पष्ट कहा गया है कि सत्कर्म महाधिकार में कृति, वेदनादि चौबीस अनुयोग द्वार प्रतिबद्ध हैं और उनमें उदय नामक अर्थाधिकार प्रकृति सहित स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों के अनुत्कृष्ट, उत्कृष्ट जघन्य व अजघन्य उदय के प्ररूपण में व्यापार करता है। यथा–

संतकम्ममहाहियारे कदि-वेदणादि-चउवीसमणियोगद्दारेसु पडिबद्धेसु उदओ णाम अत्थाहियारो ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसाणं पयडिसमण्णियाणमुक्कस्साणुक्कस्स-जहण्णाहण्णुदयपरूवणे य वावारो।

इससे जाना जाता है कि कृति, वेदनादि चौबीस अनुयोगद्वारों का ही समष्टिरूप से सत्कर्म महाधिकार नाम है और चूंकि ये चौबीस अधिकार तीसरे अर्थात् बंधस्वामित्वविचय के पश्चात् क्रम से वर्णन किये गये हैं अतः उस समस्त विभाग अर्थात् अन्तिम तीन खंडों का नाम संतकम्म या सत्कर्मपाहुड महाधिकार है।

किन्तु जैसा आगे चलकर ज्ञात होगा, इन्हीं चौबीस अनुयोगद्वारों से जीवट्ठाण के थोड़े से भाग को छोड़कर शेष समस्त षट्खंडागम की उत्पत्ति हुई है अतः जयधवला के उल्लेख पर से इस समस्त ग्रंथ का नाम भी सत्कर्म महाधिकार सिद्ध होता है। इस अनुमान की पुष्टि प्रस्तुत ग्रंथ के दो उल्लेखों से अच्छी तरह हो जाती है। पृ. 217 पर कषायपाहुड और सत्कर्मपाहुड के उपदेश में मतभेद का उल्लेख किया गया है। यथा—

'एसो संतकम्म–पाहुड–उवएसो। कसायपाहुड–उवएसो पुण.....'

आगे चलकर एक जगह पर शंका की गई है कि इनमें से एक वचन सूत्र और दूसरा असूत्र होना चाहिये और यह संभव भी है क्योंकि ये जिनेन्द्र वचन नहीं हैं किन्तु आचार्यों के वचन हैं। इसका समाधान किया गया है कि नहीं, सत्कर्म और कषायपाहुड दोनों ही सूत्र हैं क्योंकि उनमें तीर्थंकर द्वारा कथित, गणधर द्वारा रचित तथा आचार्य परम्परा से आगत अर्थ का ही ग्रंथ न किया गया है। यथा—

'आइरियकहियाणं संतकम्म–कसाय–पाहुडाणं कथं सुत्तत्तणमिदि चे ण.....।

यहां स्पष्टतः कषायपाहुड़ के साथ सत्कर्मपाहुड से प्रस्तुत समस्त षट्खंडागम से ही प्रयोजन हो सकता है और वह ठीक भी है क्योंकि पूर्वों की रचना में उक्त चौबीस अनुयोग द्वारों का नाम महाकर्म प्रकृतिपाहुड है। उसी का श्री धरसेनाचार्य गुरु ने मुनि श्री पुष्पदन्त भूतबलि द्वारा उद्धार कराया है, जैसा कि जीवट्ठाण के अन्त व खुद्धाबंध के आदि की एक गाथा से प्रकट होता है—

जयउ धरसेणणाहो जेण महाकम्मपयडिपाहुडसेलो।
बुद्धिसिरेणुद्धरिओ समप्पिओ पुप्फुयंतस्स।। (धवला अ. 475)

2.3.2 महाकर्म प्रकृति एवं सत्कर्म संशाए—

महाकर्म प्रकृति और सत्कर्म संज्ञाएं एक ही अर्थ की द्योतक हैं अतः सिद्ध होता है कि इस समस्त **षट्खंडागम** का नाम **सत्कर्म प्राभृत** है और चूंकि इसका बहुभाग धवला टीका में ग्रथित है अतः समस्त **धवला** को भी **सत्कर्म प्राभृत** कहना अनुचित नहीं। उसी प्रकार महाबंध या निबंधनादि अठारह अधिकार भी इसी के एक खंड होने से सत्कर्म कहे जा सकते हैं और जिस प्रकार खंड विभाग की दृष्टि से कृति का वेदनाखंड में स्पर्श, कर्म, प्रकृति तथा बंधन के

प्रथम भेद बंध का वर्गणाखंड में अन्तर्भाव कर लिया गया है उसी प्रकार निबन्धनादि अठारह अधिकारों का महाबंध नामक खंड में अंतर्भाव अनुमान किया जा सकता है जिससे महाधवलान्तर्गत उक्त पंचिका के कथन की सार्थकता सिद्ध हो जाती है क्योंकि सत्कर्म का एक विभाग होने से वह भी सत्कर्म कहा जा सकता है।

सत्कर्मप्राभृत षट्खंडागम तथा उसकी टीका धवला की इस रचना को देखने से ज्ञात होता है कि उसके मुख्यतः दो विभाग हैं। प्रथम विभाग के अन्तर्गत जीवट्ठाण, खुद्दाबंध व बंधस्वामित्वविचय हैं। इनका मंगलाचरण श्रुतावतार के आदि में एक ही बार जीवट्ठाण के आदि में किया गया है और उन सबका विषय भी जीव या बंधक की मुख्यता से है। **जीवट्ठाण** में गुणस्थान और मार्गणाओं की अपेक्षा सत् , संख्या आदि रूप से जीवतत्व का विचार किया गया है। **खुद्दाबंध** में सामान्य की अपेक्षा बंधक और **बंधस्वामित्वविचय** में विशेष की अपेक्षा बंधक का विवरण है।

2.3.3 श्रुतावतार—

दूसरे विभाग के आदि में पुनः मंगलाचरण व श्रुतावतार दिया गया है और उसमें यथार्थतः कृति, वेदना आदि चौबीस अधिकारों का क्रमशः वर्णन किया गया है और इस समस्त विभाग में प्रधानता से कर्मों की समस्त दशाओं का विवरण होने से उसकी विशेष संज्ञा सत्कर्मप्राभृत है। इन चौबीसों से द्वितीय अधिकार **वेदना** का विस्तार से वर्णन किये जाने के कारण उसे प्रधानता प्राप्त हो गई और उसके नाम से चौथा खंड खड़ा हो गया। बंधन के तीसरे भेद बंधनीय में वर्गणाओं का विस्तार से वर्णन आया और उसके महत्त्व के कारण **वर्गणा** नाम का पांचवां खंड हो गया। इसी बंधन के चौथे भेद बंधविधान के खूब विस्तार से वर्णन किये जाने के कारण उसका **महाबंध** नामक छठवां खंड बन गया और शेष अट्ठारह अधिकार उन्हीं के आजू बाजू की वस्तु रह गये।

2.3.4 जीवकाण्ड व कर्मकाण्ड रचना—

धवला की रचना के पश्चात् उसके सबसे बडे पारगामी विद्वान् नेमिचंद्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने इन दो ही विभागों को ध्यान में रखकर जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड की रचना की, ऐसा प्रतीत होता है। तथा उसके छहों खंडों का ख्याल करके उन्होंने गर्व के साथ कहा है कि 'जिस प्रकार एक चक्रवर्ती अपने चक्र के द्वारा छह खंड पृथिवी को निर्विघ्न रूप से अपने वश में कर लेता है, उसी प्रकार अपने मतिरूपी चक्रद्वारा मैंने छह खंड सिद्धान्त का सम्यक् प्रकार से साधन कर लिया—

जह चक्केण य चक्की छक्खंडं साहियं अविग्घेण।
तह मइ चक्केण मया छक्खंडं साहियं सम्मं।।397।। गो. क.।।

इससे आचार्य नेमिचंद्र को सिद्धान्त चक्रवर्ती का पद मिल गया और तभी से उक्त पूरे सिद्धान्त के ज्ञाता को इस पदवी से विभूषित करने की प्रथा चल पड़ी। जो इसके केवल प्रथम तीन खंडों में पारंगत होते थे उन्हें ही जान पड़ता है, त्रैविद्यदेव का पद दिया जाता था। श्रवणबेलगोला के शिलालेखों में अनेक मुनियों के नाम इन पदवियों से अलंकृत पाये जाते हैं। इन उपाधियों ने आचार्य श्री वीरसेन से पूर्व की सूत्राचार्य, उच्चारणाचार्य, व्याख्यानाचार्य, निक्षेपाचार्य और महावाचक की पदवियों का सर्वथा स्थान ले लिया किन्तु थोड़े ही काल में गोम्मटसार ने इन सिद्धान्तों का भी स्थान ले लिया और उनका पठन–पाठन सर्वथा रुक गया। आज कई शताब्दियों के पश्चात् इनके सुप्रचार का पुनः सुअवसर मिल रहा है।

2.4 षट्खण्डागम का द्वादशांग से सम्बन्ध—

दिगम्बर सम्प्रदाय की मान्यतानुसार षट्खंडागम और कषायप्राभृत ही ऐसे ग्रंथ हैं जिनका सीधा सम्बन्ध महावीर स्वामी की द्वादशांग वाणी से माना जाता है। शेष तब श्रुतज्ञान इससे पूर्व ही क्रमशः लुप्त व छिन्न-भिन्न हो गया। द्वादशांग

१. बारहवें अंग दृष्टिवादके चतुर्थ भेद पूर्वगतका द्वितीय भेद

आग्रायणीय पूर्व.

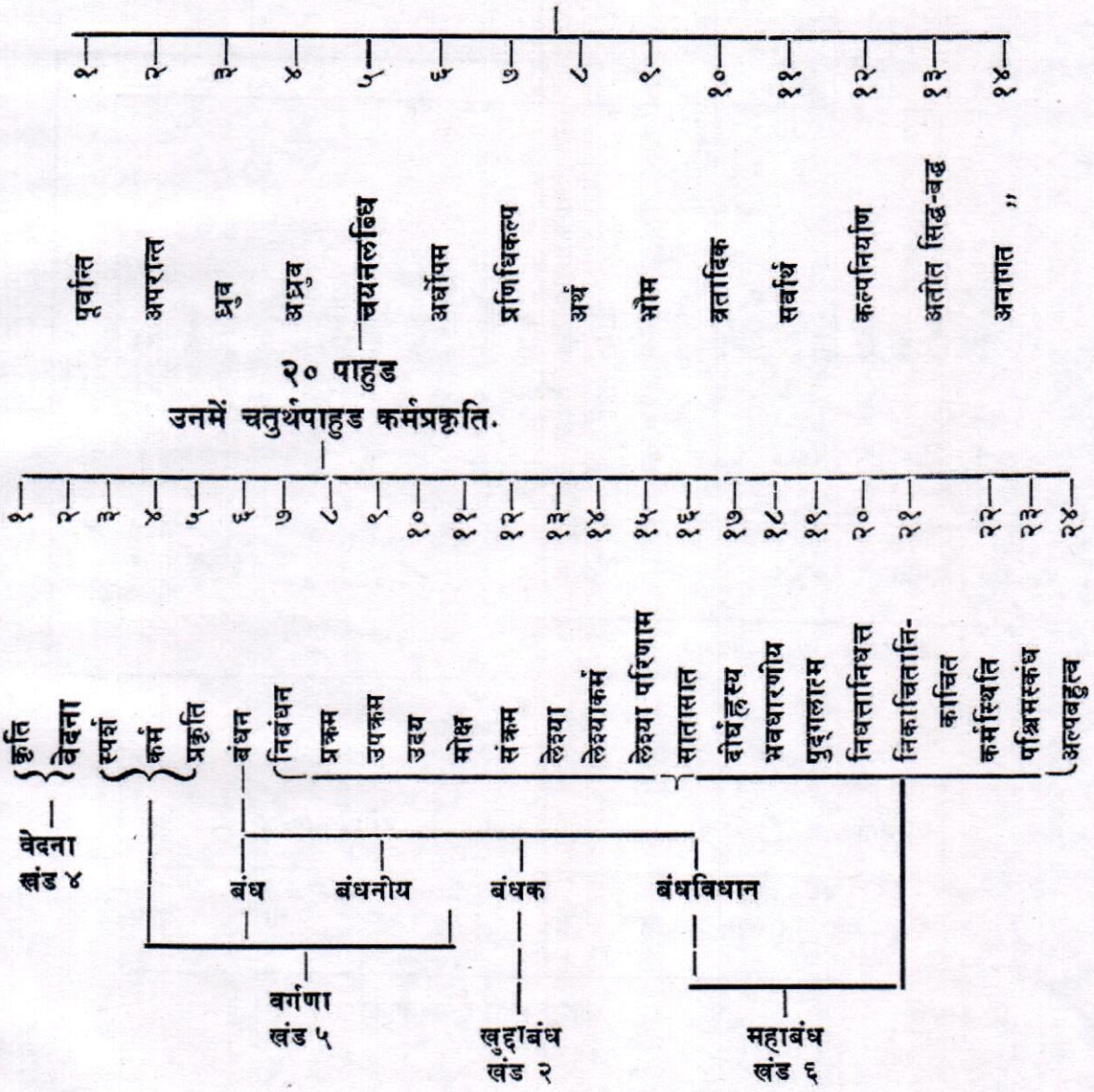

श्रुत का प्रस्तुत षट्खंडागम का द्वादशांग से सम्बन्ध ग्रंथ में विस्तार से परिचय कराया गया है।

बारहवें दृष्टिवाद के अन्तर्गत परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका ये पांच प्रभेद हैं। इनमें से पूर्वगत के चौदह भेदों में से द्वितीय अग्रायणीय पूर्व से ही जीवट्ठाण का बहुभाग और शेष पांच खंड संपूर्ण निकले हैं। जिनका

२ बंधविधान

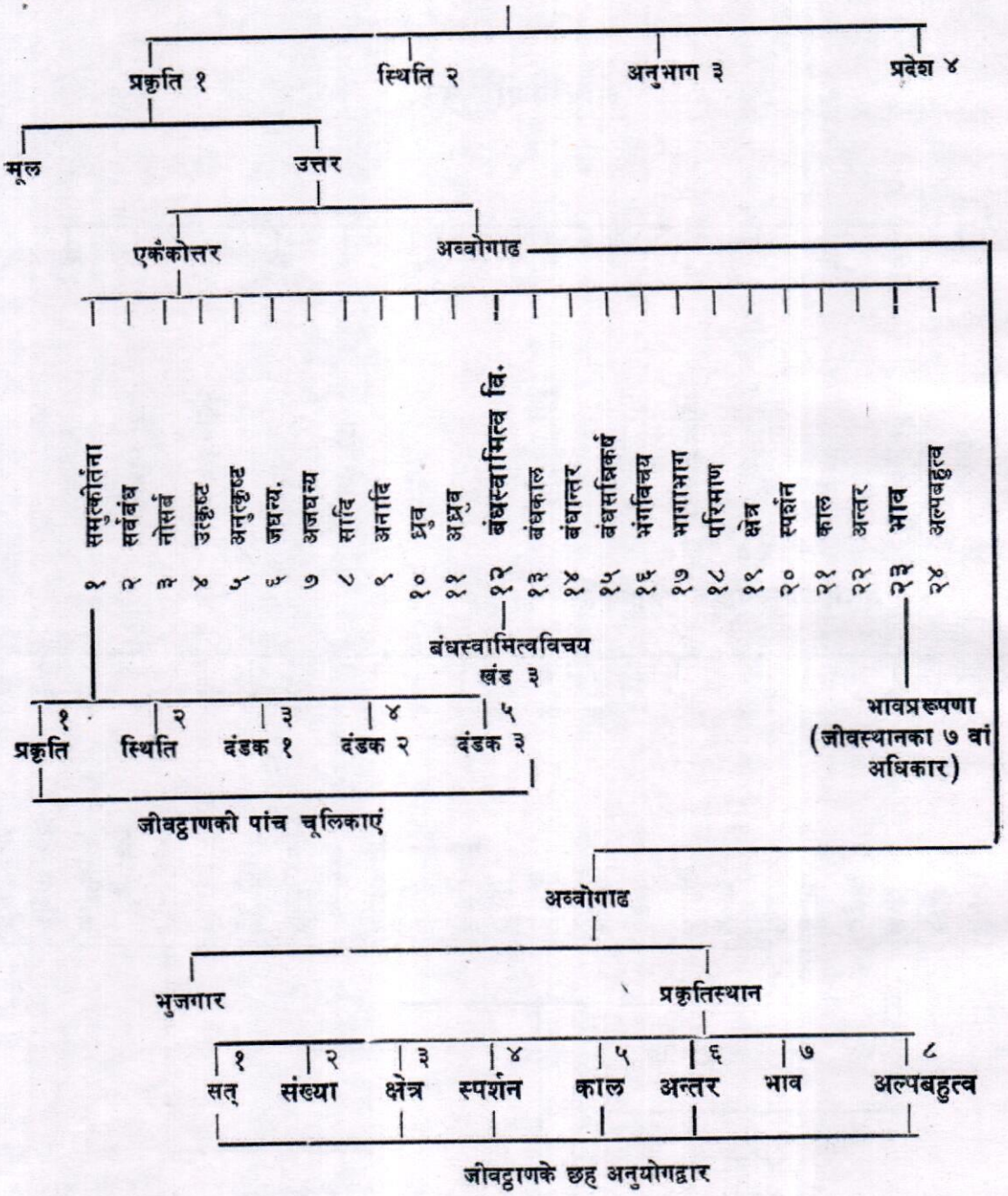

क्रमभेद वंशवृक्षों से स्पष्ट हो जायेगा।

इस वंशवृक्ष से स्पष्ट है कि अग्रायणीय पूर्व के चयनलब्धि अधिकार के चतुर्थ भेद कर्मप्रकृति पाहुड के चौबीस अनुयोगद्वारों से ही चार खंड निष्पन्न हुए हैं। इन्हीं के बंधन अनुयोगद्वार के एकभेद बंधविधान से जीवट्ठाण का बहुभाग और तीसरा खंड बंधस्वामित्वविचय किस प्रकार निकले यह आगे के वंश वृक्षों से स्पष्ट हो जायेगा।

३ बंधविधान

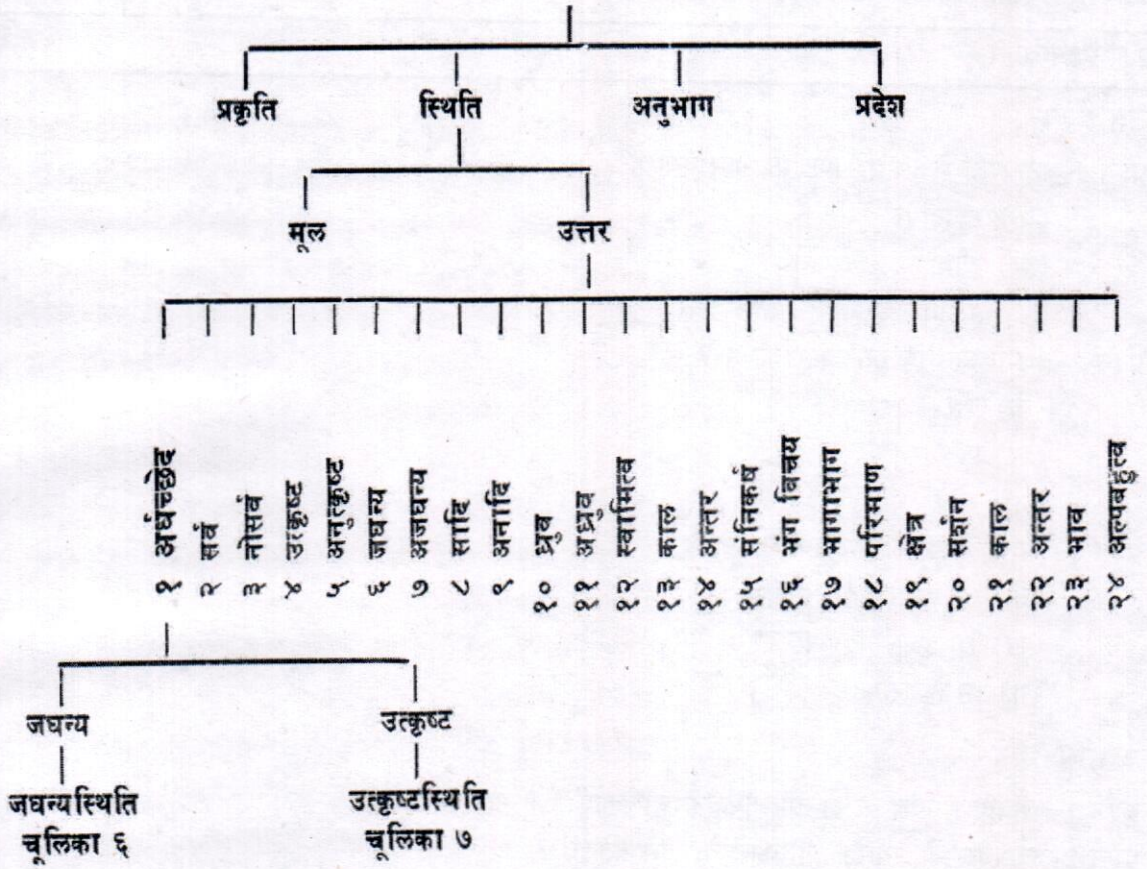

४ दृष्टिवाद (१२ वां अंग)

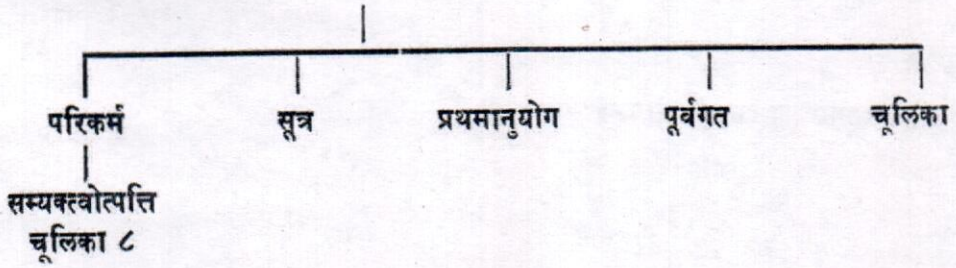

५ व्याख्याप्रज्ञप्ति (पांचवां अंग)

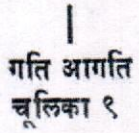

बंध के 11 अनुयोगद्वारों में से पांचवां द्रव्यप्रमाणानुगम है। वही जीवट्ठाण की संख्या प्ररूपणा का उद्गम स्थान है।

इन वंश वृक्षों से षट्खंडागम का द्वादशांगश्रुत से सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है और साथ ही साथ उस द्वादशांग वाणी के साहित्य के विस्तार का ही कुछ अनुमान किया जा सकता है।

2.5 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-षट्खण्डों में प्रथम खण्ड का नाम क्या है ?

(क) खुद्दाबंध ☐
(ख) जीवट्ठाण ☐
(ग) महाबंध ☐

प्रश्न 2-बंध विधान कितने प्रकार का है ?

(क) चार ☐
(ख) पाँच ☐
(ग) सात ☐

प्रश्न 3-'वेदना' खंड का परिमाण कितना है ?

(क) 18 हजार पद ☐
(ख) 16 हजार पद ☐
(ग) 19 हजार पद ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-'जीवट्ठाण' खंड के अन्तर्गत कितनी चूलिकाएँ हैं ? नाम बताइए ?

प्रश्न 2-'खुद्दाबंध' के ग्यारह अधिकारों के नाम बताइए ?

प्रश्न 3-'वेदना' खण्ड को समझाइए ?

प्रश्न 4-धवला में वर्गणाखण्ड की समाप्ति के पश्चात् कौन से अठारह अनुयोग द्वारों का कथन किया गया है ? नाम बताइए ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-षट्खण्डागम का द्वादशांग से क्या सम्बन्ध है ? समझाइए ?

पाठ-3 – महाबन्ध-षट्खण्डागम का छठा खण्ड

3.1 जिनेन्द्रदेव की निर्दोष वाणी रूप होने के कारण सम्पूर्ण आगम ग्रंथ समान आदर तथा श्रद्धा के पात्र हैं, फिर भी जैन संसार में धवल, जयधवल, महाधवल नामक शास्त्रों के प्रति उत्कट अनुराग एवं तीव्र भक्ति का भाव विद्यमान है। इस विशेष आदर का कारण यह है कि तीर्थंकर भगवान महावीरप्रभु की दिव्यध्वनि को ग्रहण कर गणधरदेव ने ग्रंथ-रचना की। वह मौखिक परम्परा के रूप में, विशेष ज्ञानी मुनीन्द्रों की चमत्कारिणी स्मृति के रूप में हीयमान होती हुई विद्यमान थी। महावीर निर्वाण के छह सौ तिरासी वर्ष व्यतीत होने पर अंगों और पूर्वों के एकदेश का भी ज्ञान लुप्त होने की विकट स्थिति आ गयी। उस समय अग्रायणीयपूर्व के चयनलब्धि अधिकार के चतुर्थ प्राभृत 'कम्मपयडि' के चौबीस अनुयोग द्वारों से 'षट्खंडागम' के चार खंड बनाये गये, जिन्हें वेदना, वर्गणा, खुद्दाबंध तथा 'महाबंध' कहते हैं। बन्धक अनुयोग द्वार के अन्यतम भेद बंधविधान से जीवट्ठाण का बहुभाग और तीसरा बंधसामित्तविचय निकले। इस प्रकार षट्खंडागम का द्वादशांग वाणी से संबंध है। इसी प्रकार ज्ञानप्रवाद नामक पंचमपूर्व के दशम वस्तु अधिकार के अंतर्गत तीसरे 'पेज्जदेसपाहुड' के कषायप्राभृत की रचना की गयी। इन ग्रंथों का द्वादशांगवाणी से अविच्छिन्न संबंध होने के कारण द्वादशांगवाणी के समान श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक आदर किया जाता है। 'षट्खंडागम' के महाबंध को छोड़कर पाँच खंडों पर जो वीरसेनाचार्य रचित टीका है, उसे धवल टीका कहते हैं। महाबंध पर कोई टीका उपलब्ध नहीं है। कषायप्राभृत की गुणधर आचार्य रचित एक सौ अस्सी गाथाएँ हैं। इनमें तिरेपन गाथाएँ और जोड़ने पर गुणधर आचार्य रचित कुल गाथाओं की संख्या दो सौ तेतीस हो जाती है। जयधवला टीका में कहा है—"कसायपाहुडे सोलसपदसहस्साणि (16000)। एदस्स अवसंहारगाहाओ गुणहर-मुह-कमल-विणिग्गियायो तेत्तीसाहिय-विसदमेत्तीओ 233" (भाग 1, पृ. 96)। यतिवृषभ आचार्य ने छह हजार श्लोक प्रमाण चूर्णिसूत्र बनाये। इसकी बहत्तर हजार श्लोकप्रमाण टीका वीरसेनाचार्य तथा उनके शिष्य भगवज्जिनसेन स्वामी ने बनायी, उसका नाम जयधवला टीका है।

3.1.1 सूत्र रचना—'षट्खंडागम' के जीवट्ठाण के प्रारंभिक सत्प्ररूपणा अधिकार के केवल एक सौ सतहत्तर सूत्रों की रचना पुष्पदन्त आचार्य ने की है, शेष समस्त रचना भूतबलि स्वामीकृत है। जीवट्ठाण, खुद्दाबंध, बंधसामित्त, वेदना और वर्गणा-इस सूत्र रूप पाँच खंडों की श्लोक संख्या छह हजार प्रमाण है। **छठे खण्ड महाबंध** में चालीस हजार श्लोक प्रमाण सूत्र हैं। साधारणतया सम्पूर्ण धवला, जयधवला टीका को द्वादशांग से साक्षात् संबंधित समझा जाता है।

3.2 महाबंध का प्रमाण—

द्वादशांग वाणी से संबंध रखने वाले प्राचीन साहित्य की दृष्टि से श्री गुणधर आचार्य रचित दौ सौ तेतीस को जो विशेषता प्राप्त होगी, वह उन पर रची गयी बहत्तर हजार श्लोक प्रमाण टीका को नहीं होगी। इसी दृष्टि से यदि धवला टीका पर भी प्रकाश डाला जाय तो कहना होगा कि साठ हजार श्लोक प्रमाण टीका भी नौवीं सदी की है, प्राचीन अंश पाँच खंडों के रूप में केवल छह हजार श्लोक प्रमाण हैं। महाबंध ग्रंथ की सम्पूर्ण चालीस हजार श्लोक प्रमाण रचना भूतबलि स्वामीकृत होने के कारण अत्यंत प्राचीन तथा महत्वपूर्ण है। इस प्रकार सबसे प्रचीन जैन वाङ्मय की दृष्टि से महाबंध सूत्र की रचना धवला, जयधवला टीकाओं के मूल की अपेक्षा लगभग सात गुनी है। ब्रह्म हेमचंद रचित श्रुतस्कंध में लिखा है—

सत्तरिसहस्सधवलो जयधवलो सट्ठिसहस्स बोधव्वो।
महबंधं चालीसं सिद्धंततयं अहं वंदे।।

'धवलशास्त्र सत्तर सहस्र श्लोक प्रमाण है, जयधवल साठ हजार प्रमाण है तथा महाबंध चालीस हजार प्रमाण है। इन सिद्धांतशास्त्रत्रय की मैं वंदना करता हूँ।

आचार्य श्री इंद्रनन्दि ने महाबंध को तीस हजार श्लोक प्रमाण कहा और ब्रह्म हेमचंद चालीस हजार श्लोक प्रमाण बताते हैं। इस मतभेद का कारण यह विदित होता है कि सम्भवतः आचार्य श्री इन्द्रनन्दि ने महाबंध में उपलब्ध अक्षरों की गणनानुसार अपनी संख्या निर्धारित की, ब्रह्म हेमचंद ने महाबंध के संक्षिप्त किये सांकेतिक अक्षरों को, सम्भवतः पूर्ण मानकर गणना की। 'ओरालियसरीर' को महाबंध में ओरा लिखा है। इसे आचार्य श्री इन्द्रनन्दि ने दो अक्षर माने और ब्रह्म हेमचंद ने सात अक्षर रूप गिना। समस्त ग्रंथ में पुनः-पुनः प्रकृति आदि के नामों की गणना हुई है, इस कारण भूतबलि स्वामी ने सांकेतिक संक्षिप्त शैली का आश्रय लिया अतः आचार्य श्री इन्द्रनन्दि और हेमचंद की गणना में भिन्नता तात्त्विक भिन्नता नहीं है।

महाधवल—जैन समाज में महाबंध शास्त्र महाधवल जी के नाम से विख्यात है। महाबंध नाम को पढ़कर कुछ लोग तो भ्रम में पड़ेंगे। यथार्थ में ग्रंथ का नाम महाबंध के अनुभागबंध खंड के अंत की प्रशस्ति से प्रमाणित होता है। वहाँ लिखा है—

"सकलधरित्री-विनुत-प्रकटितमधीशे मल्लिकव्वे वेरिसि सत्पुण्याकर-महाबंध पुस्तकं श्रीमाघनंदिमुनिपतिगित्तल्।"

यह महाबंध भूतबलि स्वामी द्वारा रचित है, इस बात का निश्चय धवला टीका (सिवनी प्रति, पृ. 1437) के इस अवतरण से होता है—

"जं तं बंधविहाणं तं चउव्विहं। पयडिबंधो, ट्ठिदिबंधो, अणुभागबंधो, पदेसबंधो चेदि। एदेसिं चदुण्हं बंधाणं भूदबलिभडारएण महाबंधे सप्पवंचेण लिहिदं ति अम्हेहि ति अम्हेहि एत्थ ण लिहिदं।

धवला टीका महाबंधशास्त्र के रचयिता के रूप में श्री भूतबलि स्वामी का नाम बताती है। महाबंध नाम का परिज्ञान पूर्वोक्त अनुभागबंध की प्रशस्ति से होता है अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि इस महाबंध के निर्माता भूतबलि स्वामी हैं। इसी महाबंध की महाधवल के नाम से ख्याति है।

3.3 महाधवल नाम प्रचार का कारण—

यहाँ यह विचार उत्पन्न होता है कि 'महाबंध' शास्त्र का नाम 'महाधवल' प्रचलित होने का क्या कारण है ? इस संबंध में यह विचार उचित जँचता है कि 'महाबंध' में भूतबलि स्वामी ने अपने प्रतिपाद्य विषय का स्वयं अत्यंत विशद तथा स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादन किया है। इसी कारण वीरसेन आचार्य अपनी 'धवला' टीका में लिखते हैं कि इन चार बंधों का विस्तृत विवेचन भूतबलि भट्टारक ने 'महाबंध' में किया है, महाबंध के विशेषण रूप में महाधवल शब्द का प्रयोग अनुचित नहीं दिखता। यह भी सम्भव दिखता है कि विशेष्य के स्थान में विशेषण ने ही लोकदृष्टि में प्राधान्य प्राप्त कर लिया हो। यह भी प्रतीत होता है कि परम्परा शिष्य सदृश वीरसेन, जिनसेन स्वामी ने अपनी सिद्धांतशास्त्र की टीकाओं के नाम धवला, जयधवला रखे, तब स्वयं स्पष्ट प्रतिपादन करने वाले गुरुदेव भूतबलि की महिमापूर्ण कृति को भक्ति तथा विशिष्ट अनुरागवश महाधवल कहना प्रारंभ कर दिया गया होगा।

3.4 महाबंध का विषय परिचय—

'महाबन्ध' के प्रथम भाग का नाम—**प्रकृतिबन्धाधिकार** (पयडिबंधाहियारो) है। इसमें प्रकृतिबन्ध का अधिकार है। प्रकृतियों के स्वरूप का निरूपण करना **'प्रकृति समुत्कीर्तन'** कहलाता है। जो महाबन्ध के प्रथम भाग का मूल विषय है किन्तु ताड़पत्र के त्रुटित होने से कुछ अंश प्रकाशित नहीं हो सकता है। प्रकृतिसमुत्कीर्तन के दो भेद हैं—मूलप्रकृतिसमुत्कीर्तन और उत्तरप्रकृतिसमुत्कीर्तन। अपने अन्तर्गत समस्त भेदों का संग्रह करने वाली तथा द्रव्यार्थिकनय निबन्धक प्रकृति का नाम मूल प्रकृति है। अलग-अलग अवयव वाली तथा पर्यायार्थिकनय निमित्तक प्रकृति को उत्तर प्रकृति कहते हैं। मूल में जीव और कर्म स्वतन्त्र दो द्रव्य हैं। जीव अमूर्त है और कर्म मूर्तिक है। अनादिकाल से जीव और

कर्म का भावात्मक तथा द्रव्यात्मक सम्बन्ध है। 'प्रकृति' शब्द का अर्थ शील, स्वभाव है। निक्षेप की दृष्टि से विचार किया जाए तो नामप्रकृति, स्थापनाप्रकृति, द्रव्यप्रकृति और भावप्रकृति ये चार भेद किये गये हैं। द्रव्यप्रकृति के भी दो भेद हैं—कर्मद्रव्यप्रकृति और नोकर्मद्रव्यप्रकृति। जैसे—घट, सकारो आदि की प्रकृति मिट्टी है, पुद्गल की प्रकृति पूरन-गलन है; वैसे ही ज्ञानावरणादि आठ कर्मों की अपनी-अपनी प्रकृति है। ज्ञान जीव का स्वभाव है और ज्ञान का आवरण करना यह ज्ञानावरण कर्म का स्वभाव है। ज्ञानावरण कर्म की पाँच प्रकृतियाँ हैं—आभिनिबोधिकज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मन:पर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण। मिथ्यात्व के उदय से होने वाले आभिनिबोधिक, श्रुतज्ञान तथा अवधिज्ञान को कुज्ञान कहा जाता है। ज्ञान एक होने पर भी बन्धविशेष के कारण वह पाँच प्रकार का कहा गया है।

3.4.1 मतिज्ञान—ज्ञान के पाँच भेद आभिनिबोधिकज्ञान—पाँच इन्द्रियों और मन के निमित्त से अप्राप्त रूप बारह प्रकार के पदार्थों का अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा एवं प्राप्त रूप उन बारह प्रकार के पदार्थों के स्पर्शन, रसना, घ्राण और श्रोत्र इन्द्रियों के द्वारा मात्र अवग्रह रूप होता है इसलिये इसके अनेक भेद हो जाते हैं। अर्थावग्रह व्यक्त वस्तु को ग्रहण करता है जो इन्द्रिय और मन के द्वारा होता है। ईहा, अवाय और धारणा ज्ञान भी पाँच इन्द्रियों और मन से होने के कारण अर्थावग्रह की भाँति प्रत्येक छह-छह भेद वाला है। इस कारण व्यंजनावग्रह के चार भेदों में अर्थावग्रहादि के चौबीस भेदों को मिलाने से 28 भेद होते हैं अतएव आभिनिबोधिकज्ञानावरण कर्म के भी 28 भेद हो जाते हैं। इसके बहु, एक, बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, उक्त, अनुक्त, ध्रुव, अध्रुव, नि:सृत, अनि:सृत इन बारह प्रकार के पदार्थों को विषय करने से प्रत्येक के बारह-बारह भेद हो जाते हैं। इस प्रकार 28 × 12 = 336 भेद मतिज्ञान या आभिनिबोधिकज्ञान के होते हैं अत: आभिनिबोधिक ज्ञानावरणकर्म के भी 336 भेद होते हैं।

3.4.2 श्रुतज्ञान—ज्ञान का दूसरा भेद श्रुतज्ञान हैं यह मतिज्ञानपूर्वक मन के आलम्बन से होता है। श्रुतज्ञान के शब्दजन्य तथा लिंगजन्य दो भेद किये गये हैं। यथार्थ में पदार्थ को जानकर उसके सम्बन्ध में या उससे सम्बन्धित अन्य पदार्थ के सम्बन्ध में विचारधारा की प्रवृत्ति होना श्रुतज्ञान है। इस दृष्टि से श्रुतज्ञान अक्षरात्मक, अनक्षरात्मक अथवा द्रव्य-भाव के भेद से दो प्रकार का है। अत: आचारांग, सूत्रकृतांग आदि बारह अंग, उत्पाद पूर्व आदि चौदह पूर्व और सामायिकादि चौदह प्रकीर्णक द्रव्यश्रुत हैं। द्रव्यश्रुत अक्षरात्मक है। उसके सुनने-पढ़ने से श्रुतज्ञान के पर्याय रूप जो उत्पन्न हुआ ज्ञान है, वह भावश्रुत है। वर्तमान परमागम नाम से द्रव्यश्रुत तथा परमागम के आधार से उत्पन्न निर्विकार, स्वसंवेदन (आत्मानुभव) ज्ञान रूप भावश्रुतज्ञान है अत: आत्मविषयक उपयोग दर्शन कहा गया है। दर्शन ज्ञानरूप नहीं होता क्योंकि ज्ञान बाह्य अर्थों को विषय करता है।

3.4.3 अवधिज्ञान—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा से सीमित ज्ञान को अवधिज्ञान कहते हैं। इसको सीमाज्ञान भी कहते हैं। महास्कन्ध से लेकर परमाणु पर्यन्त समस्त पुद्गल द्रव्यों को, असंख्यात लोकप्रमाण क्षेत्र, काल और भावों को तथा कर्म के सम्बन्ध से पुद्गल भाव को प्राप्त हुए जीवों को जो प्रत्यक्ष रूप से जानता है उसे अवधिज्ञान समझना चाहिए। जहाँ इस ज्ञान का विकास नहीं हो रहा है वह अवधिज्ञानावरणीय कर्म है जो एक प्रकार का है। उसकी प्ररूपणा दो प्रकार की है। क्षयोपशम की दृष्टि से असंख्यात प्रकार का होने पर भी अवधिज्ञान के मुख्य दो भेद कहे गये हैं—भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय। भवप्रत्यय अवधिज्ञान देवों, नारकियों और तीर्थंकरों के होता है और गुणप्रत्यय अवधिज्ञान तिर्यंचों तथा मनुष्यों के होता है। इन दोनों अवधिज्ञानों के अनेक भेद हैं—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि तथा हीयमान, वर्द्धमान, अवस्थित, अनवस्थित, अनुगामी, अननुगामी, सप्रतिपाती, अप्रतिपाती, एकक्षेत्र और अनेकक्षेत्र। इन सबका प्रतिबन्धक होने से अवधिज्ञानावरण कर्म कहा जाता है। इसकी असंख्यात कर्म प्रकृतियाँ हैं। काल की अपेक्षा अवधिज्ञान जघन्य से दो-तीन तथा उत्कर्ष से सात-आठ भवों को जानता है।

3.4.4 मनःपर्ययज्ञान—दूसरे के मन में स्थित विषय को जो जानता है, वह मनःपर्यय ज्ञान है। इसका जो आवरण करता है वह मनःपर्यय ज्ञानावरण कर्म है। मनःपर्ययज्ञान के दो भेद हैं—ऋजुमति और विपुलमति। पैंतालीस लाख योजन के भीतर के चित्तगत स्थित पदार्थ को मनःपर्ययज्ञान जानता है। मनःपर्ययज्ञान पराधीन ज्ञान नहीं है। वर्तमान काल में जीवों के मन में स्थित सरल मनोगत, वचनगत और कायगत पदार्थ को जो जानता है, वह ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान है। जिसकी मति विस्तीर्ण है, वह विपुलमति मनःपर्ययज्ञान है। द्रव्य की अपेक्षा वह जघन्य रूप से चक्षु इन्द्रिय की निर्जरा को जानता है। काल की अपेक्षा जघन्य से सात–आठ भवों को और उत्कृष्ट से असंख्यात भवों को जानता है। क्षेत्र की अपेक्षा जो भी द्रव्य इसे ज्ञात है उस–उसकी असंख्यात पर्यायों को जानता है। ऋजुमति में इन्द्रियों और मन की अपेक्षा होती है; किन्तु विपुलमति में उनकी अपेक्षा नहीं होती है।

3.4. 5 केवलज्ञान—केवलज्ञान सम्पूर्ण तथा अखण्ड है। खण्डरहित होने से वह सकल है। पूर्ण रूप से विकास को प्राप्त होने से उसे सम्पूर्ण कहा गया है। कर्म शत्रुओं का अभाव होने से वह असपत्न है। केवलज्ञान का विषय तीनों कालों और तीनों लोकों के सम्पूर्ण पदार्थ माने गये हैं। यथार्थ में केवलज्ञान की स्वच्छता का ऐसा परिणमन है कि तीनों लोकों व तीनों कालों के जितने पदार्थ हैं वे सब एक साथ एक समय में केवलज्ञान में झलकते हैं। लोक में ऐसा कोई ज्ञेय नहीं है जो केवलज्ञान का विषय न हो अतः ज्ञान का धर्म ज्ञेय को जानना है और ज्ञेय का स्वभाव का विषय होना है। इन दोनों में विषय–विषयीभाव का सम्बन्ध है। लेकिन सर्वज्ञ का ज्ञान सम्पूर्ण सम्बन्धों से रहित परम स्वाधीन है। फिर ज्ञान ज्ञान–चेतना से निकलकर बाहर जाता नहीं है और ज्ञेय कभी भी ज्ञान में प्रवेश करता नहीं है अतएव केवलज्ञान असहाय है, उसे मन और इन्द्रियों की तथा ज्ञेय द्रव्यों की सहायता लेने की आवश्यकता नहीं होती है। यही कारण है कि केवलज्ञानी का ज्ञान युगपत् (एक साथ) सब को जानता है; क्रमवार नहीं लेकिन एक साथ तीनों लोकों, तीनों कालों के सभी द्रव्यों, उनके गुणों और पर्यायों को जानने पर भी ज्ञान सीमित नहीं होता बल्कि व्यापक हो जाता है।

3.5. कर्म प्रकृतियाँ—

कर्म की सामान्य प्रकृतियाँ 148 हैं। इनके विशेष भेद किये जाएं तो अनन्त भेद हो जाते हैं। ओघ से 5 ज्ञानावरण तथा 5 अन्तराय की प्रकृतियों का सर्वबन्ध होता है। आयुकर्म को छोड़कर सातों कर्मों की प्रकृतियों का निरन्तर बन्ध होता है। मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगों के निमित्त से कर्म उत्पन्न होते हैं और कर्मों के निमित्त से जाति, बुढ़ापा, मरण और वेदना उत्पन्न होते हैं। शुभाशुभ कर्मों का विपाक प्रकृति, स्थिति, प्रदेश और अनुभाग इन चार भागों में विभक्त है। जीवों को एक और अनेक जन्मों में पुण्य तथा पाप कर्म का फल प्राप्त होता है।

धर्मध्यान कषायसहित जीवों के होता है। जिनदेव का उपदेश है कि असंयत सम्यग्दृष्टि के धर्मध्यान होता है। (षट्खण्डागम, वर्गणाखण्ड 5, 4, 26) प्रथमोपशम सम्यक्त्व में मिथ्यात्व गुणस्थान सम्बन्धी 16 और सासादन गुणस्थान सम्बन्धी 25 प्रकृतियों का अभाव होने से बन्ध योग्य 77 प्रकृतियाँ कही गयी हैं। द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में सातवें गुणस्थान से ग्यारहवें पर्यंत आरोहण कर जीव जब उतरकर चौथे गुणस्थान में आता है तब भी 77 प्रकृतियों का बन्ध होता है तथा प्रथमोपशम सम्यक्त्व की भाँति मनुष्यायु और देवायु का अभाव होता है।

दर्शनावरण, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी, तिर्यंचगति त्रिक का जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। 'कर्मस्थिति' शब्द से केवल दर्शनमोहनीय की सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति का ग्रहण हुआ है। उसमें सब कर्मों की स्थिति संगृहीत है। (महाबन्ध, भा. 1, पृ. 63) अनन्तानुबन्धी का सासादन पर्यंत बन्ध होता है किन्तु मिथ्यात्व का प्रथम गुणस्थान पर्यन्त।

'महाबन्ध' के प्रथम भाग का 'प्रकृतिबन्धाधिकार' षट्खण्डागम के वर्गणा खण्ड के अन्तर्गत बन्धनीय अर्थाधिकार में 23 पुद्गल वर्गणाओं की प्ररूपणा में विवेचित है। मिथ्यादर्शन, असंयमादि परिणाम विशेष से कार्मणवर्गणा के परमाणु कर्म रूप से परिणत होकर जीव प्रदेशों के साथ सम्बद्ध होते हैं जिसे 'प्रकृतिबन्ध'' कहते हैं।

3.6 प्रकृतिबन्ध की प्ररूपणा—

प्रकृतिबन्ध की प्ररूपणा 24 अनुयोग द्वारों में की गयी है जो इस प्रकार है—

1. प्रकृति समुत्कीर्तन—इस अनुयोगद्वार में कर्म की मूल और उत्तर प्रकृतियों की प्ररूपणा है। महाबन्ध के इस भाग में ज्ञानावरणीय की उत्तर तथा उत्तरोत्तर प्रकृतियों की प्ररूपणा अनुयोगद्वार के समान प्ररूपित है।

2–3. सर्वबन्ध-नोसर्वबन्ध—इन दो अनुयोगद्वारों में ज्ञानावरणादि कर्म प्रकृतियों के विषय में सर्वबन्ध और नोसर्वबन्ध की प्ररूपणा की गयी है। जिस कर्म की जब अधिक से अधिक प्रकृतियाँ एक साथ बँधती हैं तब उनके बन्ध को सर्वबन्ध कहते हैं। उदाहरण के लिए ज्ञानावरण की पाँच प्रकृतियाँ और अन्तराय की पाँच प्रकृतियाँ दोनों अपनी बन्ध व्युच्छित्ति होने तक सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान तक साथ-साथ बँधती हैं इसलिए इन दोनों कर्मों का सर्वबन्ध है। दर्शनावरण की नौ प्रकृतियाँ दूसरे गुणस्थान में निद्रानिद्रा, प्रचला-प्रचला तथा स्त्यानगृद्धि इन तीन की बन्ध व्युच्छित्ति हो जाने से उसके बाद के अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम भाग तक छह प्रकृतियाँ बँधती हैं इसलिए उसका यह नोसर्वबन्ध है। इसी प्रकार प्रथम भाग में निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियों के व्युच्छिन्न हो जाने पर सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान तक उसकी चार प्रकृतियाँ बँधती हैं जो दर्शनावरण का नोसर्वबन्ध है। वेदनीय, आयु और गोत्र इन तीन कर्मों का नोसर्वबन्ध ही होता है। इसका कारण यह है कि एक समय में इन कर्मों की एक प्रकृति का ही बन्ध सम्भव है।

4–7. उत्कृष्टबन्ध, अनुत्कृष्टबन्ध, जघन्यबन्ध और अजघन्यबन्ध ये प्रकृतिबन्ध में सम्भव नहीं हैं।

8–9. सादि-अनादिबन्ध—किसी कर्मप्रकृति के बन्ध का अभाव हो जाने पर पुनः उसका बन्ध होना सादिबन्ध कहा जाता है। जैसे कि ज्ञानावरण की 5 प्रकृतियों का बन्ध सूक्ष्मसाम्पराय तक होता है। जो जीव इस गुणस्थान में बन्ध व्युच्छित्ति करके उपशान्तकषाय हुआ है, उसके वहाँ उनके बन्ध का अभाव हो गया परन्तु जब उपशान्तकषाय से गिरकर सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में आता है तब उन प्रकृतियों का पुनः बन्ध होने लगता है इसे सादिबन्ध कहते हैं।

जब तक जीव श्रेणि पर आरोहण नहीं करता तब तक उसके अनादिबन्ध होता रहता है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान तक अनादिबन्ध कहा गया है। इसी प्रकार अन्य कर्मों के सम्बन्ध में भी सादि-अनादि बन्ध का विचार किया गया है।

10–10. ध्रुव–अध्रुवबन्ध—अभव्य जीव के जो बन्ध होता है वह ध्रुवबन्ध है क्योंकि उसके अनादिकाल से होने वाले उस कर्मबन्ध का कभी अभाव होने वाला नहीं है किन्तु भव्य जीवों का कर्मबन्ध अध्रुवबन्ध है क्योंकि उनके कर्मबन्ध का अभाव हो सकता है।

12. बन्ध स्वामित्वविचय—इस प्रकरण का ओघ तथा आदेश से दो प्रकार का निर्देश किया गया है। ओघ की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि से लेकर अयोगकेवली पर्यन्त चौदह जीवसमास–गुणस्थान होते हैं। इनमें प्रकृतिबन्ध की व्युच्छित्ति कही गई है। बन्ध व्युच्छित्ति प्राप्त प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—

मिथ्यात्व में 16, सासादन में 25, अविरत में 10, देशविरत में 4, प्रमत्तसंयत में 6, अप्रमत्तसंयम में 1, अपूर्वकरण में 36, अनिवृत्तिकरण में 5, सूक्ष्मसाम्पराय में 16, सयोगकेवली में 1, इस प्रकार इन 10 गुणस्थानों के जीव बन्धक हैं; शेष अबन्धक हैं।

3.6.1 मनुष्यगति में क्या है ?—

मनुष्यगति में मिथ्यात्व आदि चौदह गुणस्थान हैं। कर्म बन्ध के योग्य 120 प्रकृतियाँ हैं। इनका वर्णन ओघवत् किया गया है। इनमें विशेष यह है कि मिथ्यात्व गुणस्थान में तीर्थंकर, आहारकद्विक का बन्ध न होने से शेष 117

प्रकृतियों का बन्ध होता है। सासादन गुणस्थान में मिथ्यात्वादि 16 प्रकृतियों का बन्ध न होने से 101 प्रकृतियों का बन्ध होता है। मिश्र गुणस्थान में 69 प्रकृतियों का बन्ध होता है। अविरत सम्यग्दृष्टि के देवायु तथा तीर्थंकर का बन्ध प्रारम्भ हो जाने से 71 प्रकृतियों का बन्ध होता है। देशविरत में अप्रत्याख्यानावरण 4 का बन्ध न होने से 67 प्रकृतियों का बन्ध होता है। प्रमत्त गुणस्थान में प्रत्याख्यानावरण 4 का बन्ध न होने से 63 प्रकृतियों का बन्ध होता है। अप्रमत्तसंयत के अस्थिर, असाता, अशुभ, अरति, शोक, अयश:कीर्ति इन छह का बन्ध नहीं होता किन्तु आहारकद्विक का बन्ध होने से 59 प्रकृतियों का बन्ध होता है। अपूर्वकरण में देवायु का बन्ध न होने से 58 प्रकृतियों का बन्ध होता है। अनिवृत्तिकरण में बन्ध योग्य 22 प्रकृतियाँ हैं। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में अनिवृत्तिकरण की पुरुषवेद और 4 संज्वलन कषायों की बन्ध व्युच्छित्ति हो जाने से 17 प्रकृतियों का बन्ध होता है। उपशान्तकषाय में एक सातावेदनीय का ही बन्ध होता है। क्षीणकषाय और सयोगी जिन के एक सातावेदनीय का ही बन्ध कहा गया है। अयोगकेवली के कोई बन्ध नहीं होता।

3.6.2 बारह अनुयोग द्वार—

इनके अतिरिक्त बारह अनुयोगद्वारों में भी उल्लेख किया गया है। उन अनुयोगद्वारों के नाम इस प्रकार हैं—

13. एक जीव की अपेक्षा काल प्ररूपणा,
14. एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम प्ररूपणा,
15. सन्निकर्ष प्ररूपणा,
16. भंगविचय प्ररूपणा,
17. भागाभागानुगम प्ररूपणा,
18. परिमाणानुगम प्ररूपणा,
19. क्षेत्रानुगम प्ररूपणा,
20. स्पर्शनानुगम प्ररूपणा,
21. अनेक जीवों की अपेक्षा कालानुगम प्ररूपणा,
22. नाना जीवों की अपेक्षा अन्तरानुगम प्ररूपणा,
23. भावानुगम प्ररूपणा,
24. अल्पबहुत्वानुगम प्ररूपणा

इस प्रकार चौबीस अनुयोगद्वारों में कर्म की मूल और उत्तर प्रकृतियों की प्ररूपणा के समान प्रकृत प्रकृतिबन्धाधिकार (महाबन्ध) में प्रकृति अनुयोगद्वार के समान ज्ञानावरणीय प्रकृतियों के प्रसंग से उत्तर प्रकृतियों की प्ररूपणा की गई है।

3.7 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-षट्खण्डागम के चार खंड—वेदना, वर्गणा, खुद्दाबंध तथा ..... है।

(क) प्रकृति बंध ☐
(ख) महाबंध ☐
(ग) इनमें से कोई नहीं ☐

प्रश्न 2-कषायप्राभृत में श्री गुणधराचार्य द्वारा कितनी गाथाएँ लिखी गई हैं ?

(क) 180 ☐
(ख) 290 ☐
(ग) इनमें से कोई नहीं ☐

प्रश्न 3-'धवलशास्त्र' का प्रमाण कितना है ?

(क) सत्तर हजार श्लोक प्रमाण ☐
(ख) साठ हजार श्लोक प्रमाण ☐
(ग) चालीस हजार श्लोक प्रमाण ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-'षट्खण्डागम' के 'जीवट्ठाण' ग्रंथ में सूत्रों की रचना किस-किसने की ?

प्रश्न 2-'महाबंध शास्त्र के रचयिता कौन हैं ?

प्रश्न 3-अवधिज्ञान किसे कहते हैं ? इसका दूसरा नाम क्या है ?

प्रश्न 4-मतिज्ञान के 336 भेद किस प्रकार से बताए हैं ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-'महाबंध' शास्त्र का विषय परिचय दीजिए ?

पाठ-4—द्वादशांग श्रुत की रचना गणधर ही कर सकते हैं

4.1 ''द्वादशांग श्रुतज्ञान क्या है ?''—

" जिनेन्द्रदेव की दिव्यध्वनि को गणधरदेव धारण करते हैं, पुनः उसे द्वादशांगरूप से गूँथते हैं अतः भगवान् की वाणी ही द्वादशांग श्रुतज्ञानरूप है।

उस श्रुतज्ञान के दो भेद हैं—अंगबाह्य और अंगप्रविष्ट। इनमें से अंगप्रविष्ट के बारह भेद हैं और अंगबाह्य के चौदह। अंगप्रविष्ट के नाम आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवाय, व्याख्याप्रज्ञप्ति, नाथधर्मकथा, उपासकाध्ययन, अन्तकृद्दशंग, अनुत्तरोपपादिकदशंग, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र और दृष्टिवाद।

4.2 अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञान के बारह भेद—

4.2.1 आचारांग—इनमें 18000 पदों द्वारा मुनियों के आचार का वर्णन रहता है। जैसे कि–

कधं चरे कधं चिट्ठे कधमासे कधं सए। कधं भुंजेज्ज भासेज्ज कधं पावं ण बज्झई।।70।।

जदं चरे जदं चिट्ठे जद्मासे जदं सए। जदं भुंजेज्ज भासेज्ज एवं पावं ण बज्झई।।71।।

किस प्रकार चलना चाहिये ? किस प्रकार खड़े रहना चाहिये ? किस प्रकार बैठना चाहिये ? किस प्रकार शयन करना चाहिये ? किस प्रकार भोजन करना चाहिये ? किस प्रकार संभाषण करना चाहिये ? कि जिससे पापकर्म नहीं बंधता है।

इस तरह गणधरदेव के प्रश्नों के अनुसार भगवान् उत्तर देते हैं—

यत्न से चलना चाहिये, यत्नपूर्वक भोजन करना चाहिये, यत्नपूर्वक खड़े रहना चाहिये, यत्नपूर्वक बैठना चाहिये, यत्नपूर्वक शयन करना चाहिये, यत्नपूर्वक संभाषण करना चाहिये। इस प्रकार आचरण करने से पापकर्म का बंध नहीं होता है, इत्यादि रूप से मुनियों के आचार का मूलगुण और नाना प्रकार उत्तरगुणों का वर्णन इस अंग में पाया जाता है।

4.2.2 सूत्रकृतांग—इस अंग में 36000 पदों द्वारा ज्ञानविनय, प्रज्ञापना,कल्प्याकल्प्य, छेदोपस्थापना और व्यवहार धर्मक्रिया का प्ररूपण होता है तथा यह स्वसमय और परसमय का भी निरूपण करता है।

4.2.3 स्थानांग—यह अंग 42000 पदों द्वारा उत्तरोत्तर एक-एक अधिक स्थानों का वर्णन करता है। जैसे महात्मा अर्थात् यह जीव द्रव्य निरंतर चैतन्यरूप धर्म से उपयुक्त होने के कारण उसकी अपेक्षा एक ही है।ज्ञान और दर्शन के भेद से दो प्रकार का है । कर्मफलचेतना, कर्मचेतना और ज्ञानचेतना से लक्ष्यमाण होने के कारण तीन भेदरूप है।

चार गतियों में परिभ्रमण की अपेक्षा इसके चार भेद हैं। औदयिक, औपशमिक , क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक, इन पाँच प्रधान गुणों से युक्त होने के कारण इसके पाँच भेद हैं। भवान्तर में जाते समय पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर और नीचे इस तरह छह संक्रमण लक्षण अपक्रमों से युक्त होने के कारण छह प्रकार का है। अस्ति, नास्ति इत्यादि सात भंगों से युक्त होने की अपेक्षा सात प्रकार का है। ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों के आश्रय से सहित होने के कारण आठ प्रकार का है। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप इन नव पदार्थों को विषय करने वाला अथवा इन नव प्रकार के पदार्थों रूप परिणमन करने वाला होने की अपेक्षा से नौ प्रकार का है। पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक,प्रत्येक वनस्पतिकायिक, साधारण वनस्पतिकायिक, द्वींद्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियजाति, इन दश भेद से दश स्थानगत होने की अपेक्षा दश प्रकार का कहा जाता है। इत्यादि रूप से जितने भी भेद संभव हैं उन सबका यह अंग वर्णन करता है।

4.2.4 समवायांग—यह अंग 164000 पदों द्वारा सम्पूर्ण पदार्थों के समवाय का वर्णन करता है अर्थात् सादृश्य सामान्य से द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा जीवादि पदार्थों का ज्ञान कराता है। वह समवाय चार प्रकार का है—

द्रव्यसमवाय, क्षेत्रसमवाय, कालसमवाय और भावसमवाय। उनमें से द्रव्यसमवाय की अपेक्षा धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, लोकाकाश और एक जीव के प्रदेश समान हैं। क्षेत्र समवाय की अपेक्षा प्रथम नरक के प्रथम पटल का सीमंतक नाम का इन्द्रक बिल, ढाई द्वीप प्रमाण मनुष्य क्षेत्र, प्रथम स्वर्ग के प्रथम पटल का ऋजु नाम का इन्द्रक विमान और सिद्धक्षेत्र ये समान हैं। काल की अपेक्षा एक समय एक समय के बराबर है और एक मुहूर्त एक मुहूर्त के बराबर है। भाव की अपेक्षा केवलज्ञान केवलदर्शन के समान है क्योंकि ज्ञेयप्रमाण ज्ञान है और ज्ञानमात्र चेतना की उपलब्धि होती है।

4.2.5 व्याख्या प्रज्ञप्ति अंग—यह अंग 228000 पदों द्वारा क्या जीव है ? क्या जीव नहीं है ? इत्यादि रूप से साठ हजार प्रश्नों का व्याख्यान करता है।

4.2.6 नाथधर्मकथांग—इस अंग का ज्ञातृधर्मकथा भी नाम है। यह 556000 पदों द्वारा सूत्र पौरुषी अर्थात् सिद्धान्तोक्त विधि से स्वाध्याय की प्रस्थापना हो इसलिये तीर्थंकरों की धर्मदेशना का, संदेह को प्राप्त गणधर के संदेह को दूर करने की विधि का तथा अनेक प्रकार की कथा और उपकथाओं का वर्णन करता है।

4.2.7 उपासकाध्ययनांग—यह अंग 11,70,000 पदों द्वारा दार्शनिक, व्रतिक, सामायिकी, प्रोषधोपवासी, सचित्तविरत, रात्रिभुक्तिविरत, ब्रह्मचारी, आरम्भविरत, परिग्रहविरत, अनुमतिविरत और उद्दिष्टविरत इन ग्यारह प्रकार के श्रावकों के लक्षण, उन्हीं के व्रत धारण करने की विधि और उनके आचरण का वर्णन करता है।

4.2.8 अन्तकृद्दशांग—यह अंग तेईस लाख अट्ठाईस हजार पदों के द्वारा एक-एक तीर्थंकर के तीर्थ में नाना प्रकार के दारुण उपसर्गों को सहन कर और प्रातिहार्य अर्थात् अतिशय विशेषों को प्राप्त कर निर्वाण को प्राप्त हुए दश-दश अंतकृत केवलियों का वर्णन करता है।

तत्त्वार्थ भाष्य में भी कहा है—

जिन्होंने संसार का अन्त किया उन्हें अन्तकृत् केवली कहते हैं। वर्धमान तीर्थंकर के तीर्थ में नमि, मतंग , सोमिल, रामपुत्र, सुदर्शन, यमलीक, वलीक, किष्कंबिल, पालम्ब, अष्टपुत्र ये दश अन्तकृत् केवली हुये हैं। इसी प्रकार ऋषभदेव आदि तेईस तीर्थंकरों के तीर्थ में अन्य दूसरे दश-दश अनगार मुनि दारुण उपसर्गों को जीतकर सम्पूर्ण कर्मों के क्षय से अन्तकृत् केवली हुये। इन सबकी दशा का जिसमें वर्णन किया जाता है उसे अन्तकृद्दशंग नाम का अंग कहते हैं।

4.2.9 अनुत्तरोपपादिकदशांग—यह अंग बानवे लाख चवालीस हजार पदों द्वारा एक-एक तीर्थ में नाना प्रकार के दारुण उपसर्गों को सहकर और प्रातिहार्य अर्थात् अतिशय विशेषों को प्राप्त करके पाँच अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुये हैं उन दश-दश अनुत्तरोपपादिकों का वर्णन करता है। तत्त्वार्थभाष्य में भी कहा है—

उपपाद जन्म ही जिनका प्रयोजन है उन्हें औपपादिक कहते हैं। विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि ये पाँच अनुत्तर विमान हैं। जो अनुत्तरों में उपपाद जन्म से पैदा होते हैं उन्हें अनुत्तरोपपादिक कहते हैं। ऋषिदास,धन्य, सुनक्षत्र, कार्तिकेय, आनन्द, नन्दन, शालिभद्र, अभय, वारिषेण और चिलातपुत्र ये दश अनुत्तरोपपादिक वर्धमान तीर्थंकर के तीर्थ में हुए हैं। इसी तरह ऋषभनाथ आदि तेईस तीर्थंकरों के तीर्थ में अन्य दश-दश महासाधु दारुण उपसर्गों को जीतकर विजय आदिक पाँच अनुत्तरों में उत्पन्न होने वाले दश साधुओं का जिसमें वर्णन किया जावे उसे अन्तकृद्दशांग नाम का अंग कहते हैं।

4.2.10 प्रश्नव्याकरणांग—यह अंग तिरानवे लाख सोलह हजार पदों द्वारा आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेदनी और निर्वेदनी इन चार कथाओं का तथा भूत, भविष्यत् और वर्तमानकाल सम्बन्धी धन, धान्य, लाभ, अलाभ, जीवित, मरण, जय और पराजय सम्बन्धी प्रश्नों के पूछने पर उनके उपाय का वर्णन करता है।

आक्षेपणी—जो नाना प्रकार की एकान्त दृष्टियों का और दूसरे समयों के निराकरणपूर्वक शुद्धि करके छह द्रव्य और नव प्रकार के पदार्थों का प्ररूपण करती है उसे आक्षेपणी कथा कहते हैं।

विक्षेपणी—जिसमें पहले परसमय के द्वारा स्वसमय में दोष बताये जाते हैं । अनंतर परसमय की आधारभूत अनेक एकान्त दृष्टियों का शोधन करके स्वसमय की स्थापना की जाती है और छह द्रव्य नौ पदार्थों का प्ररूपण किया जाता है उसे विक्षेपणी कथा कहते हैं।

संवेदनी—पुण्य के फल का वर्णन करने वाली कथा को संवेदनी कथा कहते हैं।

शंका—पुण्य के फल कौन से हैं ?

समाधान—तीर्थंकर, गणधर, ऋषि, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव और विद्याधरों की ऋद्धियाँ पुण्य के फल हैं।"

निर्वेदनी—पाप के फल का वर्णन करने वाली कथा को निर्वेदनी कथा कहते हैं।

शंका—पाप के फल कौन से हैं ?

समाधान—नरक, तिर्यंच और कुमानुष की योनियों में जन्म, जरा, मरण, व्याधि, वेदना और दारिद्र्य आदि की प्राप्ति पाप के फल हैं अथवा संसार, शरीर और भोगों में वैराग्य को उत्पन्न करने वाली कथा को निर्वेदनी कथा कहते हैं। कहा भी है–

तत्त्वों का निरूपण करने वाली आक्षेपणी कथा है। तत्त्व से दिशान्तर को प्राप्त हुई दृष्टियों का शोधन करने वाली अर्थात् परमत की एकान्त दृष्टियों का निराकरण करके स्वसमय की स्थापना करने वाली विक्षेपणी कथा है। विस्तार से धर्म के फल का वर्णन करने वाली संवेदनी कथा है और वैराग्य उत्पन्न करने वाली निर्वेदनी कथा है।

इन कथाओं का प्रतिपादन करते समय जो जिनवचन को नहीं जानता है अर्थात् जिसका जिनवचन में प्रवेश नहीं है ऐसे पुरुष को विक्षेपणी कथा का उपदेश नहीं देना चाहिये। अभिप्राय यह है कि अन्य सम्प्रदाय का पूर्व पक्ष रखकर जिसमें उनका खण्डन करके अपने पक्ष का मंडन किया जाता है उन्हें ही विक्षेपणी कथा कहते हैं क्योंकि जिसने स्वसमय के रहस्य को नहीं जाना है और परसमय की प्रतिपादन करने वाली कथाओं के सुनने से व्याकुलितचित्त होकर वह मिथ्यात्व को स्वीकार न कर लेवे इसलिये स्वसमय के रहस्य को नहीं जानने वाले पुरुष को विक्षेपणी कथा का उपदेश न देकर शेष तीन कथाओं द्वारा जिसने स्वसमय को भली भाँति समझ लिया है,जो पुण्य और पाप के स्वरूप को जानता है, जिस तरह मज्जा अर्थात् हड्डियों के मध्य में रहने वाला रस हड्डी से संसक्त होकर ही शरीर में रहता है उसी तरह जो जिनशासन में अनुरक्त है, जिनवचन में जिसको किसी प्रकार की विचिकित्सा नहीं रही है, जो भोग और रति से विरक्त है और जो तप, शील और नियम से युक्त है ऐसे पुरुष को ही पश्चात् विक्षेपणी कथा का उपदेश देना चाहिये। प्ररूपण करके उत्तम रूप से ज्ञान कराने वाले के लिये यह अकथा भी तब कथा रूप हो जाती है इसलिये योग्य पुरुष को प्राप्त करके ही साधु को कथा का उपदेश देना चाहिये।

यह प्रश्नव्याकरण नाम का अंग प्रश्न के अनुसार हत, नष्ट, मुष्टि, चिन्ता, लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवन, मरण, जय, पराजय, नाम, द्रव्य, आयु और संख्या का भी प्ररूपण करता है।

4.2.11 विपाकसूत्रांग—यह अंग एक करोड़ चौरासी लाख पदों द्वारा पुण्य और पापरूप कर्मों के फलों का वर्णन करता है।

ग्यारह अंगों के कुल पदों का जोड़ चार करोड़ पंद्रह लाख दो हजार पद है।

4.2.12 दृष्टिवादांग—यह बारहवां अंग है, इस अंग में कौत्कल, काण्ठेविद्धि, कौशिक, हरिश्मश्रु, मांधुपिक, रोमश, हारीत, मुण्ड और अश्वलायन आदि क्रियावादियों के एक सौ अस्सी मतों का वर्णन और निराकरण है। मरीचि, कपिल, उलूक, गार्ग्य, व्याघ्रभूति, वाद बलि, माठर और मौद्गल्यायन आदि अक्रियावादियों के चौरासी मतों का वर्णन और निराकरण किया गया है। शाकल्य, बल्कल, कुथुमि, सात्यमुग्रि, नारायण, कण्व, माध्यन्दिन, मोद, पैप्पलाद, बादरायण, स्वेष्टकृत, ऐतिकायन, वसु और जेमिनी आदि अज्ञानवादियों के सरसठ मतों का वर्णन और निराकरण किया

गया है तथा वशिष्ठ पाराशर, जतुकर्ण, बाल्मीकि, रोमहर्षिणी, सत्यदत्त, व्यास, एलापुत्र, औपमन्यु, ऐन्द्रदत्त और अयस्थूण आदि वैनयिकवादियों के बत्तीस मतों का वर्णन और निराकरण किया गया है। इस प्रकार से क्रियावादी के 180 + अक्रियावादी के 84+ अज्ञानवादी के 67+ वैनयिकवादी के 32= मिलाकर 363 पाखंड मत होते हैं। दृष्टिवाद अंग इन मतों का वर्णन करके उनका खण्डन करता है।

4.2.13 इस दृष्टिवाद अंग के पाँच अधिकार हैं—परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका।

इनमें से प्रथम परिकर्म नामा भेद के भी पाँच भेद माने गये हैं—चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति और व्याख्याप्रज्ञप्ति।

(1) चन्द्रप्रज्ञप्ति नाम का परिकर्म छत्तीस लाख पांच हजार पदों द्वारा चन्द्रमा की आयु, परिवार, ऋद्धि, गति और बिम्ब की ऊँचाई आदि का वर्णन करता है।

(2) सूर्यप्रज्ञप्ति नाम का परिकर्म पाँच लाख तीन हजार पदों के द्वारा सूर्य की आयु, भोग, उपभोग, परिवार, ऋद्धि, गति, बिम्ब की ऊँचाई, दिन की हानि वृद्धि, किरणों का प्रमाण और प्रकाश आदि का वर्णन करता है।

(3) जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति नाम का परिकर्म तीन लाख पच्चीस हजार पदों के द्वारा जंबूद्वीपस्थ भोगभूमि और कर्मभूमि में उत्पन्न हुये नाना प्रकार के मनुष्य तथा दूसरे तिर्यंच आदि का और पर्वत, द्रह, नदी, वेदिका, वर्ष (क्षेत्र), आवास, अकृत्रिम जिनालय आदि का वर्णन करता है।

(4) द्वीपसागरप्रज्ञप्ति नाम का परिकर्म बावन लाख छत्तीस हजार पदों के द्वारा उद्धार पल्य से द्वीप और समुद्रों के प्रमाण का तथा द्वीपसागर के अंतर्भूत नाना प्रकार के दूसरे पदार्थों का वर्णन करता है।

(5) व्याख्याप्रज्ञप्ति नाम का परिकर्म चौरासी लाख छत्तीस हजार पदों के द्वारा रूपी अजीव द्रव्य अर्थात् पुद्गल, अरूपी अजीवद्रव्य अर्थात् धर्म, अधर्म, आकाश और काल, भव्यसिद्ध और अभव्यसिद्ध जीव इन सबका वर्णन करता है।

दृष्टिवाद अंग का **सूत्र नाम का द्वितीय अर्थाधिकार** अठासी लाख पदों के द्वारा जीव अबन्धक ही है, अलेपक ही है, अकर्त्ता ही है, अभोक्ता ही है, निर्गुण ही है, अणु प्रमाण ही है, जीव नास्ति स्वरूप ही है, जीव अस्ति स्वरूप ही है, पृथ्वी आदि पाँच भूतों के समुदाय रूप से जीव उत्पन्न होता है, चेतनारहित है, ज्ञान के बिना भी सचेतन है, नित्य ही है, अनित्य ही है, इत्यादि रूप से क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादियों के तीन सौ त्रेसठ पाखंड मतो का पूर्वपक्ष रूप से वर्णन करता है पुनः उत्तर पक्ष से उनका निराकरण करता है।

यह त्रैराशिकवाद , नियतिवाद, विज्ञानवाद, शब्दवाद, प्रधानवाद, द्रव्यवाद और पुरुषवाद का भी वर्णन करता है कहा भी है—

इस सूत्र नामक अर्थाधिकार के अठासी अधिकारों में से चार अधिकारों का अर्थनिर्देश मिलता है। उनमें पहला अधिकार अबन्धकों का, दूसरा त्रैराशिकवादियों का, तीसरा नियतिवाद का तथा चौथा अधिकार स्वसमय का प्ररूपक है।

विशेषार्थ—गोशालप्रवर्तित, आजीविक और पाखंडी ये त्रैराशिक कहलाते हैं क्योंकि ये सर्व वस्तुओं को तीन रूप मानते हैं। जैसे—जीव, अजीव और जीवाजीव। लोक, अलोक और लोकालोक। सत्, असत और सदसत् इत्यादि। नियतिवादी लोग कहते हैं कि जब, जिसके द्वारा, जैसे, जिसका, जो होना है, तब उसके द्वारा, वैसे ही, उसका होता है। यह भी एकान्त मान्यता है। बौद्धों का एक भेद विज्ञानवाद है इसकी ऐसी मान्यता है कि जगत् में दिखने वाले सभी चेतन-अचेतन पदार्थ मात्र ज्ञान स्वरूप ही हैं। बस, यह ज्ञानमात्र ही एक परमार्थ तत्त्व है और सब कल्पनाजाल है इत्यादि। ब्रह्माद्वैतवादी सकल जगत् को एक शब्दरूप ही मानते हैं उनका कहना है कि सचेतन-अचेतन पदार्थ शब्द से ही अनुबद्ध

होकर प्रतिभासित होते हैं । प्रधानवाद सांख्यों का सिद्धांत है। इसका अभिप्राय है कि सत्व, रज और तम की सम्मावस्था प्रधान है इत्यादि। यही सांख्य द्रव्यमात्र को ही मानता है, पर्यायों को नहीं अतः द्रव्यमात्र सिद्धान्त भी सांख्यों का ही है। पुरुषवादी लोग पुरुषार्थ को ही सब कार्यों की सिद्धि का करने वाला कहते हैं। ये सब एकांतवाद मिथ्यारूप हैं। इस सूत्र नाम के भेद में इन सभी मिथ्यामतों का स्वरूप बताकर उनका निराकरण किया जाता है।

4.2.14 दृष्टिवाद अंग का प्रथमानुयोग—यह **तीसरा अर्थाधिकार** पाँच हजार पदों के द्वारा पुराणों का वर्णन करता है। कहा भी है—

जिनेंद्रदेव ने जगत् में बारह प्रकार के पुराणों का उपदेश दिया है । वे समस्त पुराण जिनवंश और राजवंश का वर्णन करते हैं। पहला अरिहंत अर्थात् तीर्थंकरों का, दूसरा चक्रवर्तियों का, तीसरा विद्याधरों का, चौथा नारायण–प्रतिनारायणों का, पाँचवाँ चारणों का-चारण ऋषियों का, छठा प्रज्ञाश्रमणों का वंश है तथा सातवां कुरुवंश, आठवाँ हरिवंश, नौवाँ इक्ष्वाकुवंश, दशवाँ काश्यप वंश, ग्यारहवाँ वादियों का वंश और बारहवाँ नाथवंश है।

दृष्टिवाद अंग का पूर्वगत नाम का चौथा अर्थाधिकार पंचानवे करोड़ पचास लाख और पाँच पदों द्वारा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य आदि का वर्णन करता है।

4.3 पूर्वगत अर्थाधिकार के चौदह भेद—

उत्पादपूर्व, अग्रायणीयपूर्व, वीर्यानुप्रवादपूर्व, अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व, ज्ञानप्रवादपूर्व, सत्यप्रवादपूर्व, आत्मप्रवादपूर्व, कर्मप्रवादपूर्व,प्रत्याख्यानपूर्व, विद्यानुप्रवादपूर्व, कल्याणवादपूर्व, प्राणावायपूर्व, क्रियाविशालपूर्व और लोकबिंदुसारपूर्व।

4.3.1 उत्पादपूर्व—यह पूर्व दस वस्तुगत, दो सौ प्राभृतों के एक करोड़ पदों द्वारा जीव, काल और पुद्गल द्रव्य के उत्पाद , व्यय और ध्रोव्य का वर्णन करता है।

4.3.2 अग्रायणीयपूर्व—अग्र अर्थात् द्वादशांगों में प्रधानभूत वस्तु के अयन अर्थात् ज्ञान को अग्रायण कहते हैं। उसका कथन करना जिसका प्रयोजन हो उसे अग्रायणीयपूर्व कहते हैं। यह पूर्व चौदह वस्तुगत, दो सौ अस्सी प्राभृतों के छ्यानवे लाख पदों द्वारा अंगों के अग्र अर्थात् परिमाण का कथन करता है।

4.3.3 वीर्यानुप्रवादपूर्व—यह पूर्व आठ वस्तुगत, एक सौ साठ प्राभृतों के सत्तर लाख पदों द्वारा आत्मवीर्य, परवीर्य, उभयवीर्य, क्षेत्रवीर्य, भाववीर्य और तपवीर्य का वर्णन करता है।

4.3.4 अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व—यह पूर्व अठारह वस्तुगत, तीन सौ साठ प्राभृतों के साठ लाख पदों द्वारा जीव और अजीव के अस्तित्व और नास्तित्व धर्म का वर्णन करता है। जैसे—जीव, स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा कथंचित् अस्तिरूप है। परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव की अपेक्षा कथंचित् नास्तिरूप है। जिस समय वह स्वद्रव्यचतुष्टय और परद्रव्यचतुष्टय के द्वारा अक्रम से अर्थात् युगपत विवक्षित होता है उस समय स्यादवक्तव्य रूप है। स्वद्रव्यादिरूप प्रथम धर्म और परद्रव्यादिरूप द्वितीय धर्म से जिस समय क्रम से विवक्षित होता है उस समय कथंचित् अस्तिनास्ति रूप है। स्यात् अस्तिरूप प्रथम धर्म से और स्यात् अवक्तव्य रूप तृतीय धर्म से जिस समय विवक्षित होता है उस समय कथंचित् अस्ति अवक्तव्य रूप है। स्यात् नास्ति रूप द्वितीय धर्म और स्यात् अवक्तव्य रूप तृतीय धर्म से जिस समय क्रम से विवक्षित होता है उस समय कथंचित् नास्ति अवक्तव्य रूप है। स्यात् अस्तिरूप प्रथम धर्म, स्यात् नास्ति रूप द्वितीय धर्म और स्यात् अवक्तव्य रूप तृतीय धर्म से जिस समय क्रम से विवक्षित होता है उस समय कथंचित् अस्तिनास्ति अवक्तव्य रूप जीव है। इसी तरह अजीव आदि का भी कथन करना चाहिए।

4.3.5 ज्ञानप्रवादपूर्व—यह पूर्व बारह वस्तुगत, दो सौ चालीस प्राभृतों के एक कम एक करोड़ पदों द्वारा पाँच ज्ञान और तीन अज्ञानों का वर्णन करता है तथा द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा अनादि–अनंत, अनादि–सान्त, सादि–अनन्त और सादि–सान्त रूप ज्ञानादि तथा इसी तरह ज्ञान के स्वरूप का वर्णन करता है।

4.3.6 सत्यप्रवादपूर्व—यह पूर्व बारह वस्तुगत, दो सौ चालीस प्राभृतों के एक करोड़ छह पदों द्वारा वचनगुप्ति, वाक् संस्कार के कारण, वचनप्रयोग, बारह प्रकार की भाषा, अनेक प्रकार के वक्ता, अनेक प्रकार के असत्य वचन और दस प्रकार के सत्य वचन इन सबका वर्णन करता है।

असत्य नहीं बोलने को अथवा वचन संयम—मौन के धारण करने को वचनगुप्ति कहते हैं।

मस्तक, कण्ठ, हृदय, जिह्वा का मूल, दांत, नासिका, तालु और ओठ ये आठ वचन संस्कार के कारण हैं।

शुभ और अशुभ लक्षणरूप वचन प्रयोग का स्वरूप सरल है।

बारह प्रकार की भाषा के नाम निम्न प्रकार हैं—अभ्याख्यानवचन, कलहवचन, पैशून्य वचन, अबद्धप्रलापवचन, रतिवचन, अरतिवचन, उपधिवचन, निकृतिवचन, अप्रणतिवचन, मोषवचन, सम्यग्दर्शनवचन और मिथ्यादर्शन वचन।

"यह इसका कर्ता है" इस तरह अनिष्ट करने को अभ्याख्यान भाषा कहते हैं। कलह का अर्थ स्पष्ट ही है अर्थात् परस्पर विरोध के बढ़ाने वाले वचन को कलह कहते हैं। पीछे से दोष प्रकट करने को पैशून्य वचन कहते हैं। धर्म, अर्थ,काम और मोक्ष के सम्बन्ध से रहित वचनों को अबद्धप्रलाप वचन कहते हैं। इन्द्रियों के शब्दादि विषयों में राग उत्पन्न करने वाले वचनों को रति वचन कहते है। इन्द्रियों के विषयों के प्रति अरुचि या द्वेष उत्पन्न करने वाले वचनों को अरति वचन कहते हैं। जिस वचन को सुनकर परिग्रह रक्षण और अर्जन करने में आसक्ति उत्पन्न होती है उसे उपधि वचन कहते हैं। जिस वचन को अवधारण करके जीव व्यापार करते समय ठगने रूप प्रवृत्ति करने में असमर्थ होता है उसे निकृति वचन कहते हैं। जिस वचन को सुनकर तप और ज्ञान से अधिक गुण वाले पुरुषों में भी जीव नम्रीभूत नहीं होता है उसे अप्रणति वचन कहते हैं। जिस वचन को सुनकर चौर्य कर्म में प्रवृत्ति होती है उसे मोष वचन कहते हैं। समीचीन मार्ग के उपदेश देने वाले वचनों को सम्यग्दर्शनवचन कहते हैं। मिथ्यामार्ग के उपदेश देने वाले वचनों को मिथ्यादर्शन वचन कहते हैं।

जिनमें वक्तृपर्याय प्रगट हो गई है ऐसे द्वीन्द्रिय से आदि लेकर सभी जीव वक्ता हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा असत्य अनेक प्रकार का है।

सत्यवचन के दस भेद होते हैं—नामसत्य, रूपसत्य, स्थापनासत्य, प्रतीत्यसत्य, संवृतिसत्य, संयोजनासत्य, जनपदसत्य, देशसत्य, भावसत्य और समयसत्य।

मूल पदार्थ के नहीं रहने पर भी सचेतन और अचेतन द्रव्य के व्यवहार के लिये जो संज्ञा की जाती है उसे नाम सत्य कहते हैं। जैसे—ऐश्वर्य आदि गुणों के न होने पर भी किसी का नाम "इन्द्र" ऐसा रखना नाम सत्य है। पदार्थ के नहीं होने पर भी रूप की मुख्यता से जो वचन कहे जाते हैं उसे रूप सत्य कहते हैं। जैसे—चित्रलिखित पुरुष आदि में चैतन्य और उपयोगादि रूप अर्थ के नहीं रहने पर भी "पुरुष" इत्यादि कहना रुप सत्य है। मूल पदार्थ के नहीं रहने पर भी कार्य के लिये जो द्यूत सम्बन्धी अक्ष (जुए सम्बन्धी पासा) आदि में स्थापना की जाती है उसे स्थापना सत्य कहते हैं। सादि और अनादि भावों की अपेक्षा जो वचन बोला जाता है उसे प्रतीत्य सत्य कहते हैं। लोक में जो वचन संवृति–कल्पना के आश्रित बोले जाते हैं उन्हें संवृति सत्य कहते हैं। जैसे—पृथ्वी आदि अनेक कारणों के रहने पर भी जो पंक– कीचड़ में उत्पन्न होता है उसे पंकज कहते हैं इत्यादि। धूप के सुगंधीपूर्ण अनुलेपन और प्रघर्षण के समय अथवा पद्म, मकर, हंस, सर्वतोभद्र और क्रौंच आदि रूप व्यूह रचना के समय सचेतन–अचेतन द्रव्यों के विभागानुसार विधिपूर्वक रचना विशेष के प्रकाशक जो वचन हैं उन्हें संयोजना सत्य कहते हैं। आर्य और अनार्य के भेद से बत्तीस देशों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के प्राप्त कराने वाले वचन को जनपद सत्य कहते हैं। ग्राम, नगर, राजा, गण, पाखण्ड, जाति और कुल आदि के धर्मों के उपदेश करने वाले जो वचन हैं उन्हें देश सत्य कहते हैं। छद्मस्थों का ज्ञान यद्यपि द्रव्य की यथार्थता का निर्णय नहीं कर सकता है तो भी अपने धर्म के पालन करने के लिए "यह प्रासुक है यह अप्रासुक है" इत्यादि रूप से जो संयत

और श्रावक के वचन हैं, उन्हें भाव सत्य कहते हैं । आगमगम्य प्रतिनियत छह प्रकार के द्रव्य और उनके पर्यायों की यथार्थता के प्रगट करने वाले जो वचन हैं उन्हें समय सत्य कहते हैं।

4.3.7 आत्मप्रवाद पूर्व—यह पूर्व सोलह वस्तुगत, तीन सौ बीस प्राभृतों के छब्बीस करोड़ पदों द्वारा जीववेत्ता है, विष्णु है, भोक्ता है, बुद्ध है इत्यादि रूप से आत्मा का वर्णन करता है। कहा भी है—

"जीव कर्ता है, वक्ता है , प्राणी है, भोक्ता है, पुद्गल है, वेद है, विष्णु है, स्वयंभू है, शरीरी है , मानव है, सकता है, मानी है, जन्तु है, मायावी है, योग सहित है, संकुट है, असंकुट है, क्षेत्रज्ञ है और अन्तरात्मा है।"

आगे इन्हीं दोनों गाथाओं का अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है—जीता है, जीवित रहेगा और पहले जीवित था, इसलिये जीव है। शुभ और अशुभ कार्य को करता है इसलिये कर्ता है। सत्य-असत्य और योग्य-अयोग्य वचन बोलता है इसलिये वक्ता है। इसके प्राण पाये जाते हैं इसलिये प्राणी है। देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारकी के भेद से चार प्रकार के संसार में पुण्य और पाप का भोग करता है इसलिये भोक्ता है। छह प्रकार के संस्थान और नाना प्रकार के शरीरों द्वारा पूरण करता है और गलाता है इसलिये पुद्गल है। सुख और दुःख का वेदन करता है इसलिये वेद है अथवा जानता है इसलिये वेद है। प्राप्त हुये शरीर को व्याप्त करता है, इसलिये शरीरी है। मनु ज्ञान को कहते हैं, उसमें यह उत्पन्न हुआ है, इसलिये विष्णु है। स्वतः ही उत्पन्न हुआ है, इसलिये स्वयंभू है। संसार अवस्था में इसके शरीर पाया जाता है, इसलिये मानव है। स्वजन, सम्बन्धी, मित्रवर्ग आदि में आसक्त रहता है इसलिये सकता है। चार गतिरूप संसार में उत्पन्न होता है और दूसरों को उत्पन्न करता है इसलिये जन्तु है। इसके मान कषाय पाई जाती है इसलिये मानी है। इसके माया कषाय पाई जाती है अतः मायावी है। इसके तीन योग होते हैं इसलिये योगी है। अतिसूक्ष्म देह मिलने से संकुचित होता है इसलिये संकुट है। सम्पूर्ण लोकाकाश को व्याप्त करता है इसलिये असंकुट है। क्षेत्र अर्थात् अपने स्वरूप को जानता है इसलिये क्षेत्रज्ञ है। आठ कर्मों के भीतर रहता है इसलिये अन्तरात्मा है।

4.3.8 कर्मप्रवादपूर्व—यह पूर्व बीस वस्तुगत, चार सौ प्राभृतों के एक करोड़ अस्सी लाख पदों द्वारा आठ प्रकार के कर्मों का वर्णन करता है।

4.3.9 प्रत्याख्यानपूर्व—यह पूर्व बीस वस्तुगत, छह प्राभृतों के चौरासी लाख पदों द्वारा द्रव्य-भाव आदि की अपेक्षा परिमित काल रूप और अपरिमित रूप प्रत्याख्यान, उपवास विधि, पाँच समिति और तीन गुप्तियों का वर्णन करता है।

4.3.10 विद्यानुवादपूर्व—यह पंद्रह वस्तुगत, तीन सौ प्राभृतों के एक करोड़ दस लाख पदों द्वारा अंगुष्ठ, प्रसेना आदि सात सौ अल्प विद्याओं का, रोहिणी आदि पाँच सौ महाविद्याओं का और अन्तरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, स्वप्न, लक्षण, व्यंजन, चिन्ह इन आठ महानिमित्तों का वर्णन करता है।

4.3.11 कल्याणवादपूर्व—यह दस वस्तुगत, दो सौ प्राभृतों के छब्बीस करोड़ पदों द्वारा सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र और तारागणों के चार क्षेत्र, उपपाद स्थान, गति, वक्रगति तथा उनके फलों का, पक्षी के शब्दों का और अरिहन्त अर्थात् तीर्थंकर, बलदेव, वासुदेव और चक्रवर्ती आदि के गर्भावतार आदि महाकल्याणकों का वर्णन करता है।

4.3.12 प्राणावायपूर्व—यह पूर्व दस वस्तुगत, दो सौ प्राभृतों के तेरह करोड़ पदों द्वारा शरीर चिकित्सा आदि अष्टांग आयुर्वेद, भूतिकर्म अर्थात् शरीर आदि की रक्षा के लिये किये गये भस्मलेपन, सूत्रबन्धनादि कर्म, जांगुलि प्रक्रम (विषविद्या) और प्राणायाम के भेद-प्रभेदों का विस्तार से वर्णन करता है।

4.3.13 क्रियाविशालपूर्व—यह पूर्व दस वस्तुगत दो सौ प्राभृतों के नौ करोड़ पदों द्वार लेखन कला आदि बहत्तर कलाओं का, स्त्री संबन्धी गुण-दोष विधि का और छन्द निर्माण कला का वर्णन करता है।

4.3.14 लोकबिंदुसारपूर्व—यह पूर्व दस वस्तुगत, दो सौ प्राभृतों के बारह करोड़ पचास लाख पदों द्वारा आठ प्रकार के व्यवहारों का, चार प्रकार के बीजों का, मोक्ष को ले जाने वाली क्रिया का और मोक्ष सुख का वर्णन करता है।

इन चौदह पूर्वों में सम्पूर्ण वस्तुओं का जोड़ एक सौ पंचानवे है और सम्पूर्ण प्राभृतों का जोड़ तीन हजार नौ सौ है।

4.4 चूलिका—

दृष्टिवाद अंग का पंचम भेद जो चूलिका है उसके भी पाँच भेद हैं—

जलगता, स्थलगता, मायागता, रूपगता, और आकाशगता।

4.4.1 जलगता चूलिका—यह चूलिका दो करोड़ नौ लाख नवासी हजार दो सौ पदों द्वारा जल में गमन और जलस्तंभन के कारणभूत मंत्र-तंत्र तथा तपश्चर्या रूप अतिशय आदि का वर्णन करती है।

4.4.2 स्थलगता चूलिका—यह उतने ही (209892000) पदों द्वारा पृथ्वी के भीतर गमन करने के कारणभूत मंत्र-तंत्र और तपश्चरणरूप आश्चर्य आदि का तथा वास्तुविद्या और भूमि सम्बन्धी दूसरे शुभ-अशुभ कारणों का वर्णन करती है।

4.4.3 मायागता चूलिका—यह भी उतने ही पदों द्वारा मायारूप इन्द्रजाल आदि के कारणभूत मंत्र-तंत्र और तपश्चरण का वर्णन करती है।

4.4.4 रूपगता चूलिका—यह भी उतने ही पदों द्वारा सिंह, घोड़ा और हरिणादि के स्वरूप के आकार रूप से परिणमन करने के कारणभूत मंत्र-तंत्र और तपश्चरण का तथा चित्रकर्म, काष्ठकर्म, लेप्यकर्म और लेनकर्म आदि के लक्षण का वर्णन करती है।

4.4.5 आकाशगता चूलिका—उतने ही उपर्युक्त पदों द्वारा आकाश में गमन करने के कारणभूत मंत्र-तंत्र और तपश्चरण का वर्णन करती है।

इन पांचों ही चूलिकाओं के पदों का जोड़ दस करोड़ उनचास लाख छयालीस हजार पद हैं।

विशेष—जिनेंद्रदेव की वाणी द्वादशांगरूप है। इस द्वादशांग में ग्यारह अंगों में क्या-क्या विषय हैं, उन्हें यहां दिखाया गया है। पुनः बारहवें अंग के पांच भेद—परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका हैं। इनके विषयों को भी यहां संक्षेप में लिखा गया है अतः भगवान् की वाणी में आयुर्वेद, मंत्र, तंत्र, निमित्त ज्ञान आदि सभी विषय आ गये हैं। बारहवें अंग के परिकर्म नामक प्रथम भेद के पांच भेदों में "जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति" यह तृतीय भेद है। इसका लक्षण धवला में इस प्रकार से किया है—

"जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति नाम का परिकर्म तीन लाख पचीस हजार पदों के द्वारा जंबूद्वीप में स्थित भोगभूमि और कर्मभूमि में उत्पन्न हुये नाना प्रकार के मनुष्य तथा तिर्यंच आदि का और पर्वत, द्रह, नदी, वेदिका, वर्ष (क्षेत्र), आवास, अकृत्रिम जिनालय आदि का वर्णन करता है।"

वास्तव में इन अंगों में व्यवहारनय की मुख्यता से ही जीवादि तत्त्वों का वर्णन किया गया है। ये अंग साक्षात् भगवान् की वाणीरूप हैं अतः इन्हें असत्य भी नहीं कह सकते हैं तथा संपूर्ण ऋद्धियों के स्वामी और मति, श्रुत, अवधि तथा मनःपर्यय इन चार ज्ञान से समन्वित उसी भव से मोक्ष जाने वाले ऐसे गौतम गणधर ने इन अंग पूर्वों की रचना की है। इन द्वादश अंगों में सबसे प्रथम आचारांग है जिसका अत्यधिक महत्त्व है। सबसे प्रथम भगवान् ने मोक्षमार्ग पर चलने का उपदेश दिया है न कि श्रावक धर्म का। श्रावक धर्म का उपदेश तो सातवें उपासकाध्ययन नाम के अंग में किया है अतः इन अंगों के विषय को पढ़कर मोक्षमार्ग में चलने का प्रयत्न हर एक मोक्षाभिलाषी को करना ही चाहिये।

जब इन अंगों का विषय तीर्थंकर देव ने प्रतिपादित किया है, पुनः उसी दिव्यध्वनि को श्री गणधर देवों ने द्रव्य श्रुतरूप से कहा है, तब यहाँ यह सोचना चाहिए कि क्या महावीर तीर्थंकर व गौतम गणधर जनता को प्रपंच में उलझाने

वाले हैं ? यदि समयसार के पढ़ने मात्र से ही सम्यग्दर्शन हो जाता अथवा समयसार के ज्ञान से ही आत्मज्ञान होकर मोक्ष सुलभ हो जाता तो इन ग्यारह अंगों के पढ़ने-पढ़ाने का उपदेश भगवान् महावीर ने क्यों दिया ? समयसार सदृश आध्यात्मिक ग्रन्थ ही बता देते और कह देते कि इतने ग्रन्थ के अध्ययन मात्र से ही मोक्ष मिल जायेगा किन्तु ऐसा नहीं है, तभी तो पूर्व में तीर्थंकर होने वाले महामुनियों ने भी इन अंगों का तथा पूर्वों का अध्ययन किया था। देखिये—

हरिवंश पुराण में लिखा है कि वृषभदेव आदि चौबीस तीर्थंकरों ने तीर्थंकर से पूर्व तीसरे भव में गुरुओं के निकट जिनदीक्षा ली थी। इनमें से वृषभदेव पूर्वभव में चक्रवर्ती थे तथा चौदह पूर्वों के धारक थे, और शेष तीर्थंकर महामण्डलेश्वर थे एवं ग्यारह अंग के वेत्ता हुये थे।

इस प्रकरण से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि इन अंग–पूर्वों का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। मात्र समयसार आदि ग्रन्थों के आध्यात्मिक ज्ञान से ही आत्महित होना सरल नहीं है अतः आज भी उपलब्ध जो श्रुत—शास्त्र हैं जो कि बारहवें दृष्टिवाद अंग के अंशरूप हैं ऐसे धवला आदि ग्रन्थों का तथा उनके साररूप गोम्मटसार जीवकांड, कर्मकांड, लब्धिसार, क्षपणासार और त्रिलोकसार जैसे ग्रन्थों का अच्छी तरह से अध्ययन करना चाहिये।

बारहवें अंग में मुख्य रूप से 363 पाखंडमतों का स्वरूप बताकर उनका अच्छी तरह से खंडन किया गया है अतः आजकल जो कुछ लोगों की विचारधारा है कि " अपना ही सिद्धांत प्रतिपादित करते रहो दूसरों का खंडन मत करो" उन्हें भी समझ लेना चाहिये कि जब द्वादशांग जैसे महान् श्रुत भंडार में खंडन करने का विधान है तब क्या बिना खंडन किये स्वमत प्रतिपादन सही तरीके से हो सकता है ? और मंडन, इन दोनों बातों को यथोचित महत्त्व देना ही चाहिये। मिथ्या मत के खंडन का खंडन कर देने से तो उसका मंडन ही हो जाता है इसलिये आगम की आज्ञा को गलत कथमपि नहीं कहना चाहिये।

उसी प्रकार से आपने परिकर्म के पाँचों भेदों का रहस्य समझा है। पुनः सूत्र में क्या–क्या वर्णित है ? सो भी हृदयंगम किया है। अनंतर आपने यह भी समझा है कि प्रथमानुयोग भी द्वादशांग का अवयव है अतः आजकल जो लोग प्रथमानुयोग को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं उन्हें भी अन्य–अन्य अनुयोगों के सदृश ही उसका आदर करते हुये रुचि से उसका स्वाध्याय करना चाहिये क्योंकि पुण्य पुरुषों का चरित्र ही हमें पुण्य पुरुष बनायेगा, यह निश्चित है।

इसमें सत्यप्रवाद पूर्व के अन्तर्गत असत्य भाषा एवं सत्य भाषाओं का अच्छी तरह से मनन करना चाहिये और असत्य भाषाओं को छोड़कर सत्य वचनों में प्रवृत्ति करनी चाहिये। सत्य वचन से वाक् सिद्धि प्राप्त हो जाती है। सर्वत्र विश्वस्तता रहती है और परम्परा से इस सत्य के प्रभाव से ही जीव "दिव्यध्वनि" के स्वामी बन जाते हैं जिसके द्वारा असंख्य जीवों को वे धर्मोपदेश देकर संसार समुद्र से पार कर देते हैं अतः सत्य वचनों का सदैव आदर करना चाहिये। आत्मप्रवादपूर्व में आत्मा के स्वरूप का वर्णन आया है उसे पढ़कर आत्मा का स्वरूप सर्वांगीण समझकर उस पर श्रद्धान रखना चाहिये उसी प्रकार कर्मप्रवाद पूर्व आदि के विषय भी भगवान् तीर्थंकर की वाणी हैं। इसमें दसवें विद्यानुवाद पूर्व को पढ़ने के बाद विद्यादेवता आती हैं उस समय कदाचित् कोई साधु उनके प्रलोभन में पड़कर चारित्र से भ्रष्ट हो जाते हैं तो वे 'भिन्नदशपूर्वी " हो जाते हैं तथा जो मुनि सर्वथा उन विद्या देवताओं के प्रलोभन में न आकर उन्हें वापस कर देते हैं वे "अभिन्नदशपूर्वी " हैं। जो 11 अंग 14 पूर्वों के वेत्ता हैं वे "चतुर्दशपूर्वी " कहलाते हैं, आदि के दो शुक्लध्यान इनको ही होते हैं। यथा "शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः।" यह सूत्रवचन है। आदि के दो शुक्ल ध्यान इनको ही होते हैं। यथा "शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः।" यह सूत्रवचन है। इससे द्वादशांग श्रुतज्ञान का महत्त्व स्वयं स्पष्ट हो जाता है।

आजकल जो केवल अध्यात्म की रट लगाये हुये हैं और अन्य करणानुयोग, प्रथमानुयोग आदि की उपेक्षा करते हैं या उन्हें अप्रयोजनीभूत कहते हैं वे वास्तव में एकांती हैं, अनेकांत के रहस्य से काफी दूर हैं। हमें निश्चित विश्वास रखना चाहिये कि तीर्थंकर परमदेव किसी को वंचित करने वाले नहीं थे। यदि मात्र अध्यात्म शास्त्र से ही आत्महित होता तो वे

अवश्य ही स्पष्ट कह देते कि अन्य आगम के पढ़ने से कोई लाभ नहीं है अथवा अन्य आगमों का प्रतिपादन ही वे नहीं करते किन्तु ऐसी बात नहीं है अत: द्वादशांगमय श्रुतज्ञान हमें कब प्राप्त हो ऐसी भावना भाते हुये श्रुतदेवता की सतत उपासना करनी चाहिये। आज द्वादशांग रूप श्रुतज्ञान दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में उपलब्ध नहीं है। मात्र जो भी ग्रन्थ उपलब्ध हैं वे उसी के अंशभूत हैं। हाँ, षट्खंडागम, कषायपाहुड़ और महाबंध ग्रन्थ में द्वादशांग के किसी अंग पूर्व का कुछ विशेष अंश माना गया है अत: इन ग्रन्थों को महान् आदर से देखते हुये उन्हें साक्षात् भगवान् की वाणी ही समझना चाहिये । शेष ग्रन्थों को भी भगवान् की वाणी का अंश ही निश्चित करके सतत सर्व जैन ग्रन्थों को प्रमाण मानना चाहिए।

4.5 द्वादशांग जिनवाणी को ग्रंथरूप में नहीं लिखा जा सकता—

जैन वाङ्मय द्वादशांगरूप है और दिगम्बर जैन परम्परा के अनुसार आज द्वादशांग उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि द्वादशांग लिखे ही नहीं जा सकते, लिपिबद्ध नहीं हो सकते। आज उपलब्ध जैन वाङ्मय उस द्वादशांग का अंशमात्र ही है, जैसे नदी का जल कटोरी अथवा शीशी में भर लिया जाये। जैन श्रुत अर्थात् द्वादशांग अनादि-अनंत है और चौबीसों तीर्थंकर भगवान अपने-अपने काल में दिव्यध्वनि के द्वारा उसे प्रगट करते हैं। भगवान की दिव्यध्वनि को गणधर देव द्वादशांगरूप में निबद्ध करके भव्य जीवों को उसका पान कराते हैं।

भगवान महावीर आज से 2612 वर्ष पूर्व जन्में और 2570 वर्ष पूर्व भगवान ने केवलज्ञान प्राप्त किया, 66 दिन तक भगवान की दिव्यध्वनि नहीं खिरी, तब सौधर्म इन्द्र ने वेद-वेदांगों के पारंगत श्रेष्ठ ब्राह्मण इन्द्रभूति गौतम को उनके पाँच सौ शिष्यों के साथ भगवान के समवसरण में उपस्थित किया। मानस्तंभ को देखते ही गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति ब्राह्मण का मान गलित हो गया, 'जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचार.....' इत्यादि रूप से उन्होंने भगवान की स्तुति की। केशलोंच करके जैनेश्वरी दीक्षा को धारण करते ही उन्हें सभी ऋद्धियाँ एवं मन:पर्ययज्ञान प्रगट हो गया तथा भगवान के प्रथम गणधर का पद उन्हें प्राप्त हो गया। वीरशासन जयंती, श्रावण कृ. एकम् के इस पावन दिवस भगवान की प्रथम दिव्यध्वनि खिरी एवं अन्तर्मुहूर्त में ही गौतम गणधर स्वामी ने इस दिव्यध्वनि को द्वादशांगरूप में निबद्ध कर दिया।

धवला पुस्तक 1, पृ. 65 पर उल्लिखित है—

तेण महावीरेण केवलणाणिणा कहिदत्थो तम्हि चेव काले तत्थेव खेत्ते खयोवसम-जणिद-चउरमल-बुद्धि-संपण्णेण बम्हणेण गोदम-गोत्तेण सयलदुस्सुदि-पारएण जीवाजीव-विसय-संदेह-विणासणट्ठमुवगय-वड्ढमाण-पाद-मूलेण इंदभूदिणावहारिदो।

इस प्रकार केवलज्ञान से विभूषित उन भगवान् महावीर के द्वारा कहे गये अर्थ को, उसी काल में और उसी क्षेत्र में क्षयोपशमविशेष से उत्पन्न हुए चार प्रकार के निर्मल ज्ञान से युक्त, वर्ण से ब्राह्मण, गोतमगोत्रीय, संपूर्ण दु:श्रुति में पारंगत और जीव-अजीवविषयक संदेह को दूर करने के लिए श्री वर्द्धमान के पादमूल में उपस्थित हुए ऐसे इन्द्रभूति ने अवधारण किया।

अर्थात् अर्थकर्ता भगवान महावीर हैं और ग्रंथकर्ता इन्द्रभूति गौतम गणधर स्वामी हैं। धवला पुस्तक 9 में भी पृ. 107 पर विस्तार से इस विषय का एवं गौतम स्वामी की ऋद्धियों का वर्णन है।

4.6 भगवान महावीर के पश्चात् द्वादशांग श्रुत की परम्परा—

भगवान महावीर के मोक्ष जाने के बाद 62 वर्ष तक अनुबद्ध केवली हुए हैं और 100 वर्ष तक श्रुतकेवली हुए हैं अर्थात् 162 वर्ष तक ही द्वादशांग श्रुतज्ञान रहा है, इसके बाद द्वादशांग श्रुतज्ञान नहीं रहा।

धवला पुस्तक 9, पृ. 130 एवं जयधवला (कषायपाहुड़) पुस्तक-1, पृ. 687 के आधार पर यह स्पष्ट है कि—

जिस दिन भगवान महावीर मोक्ष गये उसी दिन सायंकाल गौतम स्वामी को केवलज्ञान हो गया। केवली भगवान गौतम स्वामी 12 वर्ष तक रहे, जिस दिन उन्हें मोक्ष की प्राप्ति हुई उसी दिन भगवान महावीर के द्वितीय गणधर श्री सुधर्माचार्य को केवलज्ञान की प्राप्ति हो गयी, वह भी 12 वर्ष तक केवली अवस्था में रहे, पुनः उनके मोक्षगमन के दिन ही जम्बूस्वामी ने केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया। ये जम्बूस्वामी 38 वर्ष तक केवली रहे हैं, इस प्रकार भगवान महावीर के पश्चात् 12+12+38=62 वर्ष तक अनुबद्ध केवली रहे हैं।

पुनः नंदी आचार्य, नंदिमित्र आचार्य, अपराजित आचार्य, गोवर्धन आचार्य और भद्रबाहु आचार्य, ये पाँच श्रुतकेवली 100 वर्ष की अवधि में क्रम से हुए हैं।

इसके पश्चात् 11 अंग और 14 पूर्व रूप द्वादशांग श्रुत नहीं रहा। जो रहा, वो इस प्रकार है—

ग्यारह आचार्य 11 अंग और 10 पूर्व के ज्ञाता हुए, जिनका काल रहा 183 वर्ष। ये ग्यारह आचार्य थे—विशाख, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल, गंगदेव एवं सुधर्माचार्य। अनंतर 5 आचार्य 11 अंग के धारी हुए, पूर्व का ज्ञान इनको नहीं रहा, इनका काल 220 वर्ष था। ये पाँच आचार्य थे—नक्षत्राचार्य, जयपाल आचार्य, पांडु आचार्य, ध्रुवसेन आचार्य और कंस आचार्य। पुनः सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु, लोहाचार्य ये चार आचार्य मात्र एक अंग आचारांग के ज्ञाता हुए अर्थात् शेष 10 अंग एवं 14 पूर्वों का ज्ञान लुप्त हो गया। इनका काल रहा 118 वर्ष।

इस प्रकार गौतम स्वामी से लेकर आचारांगधारी आचार्यों तक का काल 62+100+183+220+118=683 वर्ष प्रमाण है।

इसके पश्चात् श्री धरसेनाचार्य को अग्रायणीय पूर्व अर्थात् द्वितीय पूर्व के कुछ अंश का ज्ञान था, जिसे उन्होंने श्री पुष्पदंत-भूतबलि आचार्य को दिया, जिन्होंने श्री धरसेनाचार्य से प्राप्त ज्ञान के आधार पर षट्खण्डागम ग्रंथ की रचना की अर्थात् अंशज्ञान से षट्खण्डागम ग्रंथ की रचना हुई, जिसकी धवला टीका 16 पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हुई है।

कषायप्राभृत ग्रंथ के कर्ता श्री गुणधर आचार्य को पाँचवें पूर्व के कुछ अंश का ज्ञान था, जिससे उन्होंने कषायप्राभृत ग्रंथ रचा, जिसकी टीका जयधवला की 16 पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हो चुकी है।

द्वादशांग श्रुत अर्थात् 11 अंग एवं 14 पूर्वों का ज्ञान दिगम्बर मुनिराज को ही हो सकता है। आर्यिकाएँ 11 अंग तक का ही ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं, जबकि ऐलक, क्षुल्लक एवं श्रावकवर्ग को द्वादशांग (एवं प्रायश्चित्त ग्रंथों) की ज्ञान प्राप्ति का अधिकार नहीं है। देखें आचार्य वसुनन्दि कृत वसुनन्दि श्रावकाचार में पृष्ठ 112 पर—

दिणपडिम-वीरचरिया-तियालजोगेसु णत्थि अहियारो।
सिद्धंत-रहस्साण वि अज्झयणं देसविरदाणं।।312।।

दिन में प्रतिमायोग धारण करना अर्थात् नग्न होकर दिन भर कायोत्सर्ग करना, वीरचर्या अर्थात् मुनि के समान गोचरी करना, त्रिकाल योग अर्थात् गर्मी में पर्वत के शिखर पर, बरसात में वृक्ष के नीचे और सर्दी में नदी के किनारे ध्यान करना, सिद्धान्त ग्रंथों का अर्थात् केवली, श्रुतकेवली कथित गणधर, प्रत्येक बुद्ध और अभिन्नदशपूर्वी साधुओं से निर्मित ग्रंथों का अध्ययन और रहस्य अर्थात् प्रायश्चित्त शास्त्र का अध्ययन, इतने कार्यों में देशविरति श्रावकों का अधिकार नहीं है।।312।।

यद्यपि आर्यिकाएँ पंचम गुणस्थान वाली हैं फिर भी ये ग्यारहवीं प्रतिमाधारी क्षुल्लक, ऐलक की अपेक्षा उत्कृष्ट हैं क्योंकि ये उपचार से महाव्रती संयतिका कहलाती हैं। मुनि के समान सर्व मूलगुणों को और समाचार क्रियाओं को पालन करती हैं। ग्यारह अंग तक श्रुत का अध्ययन करने का भी इनको अधिकार है।

पुराण ग्रंथ में भी सुना जाता है। उसे ही कहते हैं—

''एकादशांगभृज्जाता सार्यिकापि सुलोचना।।''

''वह सुलोचना आर्यिका भी ग्यारह अंग के ज्ञान को धारण करने वाली हो गई।''

4.7 द्वादशांग रचना गणधर ही करते हैं—

(1) दिगम्बर जैन परम्परा के अनुसार द्वादशांग श्रुत को निबद्ध करने का अधिकार मात्र गणधर देव को ही है अन्य किन्हीं को नहीं है, श्रुतकेवली यद्यपि इस सम्पूर्ण द्वादशांग के ज्ञाता होते हैं तथापि वो भी इसे रचते नहीं हैं, गुरुमुख से पढ़कर ही इसका ज्ञान प्राप्त करते हैं। महान क्षयोपशम के धारी सभी श्रुतकेवली एकपाठी थे, मात्र सुनकर ही उन्होंने इस महान श्रुत को धारण कर लिया था।

श्रुतभक्ति में आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है—

श्रुतमपि जिनवरविहितं, गणधररचितं द्वयनेकभेदस्थम्।
अंगांगबाह्यभावितमनंतविषयं नमस्यामि।।अर्थात्,
जिनवर कथित रचित गणधर से, युत अंगांग बाह्य संयुत।
द्वादश भेद अनेक अनंत, विषययुत वंदूँ मैं जिनश्रुत।।

स्पष्ट है कि जिनवर द्वारा कथित बारह अंग एवं अंगबाह्य से संयुक्त जिनश्रुत गणधर स्वामी द्वारा रचित होता है।

लघु श्रुतभक्ति की निम्न पंक्तियाँ भी दृष्टव्य हैं—

अर्हद्वक्त्रप्रसूतं, गणधररचितं द्वादशांगं विशालं।
चित्रं बह्वर्थयुक्तं, मुनिगण वृषभैर्धारितं बुद्धिमद्भिः।।
मोक्षाग्रद्वारभूतं, व्रतचरणफलं ज्ञेयभावप्रदीपं।
भक्त्या नित्यं प्रवन्दे, श्रुतमहमखिलं सर्वलोकैकसारम्।।1।।
जिनेन्द्रवक्त्रप्रतिनिर्गतं वचो, यतीन्द्रभूतिप्रमुखैर्गणाधिपैः।
श्रुतं धृतं तैश्च पुनः प्रकाशितं, द्विषट्प्रकारं प्रणमाम्हं श्रुतं।।2।।
कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पंचाशदष्टौ च सहस्रसंख्यमेतच्छ्रुतं पंचपदं नमामि।।3।।
अरहंतभासियत्थं, गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाणमहोवहिं सिरसा।।4।।अर्थात्

अर्हन् मुख से निकली गणधर, रचित सुबारह अंग महान्।
बुद्धिमंत मुनिपुंगव से, धारित बहुअर्थ सहित अमलान।।
मोक्ष अग्र का द्वार चरित, व्रत फलयुत ज्ञेयजगत् दीपक।
सर्वजगत् में सार सर्वश्रुत, को नित वंदूँ भक्तीयुत।।1।।
श्रीजिनेंद्र के मुख पंकज से, प्रगट दिव्यध्वनि वचनस्वरूप।
इन्द्रभूति यतिपति गणधर ने,श्रुत को धारण किया अनूप।।
उन गणधर देवों ने द्वादश, अंग सहित द्रव्यश्रुत को।
किया प्रकाशित इस पृथ्वी पर, नमूँ नमूँ मैं सब श्रुत को।।2।।
इक सौ बारह कोटि तिरासी, लाख अठावन सहस रु पाँच।
द्वादशांग श्रुत के पद इतने, वंदन करूँ नमाकर माथ।।3।।
अर्हत् कथित अर्थमय सम्यक्, गूँथा है गणधर गुरु ने।
उस श्रुतज्ञान जलधि को शिर से, प्रणमूँ भक्ति समन्वित मैं।।4।।

इसी प्रकार प्रचलित जिनवाणी पूजा में भी निम्न पंक्तियाँ देखें—

तीर्थंकर की धुनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई।
सो जिनवर वानी शिवसुख दानी, त्रिभुवन मानी पूज्य भई।।

(2) इस संदर्भ में एक मुख्य तथ्य यह है कि **द्वादशांग का एक मध्यम पद 1634 करोड़, 83 लाख 7888 अक्षर का होता है तथा द्वादशांग में कुल 112 करोड़ 83 लाख 58 हजार 5 पद होते हैं** अतः द्वादशांग तो दूर एक पद की रचना करना ही कठिन है, तब द्वादशांग की रचना करने का विचार करना ही जिनवाणी के अवर्णवाद के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।

अतः वास्तविकता को समझकर किन्हीं को भी द्वादशांग की रचना करने का विचार कभी भी नहीं करना चाहिए। द्वादशांग के अंश के रूप में जो भी साहित्य—कषायपाहुड, षट्खण्डागम, महाबंध एवं उन पर आधारित गोम्मटसार जीवकाण्ड, गोम्मटसार कर्मकाण्ड आदि ग्रंथों का स्वाध्याय-मनन-चिंतन करके अपने जीवन को सफल करना चाहिए तथा आगम विरुद्ध किसी भी प्रक्रिया से स्वयं को सर्वथा विलग रखना चाहिए।

4.8 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-अंगप्रविष्ट के कितने भेद हैं ?

(क) चौदह ☐ (ख) बारह ☐ (ग) पन्द्रह ☐

प्रश्न 2-जिसमें 18000 पदों द्वारा मुनियों के आचार का वर्णन रहता है वह ..... कहलाता है।

(क) आचारांग ☐ (ख) स्थानांग ☐ (ग) सूत्रकृतांग ☐

प्रश्न 3-पुण्य के फल का वर्णन करने वाली कथा को ..... कथा कहते हैं।

(क) आक्षेपिणी ☐ (ख) विक्षेपिणी ☐ (ग) संवेदनी ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-द्वादशांग श्रुतज्ञान क्या है ? बताइए ?

प्रश्न 2-उपासकाध्ययनांग में किसका वर्णन किया गया है ?

प्रश्न 3-अन्तकृत् केवली किसे कहते हैं ? अन्तकृत् केवलियों के नाम बताते हुए यह भी बताइए कि वे किस प्रकार अन्तकृत् केवली हुए ?

प्रश्न 4-'आक्षेपणी' एवं 'विक्षेपणी' कथा को स्पष्ट कीजिए ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-दृष्टिवाद अंग के परिकर्म नामा भेद के पाँच भेद कौन से हैं ? उनके नाम बताकर उनको परिभाषित भी कजिए ?

जिनागम दर्पण

-संदर्भ ग्रंथ-

1.	कषायप्राभृत	-श्री गुणधर आचार्य
2.	षटखण्डागम	-मुनि श्री पुष्पदंत व मुनि श्री भूतबलि
3.	महाबन्ध	-मुनि श्री भूतबलि
4.	जयधवला	-आचार्य श्री वीरसेन एवं आचार्य श्री जिनसेन
5.	धवला टीका	-आचार्य श्री वीरसेन स्वामी
6.	तिलोयपण्णत्ती	-यतिवृषभाचार्य
7.	त्रिलोकसार	-श्री नेमिचन्द्राचार्य
8.	परीक्षा	-गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी
9.	प्रतिज्ञा	-गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी
10.	समवसरण रचना	-गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

प्रश्नावली (Questions Bank)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्रश्न 1- श्रीराम के दादा का क्या नाम था ?

(क) राजा चन्द्रगति ☐ (ख) राजा अनरण्य ☐ (ग) भामण्डल ☐

प्रश्न 2- 'शत्रुघ्न' की माँ का क्या नाम था ?

(क) अपराजिता ☐ (ख) सुमित्रा ☐ (ग) सुप्रभा ☐

प्रश्न 3- सीता के माता-पिता का क्या नाम था ?

(क) रानी विदेहा-राजा जनक ☐

(ख) रानी विदेहा-राजा दशरथ ☐

(ग) रानी अपराजिता-राजा जनक ☐

प्रश्न 4- लक्ष्मण कौन से वन में रहें ?

(क) अरण्य ☐ (ख) दंडक ☐ (ग) इनमें से कोई नहीं ☐

प्रश्न 5- चन्द्रनखा के पति का क्या नाम था ?

(क) कुलभूषण ☐ (ख) लक्ष्मण ☐ (ग) खरदूषण ☐

प्रश्न 6- शंबुक ने किस खड्ग के लिए बारह वर्ष जंगल में तपश्चर्या की ?

(क) सूर्यहास ☐ (ख) चन्द्रहास ☐ (ग) ये दोनों ☐

प्रश्न 7- रावण को किसने मारा ?

(क) राम ☐ (ख) लक्ष्मण ☐ (ग) सुग्रीव ☐

प्रश्न 8- रावण की कितनी रानियाँ थीं ?

(क) 16 हजार ☐ (ख) 9 हजार ☐ (ग) 18 हजार ☐

प्रश्न 9- मंदोदरी ने किन आर्यिका से दीक्षा ली ?

(क) पृथिवीमती ☐ (ख) शशिकांता ☐ (ग) इनमें से कोई नहीं ☐

प्रश्न 10- "भाई! जो गति माता की होगी वह अपनी होगी" ये शब्द किसने कहे ?

(क) लक्ष्मण ☐ (ख) कुश ☐ (ग) सुग्रीव ☐

प्रश्न 11- उन क्षुल्लक का नाम बताइए जो राम को सीता की परीक्षा लेने के लिए मना करते हैं ?

(क) सिद्धार्थ ☐ (ख) अनंतवीर्य ☐ (ग) इनमें से कोई नहीं ☐

प्रश्न 12- राम के उस सेनापति का नाम बताओ ? जो सीता को वन में छोड़कर आया ?

(क) विभीषण ☐ (ख) सुग्रीव ☐ (ग) कृतांतवक्त्र ☐

प्रश्न 13- कुरुजांल देश के किस नगर में कुरुवंशी राज्य करते थे ?

(क) अयोध्या ☐ (ख) हस्तिनापुर ☐ (ग) दिल्ली ☐

प्रश्न 14- राजा पाराशर की रानी गुणवती का दूसरा नाम क्या था ?

(क) मृगावती ☐ (ख) शंखावती ☐ (ग) योजनगन्धा ☐

प्रश्न 15- यदु नामक राजा किस वंश में उत्पन्न हुए ?

(क) कुरुवंश ☐ (ख) हरिवंश ☐ (ग) इक्ष्वाकुवंश ☐

प्रश्न 16- राजा समुद्रविजय की महारानी का क्या नाम था ?

(क) शिवादेवी ☐ (ख) लक्ष्मणा देवी ☐ (ग) सिद्धार्था देवी ☐

प्रश्न 17- किसके रूप सौन्दर्य को देखकर नगर की स्त्रियाँ पागल सी हो जाती थीं ?

(क) राजा समुद्रविजय ☐ (ख) श्रीकृष्ण ☐ (ग) कुमार वसुदेव ☐

प्रश्न 18- विजयखेट नगर में स्वयंवर में ..... में जीतकर कुमार वसुदेव ने गंधर्वसेना से विवाह किया ?

(क) मल्लयुद्ध ☐

(ख) वीणावादन ☐

(ग) मछली की आँख में सही निशाना लगाकर ☐

प्रश्न 19- माता शिवादेवी के आंगन में कुबेर प्रतिदिन कितने रत्नों की वर्षा करता था ?

(क) साढ़े बारह करोड़ ☐ (ख) अठारह करोड़ ☐ (ग) बीस करोड़ ☐

प्रश्न 20- षट्दिक्कुमारियों में से एक-

(क) अंजना ☐ (ख) धृति ☐ (ग) सुसीमा ☐

प्रश्न 21- भगवान नेमिनाथ ने कौन सी तिथि में जन्म लिया ?

(क) श्रावण कृष्णा एकम् ☐ (ख) मगसिर सुदी तीज ☐ (ग) श्रावण सुदी छठ ☐

प्रश्न 22- राजगृह नगर के राजदरबार में उत्तम रत्नों की भेंट जरासंध चक्री को देने के लिए कौन गया ?

(क) एक विद्वान् ☐ (ख) एक सैनिक ☐ (ग) वनमाली ☐

प्रश्न 23- नारायण श्रीकृष्ण ने शत्रुक्षय कर विजय प्राप्ति हेतु किससे प्रश्न किया ?

(क) सौधर्म इन्द्र से ☐ (ख) भगवान नेमिनाथ से ☐ (ग) रोहिणी रानी से ☐

प्रश्न 24- प्रतिनारायण जरासंध ने युद्ध हेतु कौन से व्यूह की रचना की ?

(क) चक्रव्यूह ☐ (ख) गरुड़ व्यूह ☐ (ग) इनमें से कोई नहीं ☐

प्रश्न 25- सेठ हेमदत्त मनोवती के कौन थे ?

(क) पिता ☐ (ख) श्वसुर ☐ (ग) भाई ☐

प्रश्न 26- मनोवती की माँ का क्या नाम था ?

(क) हेमश्री ☐ (ख) महासेना ☐ (ग) इनमें से कोई नहीं ☐

प्रश्न 27- मनोवती ने मंदिर में क्या चढ़ाने का नियम लिया था ?

(क) हीरा ☐ (ख) मोती ☐ (ग) गजमोती ☐

प्रश्न 28-चार पुरुषार्थों में से प्रथम पुरुषार्थ.....

(क) काम ☐ (ख) धर्म ☐ (ग) मोक्ष ☐

प्रश्न 29-धर्म का निकेतन..... ही है।

(क) कर्म ☐ (ख) घर ☐ (ग) श्रीजिनमंदिर ☐

प्रश्न 30-मनोवती ने राजा को भेंट चढ़ाने के लिए बुद्धिसेन को क्या दिया था ?

(क) मुहर ☐ (ख) मोती ☐ (ग) वस्त्राभूषण ☐

प्रश्न 31-मनोवती ने बुद्धिसेन को क्या बनवाने को कहा ?

(क) जिनमंदिर ☐ (ख) राजमहल ☐ (ग) इनमें से कोई नहीं ☐

प्रश्न 32-हेमश्री, मनोवती की कौन थी ?

(क) दासी ☐ (ख) सास ☐ (ग) माता ☐

प्रश्न 33-महाराज यशोधर की पुत्री का क्या नाम था ?

(क) गुणवती ☐ (ख) मनोवती ☐ (ग) इनमें से कोई नहीं ☐

प्रश्न 34-भगवान आदिनाथ के केवलज्ञान वृक्ष का नाम ?

(क) वटवृक्ष ☐ (ख) जम्बूवृक्ष ☐ (ग) शाल्मलि वृक्ष ☐

प्रश्न 35-भगवान आदिनाथ का समवसरण सर्वप्रथम कहाँ रचा गया ?

(क) अयोध्या ☐ (ख) पुरिमतालपुर ☐ (ग) अष्टापद ☐

प्रश्न 36-जो नौकर-चाकरों के समान हैं, वे.....देव कहलाते हैं ?

(क) किल्विषक ☐ (ख) प्रकीर्णक ☐ (ग) आभियोग्य ☐

प्रश्न 37-समवसरण की पाँचवीं भूमि का नाम-

(क) श्रीमण्डप ☐ (ख) खातिका ☐ (ग) ध्वजाभूमि ☐

प्रश्न 38-मानस्तंभ की प्रथम कटनी किससे बनी होती है ?

(क) वैडूर्यमणिमय ☐ (ख) सुवर्णमय ☐ (ग) नानावर्णमय ☐

प्रश्न 39-"समवसरण स्तोत्र" के रचयिता कौन हैं ?

(क) आ. वादिराज ☐ (ख) श्री विष्णुसेन ☐ (ग) आ. मानतुंग स्वामी ☐

प्रश्न 40-भगवान के समवसरण में कितने प्रातिहार्य होते हैं ?

(क) चार ☐ (ख) आठ ☐ (ग) दो ☐

प्रश्न 41-भगवान के आजू-बाजू यक्षेन्द्र कितने चंवर ढोरते हैं ?

(क) चार ☐ (ख) चौंसठ ☐ (ग) पाँच ☐

प्रश्न 42-अर्हन्त भगवान के कितने अतिशय होते हैं ?

(क) 34 ☐ (ख) 10 ☐ (ग) 14 ☐

प्रश्न 43- द्वादशांग श्रुत की रचना किसने की ?

(क) भगवान महावीर ने ☐ (ख) श्री गौतम स्वामी ने ☐ (ग) भद्रबाहु स्वामी ने ☐

प्रश्न 44- पेज्ज कहते हैं—

(क) राग को ☐ (ख) द्वेष को ☐ (ग) मोह को ☐

प्रश्न 45- ..... के बिना राग और द्वेष नहीं रह सकते हैं।

(क) पाप ☐ (ख) कषाय ☐ (ग) इनमें से कोई नहीं ☐

प्रश्न 46- षट्खण्डों में प्रथम खण्ड का नाम क्या है ?

(क) खुद्दाबंध ☐ (ख) जीवट्ठाण ☐ (ग) महाबंध ☐

प्रश्न 47- बंध विधान कितने प्रकार का है ?

(क) चार ☐ (ख) पाँच ☐ (ग) सात ☐

प्रश्न 48- 'वेदना' खंड का परिमाण कितना है ?

(क) 18 हजार पद ☐ (ख) 16 हजार पद ☐ (ग) 19 हजार पद ☐

प्रश्न 49- षट्खण्डागम के चार खंड–वेदना, वर्गणा, खुद्दाबंध तथा ..... है।

(क) प्रकृति बंध ☐ (ख) महाबंध ☐ (ग) इनमें से कोई नहीं ☐

प्रश्न 50- कषाय प्राभृत में गुणधराचार्य द्वारा कितनी गाथाएँ लिखी गई हैं ?

(क) 180 ☐ (ख) 290 ☐ (ग) इनमें से कोई नहीं ☐

प्रश्न 51- 'धवलशास्त्र' का प्रमाण कितना है ?

(क) सत्तर हजार ☐ (ख) साठ हजार ☐ (ग) चालीस हजार ☐

प्रश्न 52- अंगप्रविष्ट के कितने भेद हैं ?

(क) चौदह ☐ (ख) बारह ☐ (ग) पन्द्रह ☐

प्रश्न 53- जिसमें 18000 पदों द्वारा मुनियों के आचार का वर्णन रहता है वह—

(क) आचारांग ☐ (ख) स्थानांग ☐ (ग) सूत्रकृतांग ☐

प्रश्न 54- पुण्य के फल का वर्णन करने वाली कथा को ..... कथा कहते हैं।

(क) आक्षेपिणी ☐ (ख) विक्षेपिणी ☐ (ग) संवेदनी ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1- राजा जनक को मायावी घोड़ा कहाँ और क्यों ले गया था ?

प्रश्न 2- जब राजा जनक ने सीता का विवाह भामण्डल के साथ कराने से मना कर दिया, तो राजा चन्द्रगति ने क्या शर्त रखी ?

प्रश्न 3- भामण्डल का सीता के साथ क्या संबंध था ? भामण्डल का पूर्व भव बताइये ?

प्रश्न 4- रानी सुप्रभा ने किस बात से दु:खी होकर नौकर से विष लाने को कहा ?

प्रश्न 5- खरदूषण और लक्ष्मण के बीच युद्ध क्यों हुआ ?

प्रश्न 6- रावण ने सीता का हरण किस प्रकार किया ?

प्रश्न 7- सुग्रीव कौन था ? वह राम के पास क्यों आया ?

प्रश्न 8- राम को "सीता कहाँ है", यह समाचार किससे मिला ? लंका कहाँ पर स्थित थी ?

प्रश्न 9- रावण की मृत्यु के बाद वहाँ कौन से मुनि आते हैं उनके साथ और कितने मुनि थे तथा वे कहाँ ठहर जाते हैं ?

प्रश्न 10- रावण के कितने भाई थे ? नाम बताइए एवं रावण की पट्टरानी का नाम भी बताइए ?

प्रश्न 11- अयोध्या में राम के वैभव को बताइये ?

प्रश्न 12- त्रैलोक्यमंडन हाथी के पूर्व भवों के बारे में देशभूषण-कुलभूषण मुनिराज क्या कहते हैं ? बताइये ?

प्रश्न 13- सीता ने अपने शीलव्रत की परीक्षा देने के लिए राम को कौन-कौन सी शपथ बताई ? उनमें से राम ने क्या करने की आज्ञा दी ?

प्रश्न 14- जब सीता ने अग्नि में प्रवेश किया तो देवों ने क्या-क्या किया ?

प्रश्न 15- सती-सीता को इस पर्याय में अपवाद का दु:ख क्यों सहना पड़ा ? उन्होंने पूर्व भव में क्या किया था ?

प्रश्न 16- राम एवं लव-कुश किन मुनि से दीक्षा लेते हैं ?

प्रश्न 17- राजा अंधकवृष्टि के कितने पुत्र और पुत्रियाँ थीं, नाम बताइए ?

प्रश्न 18- हरिवंश और कुरुवंश का आपस में क्या संबंध था ?

प्रश्न 19- राजा पाण्डु को किस निमित्त से वैराग्य हुआ ?

प्रश्न 20- भील की गुरुभक्ति से प्रभावित होकर गुरु द्रोणाचार्य ने उससे क्या गुरु दक्षिणा मांगी और क्यों मांगी ?

प्रश्न 21- महारानी रोहिणी ने कितने और कौन-कौन से स्वप्न देखे तथा उसका फल किससे पूछा ?

प्रश्न 22- कंस का संक्षिप्त परिचय बताइए ?

प्रश्न 23- श्रीकृष्ण ने कालिया नाग का मर्दन किस प्रकार किया ?

प्रश्न 24- श्रीकृष्ण के वैभव का वर्णन कीजिए ?

प्रश्न 25- द्वारिकापुरी कितने योजन लम्बी और कितने योजन चौड़ी थी ?

प्रश्न 26- धनकुबेर ने श्रीकृष्ण तथा बलदेव के लिए क्या-क्या वस्तुएँ प्रदान कीं ?

प्रश्न 27- श्रीकृष्ण ने शिशुपाल का वध किस प्रकार किया ?

प्रश्न 28- कौरव-पाण्डव का मिलन किस प्रकार हुआ, संक्षेप में बताइए ?

प्रश्न 29- नारायण श्रीकृष्ण की अक्षौहिणी सेना का प्रमाण बताइए ?

प्रश्न 30- गुरु द्रोणाचार्य की मृत्यु किस प्रकार हुई ?

प्रश्न 31- भगवान नेमिनाथ को वैराग्य किस निमित्त से हुआ ?

प्रश्न 32- गरुड़ व्यूह की रचना का वर्णन संक्षेप में कीजिए ?

प्रश्न 33- मनोवती का विवाह कहाँ और किसके साथ हुआ था ? उसके सास-श्वसुर एवं माता-पिता का नाम भी बताइए ?

प्रश्न 34- सेठ हेमदत्त ने बुद्धिसेन को घर से क्यूँ निकाला ? कारण बतलाइए ?

प्रश्न 35- मनोवती की क्या प्रतिज्ञा थी ? उसकी प्रतिज्ञा पूरी न होने पर उसने कितने दिन के उपवास किये ?

प्रश्न 36- सेठ हेमदत्त ने जब बुद्धिसेन को घर से निकाल दिया, तो वह कहाँ गया ?

प्रश्न 37- जब बुद्धिसेन को व्यापार शुरू करने के लिए किसी से धन नहीं मिला, तो रानी मनोवती ने क्या किया ?

प्रश्न 38- मनोवती के कहे अनुसार बुद्धिसेन मोती लोकर कहाँ और किसे देने जाता है ?

प्रश्न 39- मनोवती के साथ जंगल में क्या चमत्कार हुआ ?

प्रश्न 40- जब बुद्धिसेन राजा को मोती देकर आता था तो वह मोती मनोवती के पास वापिस क्यूँ और कैसे आ जाता था ?

प्रश्न 41- जब बुद्धिसेन के माता-पिता (परिवार) गरीब हो गये, तो वे कहाँ आकर क्या करने लगे ?

प्रश्न 42- भगवान ऋषभदेव को केवलज्ञान कहाँ पर हुआ ? केवलज्ञान के पश्चात् भगवान पृथ्वी से कितने ऊपर पहुँच गए ?

प्रश्न 43- 'इन्द्र' और सामानिक देवों को परिभाषित कीजिए ?

प्रश्न 44- कैसे कार्य करने से यह जीव 'आभियोग्य' या 'किल्विषक' देवों में जन्म लेता है ?

प्रश्न 45- समवसरण के वर्णन में कौन-कौन से इक्तीस प्रकरण अधिकार जानने योग्य हैं ?

प्रश्न 46- समवसरण में कितनी भूमियाँ होती हैं ? नाम सहित बताइए ?

प्रश्न 47- समवसरण में स्थित 'नाट्यशालाओं' का वर्णन कीजिए ?

प्रश्न 48- आदिपुराण में मानस्तंभ को किस प्रकार वर्णित किया है ? बताइए ?

प्रश्न 49- दस स्तूप कौन-कौन से हैं ? नाम बताइए ?

प्रश्न 50- भगवान के समवसरण में कितने प्रातिहार्य होते हैं ? नाम बताइए ?

प्रश्न 51- तीर्थंकर भगवान के जन्म के कितने अतिशय होते हैं ? नाम सहित बताइए ?

प्रश्न 52- जब भगवान ऋषभदेव को केवलज्ञान हुआ, तब अयोध्या में भरत को कितने और कौन से समाचार एक साथ प्राप्त हुए ?

प्रश्न 53- भगवान के समवसरण में दर्शन का क्या प्रभाव पड़ा ?

प्रश्न 54- कषायप्राभृत के रचियता कौन थे एवं इनका काल कौन सा रहा ?

प्रश्न 55- "प्रकृति विभक्ति" शब्द का क्या अर्थ है ?

प्रश्न 56- "संक्रम" किसे कहते हैं ?

प्रश्न 57- "चूर्णिसूत्र" में आचार्य श्री यतिवृषभ ने कषाय के कितने भेद गिनाए हैं ?

प्रश्न 58- 'जीवट्ठाण' खंड के अन्तर्गत कितनी चूलिकाएँ हैं ? नाम बताइए।

प्रश्न 59- 'खुद्दाबंध' के ग्यारह अधिकों के नाम बताइए।

प्रश्न 60- 'वेदना' खण्ड को समझाइए।

प्रश्न 61- धवला में वर्गपाखण्ड की समाप्ति के पश्चात् कौन-से अठारह अनुयोग-द्वारों का कथन किया गया है? नाम बताइए।

प्रश्न 62- 'षट्खण्डागम' के 'जीवट्ठाण' ग्रंथ में सूत्रों की रचना किस-किसने की ?

प्रश्न 63- 'महाबंध शास्त्र के रचियता कौन है ?

प्रश्न 64- अवधिज्ञान किसे कहते हैं ? इसका दूसरा क्या है ?

प्रश्न 65- मतिज्ञान के 336 भेद किस प्रकार हैं ?

प्रश्न 66- द्वादशांग श्रुतज्ञान क्या है ? बताइए।

प्रश्न 67- उपसकाध्ययनांग में किसका वर्णन किया गया है ?

प्रश्न 68- अन्तकृत् केवली किसे कहते हैं ? अन्तकृत् केवलियों के नाम बताते हुए यह भी बताइए कि वे किस प्रकार अन्तकृत् केवली हुए ?

प्रश्न 69- 'आक्षेपणी' एवं 'विक्षेपणी' कथा को स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1- रानी कैकेयी, राजा दशरथ से क्या वरदान माँगती है ? और क्यों ? एवं श्रीराम अयोध्या छोड़कर वनवास के लिए क्यों चले जाते हैं, विवेचन कीजिए ?

प्रश्न 2- राम-रावण का युद्ध क्यों हुआ तथा रावण को किसने मारा ? वर्णन कीजिए ?

प्रश्न 3- राजा मधु कौन था ? एवं उसका समाधिमरण किस प्रकार हुआ ?

प्रश्न 4- "लक्ष्मण, राम में इतना अनुरक्त है कि वह प्राण देकर भी उनका कार्य करना चाहता है" इस बात की परीक्षा इन्द्र किस प्रकार लेता है ? वर्णन कीजिए ?

प्रश्न 5- कौरव-पाण्डवों का आपस में विरोध होने पर उन्होंने पाण्डवों को मारने हेतु क्या चाल चली, विस्तारपूर्वक बताइए ?

प्रश्न 6- नारायण श्रीकृष्ण के जन्म का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए ?

प्रश्न 7- द्रौपदी के लोकापवाद से संबंधित घटना का विस्तृत विवेचन कीजिए ?

प्रश्न 8- पाँचों पाण्डवों ने दीक्षा कहाँ धारण की एवं उन पर उपसर्ग किसने और क्यों किया ? उनमें से कितनों ने मोक्ष और कितने पाण्डवों ने सर्वार्थसिद्धि गमन किया ? विस्तारपूर्वक बताइए ?

प्रश्न 9- महाराजा मरुदत्त ने बल्लभपुर शहर के सभी जौहरियों को क्यों बुलाया था ? सेठ हेमदत्त राजा मरुदत्त की किस बात से परेशान हो जाते हैं एवं क्या कदम उठाते हैं ? विस्तार से बताइए ?

प्रश्न 10- बुद्धिसेन जब राजा को भेंट में मोती देता है, तब राजा प्रसन्न होकर बुद्धिसेन को क्या क्या देता है ? राजा बुद्धिसेन का विवाह किसके साथ करा देता है ?

प्रश्न 11- मनोवती की इस कहानी से आपको क्या शिक्षा मिलती है ? विस्तार से बताइए ?

प्रश्न 12- ऋषभदेव पर्यंत चौबीसों तीर्थंकरों के समवसरण का विस्तार बताइए ?

प्रश्न 13- समवसरण में कितनी सभाएँ होती हैं ? एवं उन सभाओं में कौन-कौन बैठते हैं ? क्रम से बताइए ?

प्रश्न 14- तीर्थंकर भगवान के कितने अतिशय होते हैं, उनमें से देवकृत अतिशय कितने और कौन से हैं, नाम सहित बताइए ?

प्रश्न 15- कषाय प्राभृत के पन्द्रह अधिकारों के नाम बताते हुए किन्हीं तीन अधिकारों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 16- षट्खण्डागम का द्वादशांग से क्या सम्बन्ध है ? समझाइए।

प्रश्न 17- 'महाबंध' शास्त्र का विषय परिचय दीजिए।

प्रश्न 18- दृष्टिवाद अंग के परिकर्म नामा भेद के पाँच भेद कौन-से हैं ? उनके नाम बताकर उनको परिभाषित भी कजिए।

नोट्स